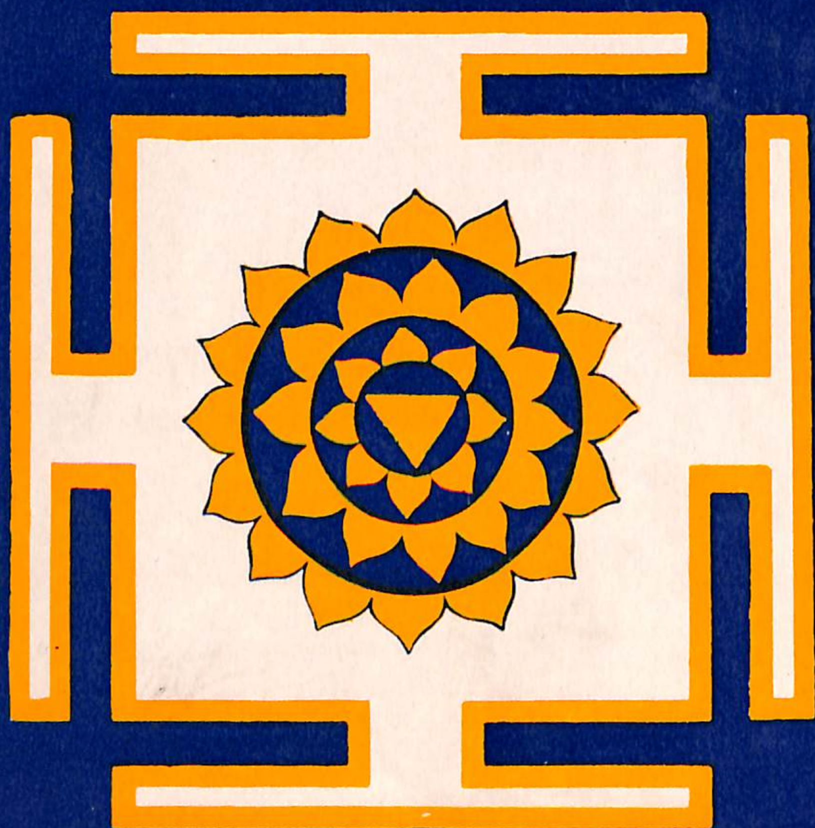
आकाश-भैरव-कल्पम्

पं॰ नानक चन्द शर्मा



श्री शरभेश्वर पूजन यंत्रम्

आकाश-भैरव-कल्पम्

पं॰ नानक चन्द शर्मा

मोतीलाल
बनारसीदास

॥ ओ३म् श्री ॥

आकाश-भैरव-कल्पम्

प्रत्यक्ष-सिद्धिप्रद उमामहेश्वर-संवादरूपम्

(संक्षिप्तहिन्दी व्याख्योपेतं — मंत्रोद्धारसहितं च)

प्रथम पुष्पम्

व्याख्याकार :
कविराज — पं० भास्करानन्द शर्मा
(धर्मी-भारद्वाज)

श्री काया माया रिसर्च संस्थान
8/3552, विष्णु-मन्दिर मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली ११०००५

आकाश-भैरव-कल्पम्

उमामहेश्वर-संवादरूपम्

जगत्स्रष्टा पञ्चास्य श्रीशिव के मुखस्रोतों द्वारा असंख्य विद्याओं का रहस्यमय प्रकाश अत्यन्त गूढ विज्ञान से ओत-प्रोत है। इनमें मानव की सम्पूर्ण आकांक्षाओं को पूर्ण करने की क्षमता होने के कारण तंत्रशास्त्र की गणना मुख्य विद्याओं में है, जिसे दूरद्रष्टा महर्षियों ने सदाशिव की सृष्टि-स्थिति तथा लयकरी शक्तियों के अनुरूप अश्वक्रान्ता, रथक्रान्ता तथा विष्णुक्रान्ता तीन भागों में विभक्त किया हुआ है। इनमें रथक्रान्ता भाग के ८४ तंत्रों में "आकाशभैरव" का नाम सर्वप्रथम है।

इसके योग बहुत थोड़े परिश्रम से शीघ्र ही आश्चर्यजनक मनोवांछित फल देते हैं, इनके विधिवत् प्रयोग से असम्भव को भी सम्भव में बदलते देखा है, यहां तक कि साधक की इच्छा से साधारण व्यक्ति से राजा तक के भाग्यों में उलट-पलट की जा सकती है। शत्रुनिग्रह तथा विजयप्राप्ति के लिए तो आकाश-भैरव प्रयोगों की तुलना नहीं। इसके उपासक के पास सिद्धि-समृद्धि के साथ-साथ दण्डना शक्ति लिए ब्रह्मास्त्र भी होता है।

इन सिद्ध विद्याओं का उपयोग विश्वकल्याण के लिए ही होगा, इस आशा के साथ इस गुप्तप्राय ग्रन्थ का प्रकाश किया गया है।

मूल्य : रु० १००

॥ ओ३म् श्रीः ॥

आकाश-भैरव-कल्पम्

प्रत्यक्ष-सिद्धिप्रदं उमामहेश्वर-संवादरूपम्

(संक्षिप्तहिन्दी व्याख्योपेतं—मंत्रोद्धारसहितं च)

प्रथम पुष्पम्

व्याख्याकार :

कविराज—पं० नानकचन्द्र शर्मा

(धम्मी-भारद्वाज)

प्राप्तिस्थान

मोतीलाल बनारसी दास

बंगलो रोड, ज्वाहर नगर, दिल्ली—110007

दूरभाष 228355, 221985

श्री काया माया रिसर्च संस्थान

8/3552, विष्णु-मन्दिर-मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली-११०००५

प्रकाशक :

श्री कायामाया रिसर्च-संस्थान

८/३५५२, श्री विष्णु-मन्दिर-मार्ग, करौल बाग,

नई दिल्ली-११०००५

प्रथम संस्करण विक्रम सं० २०३८

मूल्य :

मुद्रक :

शीतल प्रिंटिंग प्रेस,

करौल बाग, नई दिल्ली-११०००५

ĀKĀSH-BHAIRAVA-KALPAM

of Umā Maheshwara

(TĀNTRIK-SERIES—I)

Brief Hindi Commentry

By

Kaviraj Pt. Nanak Chand Sharma
(Bharadwaja)

SHRI KAYA-MAYA RESEARCH INSTITUTE
8/3552, VISHNU-MANDIR MARG, KAROL-BAGH,
NEW DELHI-110005

Published by :
Shri Kaya-Maya Research Institute
8/3552, Vishnu-Mandir Marg,
Karol Bagh, New Delhi-110005

First Edition : **1981**

Price : **Rs.**

Printed at :
Sheetal Printing Press
G-1, Prehlad Market,
Karol Bagh, New Delhi-110005

समर्पण

यह प्रथम पुष्प मैं अपने परिवार के उन अज्ञात, पवित्र महान्-आत्माओं—जिन्होंने कोई तीन सौ वर्ष पहिले भारत-इतिहास-प्रसिद्ध सतनामियों के द्रोह नामक संग्राम की व्यवस्था करते हुए उस धर्म युद्ध की परिकल्पना तथा नेतृत्व किया था एवं जिसके लिए मुग़लसम्राट् को अपनी सेना का मनोबल बढ़ाने के लिए गण्डे-तावीजादि धारण करके स्वयं जाना पड़ा था, तथा जो इस प्रकार भारत की पवित्र धरती के संरक्षण एवं उसे विदेशियों के हाथ से मुक्त कराने के लिए साहस एवं गौरवपूर्ण यत्न में अपने असंख्य सहायकों समेत बलिदान देते हुए अमर हो गए थे—के परमपावन चरणों में समर्पण करता हूं।

नानकचन्द्र शर्मा

यस्यानुग्रहदृष्ट्येह मन्दप्रज्ञोऽपि पूज्यते ।
तं वन्दे विदुषां वंद्यं पूर्णानन्दं गुरुं हरिम् ॥



सर्वतंत्रस्वतंत्र, वेद-शास्त्र-ज्योतिष-आयुर्वेद-तंत्रशास्त्रादि-
बहुविध-विद्यावित्स्वग्रगण्य, विद्यावारिधिः श्री श्री श्री १००८ गुरुवर्याः
भारद्वाज गोत्रोत्पन्नाः पण्डित प्रवराः श्री लालचन्द्र धम्मी महाभागाः
जन्म-स्वर्गारोहणस्थलंच-हरिपुर हज़ारा, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्ते, (अविभक्तं भारतम्)

ओं श्रीः

अथ श्रीआकाशभैरवकल्पाख्य-सिद्धग्रन्थस्याध्यायानुसारो विषयानुक्रमः

श्रो३म् श्रीः

श्राकाश भैरव कल्प तंत्रम्

(श्री शिवशक्तिसम्वादात्कम्)

श्रो३म् देवो यः सवितास्माकं प्रेरयत्यनिशं धियः।
वरेण्यं तस्य यद्भर्गस्तद्वयं समुपास्महे ॥

नील प्रवाहरुचिरं विलसत् त्रिनेत्रं
पाशारुणोत्पल-कपाल-त्रिशूल-हस्तम्।
श्रर्द्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दु-बद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम् ॥ शा० ति०

आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिमानसिकादि बहुविध दुःखों से आक्रान्त इस मानव जीव का अन्तिम लक्ष्य किसी न किसी तरह दुःखों से निवृत्ति एवं शान्ति प्राप्त करना है, जिसके लिए वह स्थान-स्थान पर भटक रहा होता है। मायावी गुरुओं का बोलबाला, गली गली में नकली देवी-माताएं (क्या दुर्गा क्या काली और क्या वैष्णवी) भैरव-हनुमान्-सिद्ध-पीर-जिन्नात, शैतान और न जाने क्या क्या और किन किन की चौकियों (अड्डों) पर वह बेचारा क्या नहीं करता। अनगिनत नक्षत्रसूचक (नाम के राजज्योत्तिषी) और एक के बाद एक ऐसे ही तांत्रिक, काला जादू जानने वाले उस बेचारे की परेशानियों, भोलेपन और अज्ञान का लाभ उठाते हुए अपनी वाक्पटुता के प्रभाव से अपने माया जाल में घेर कर उसे कई बार शिकार बना चुके होते हैं, किन्तु वह फिर भी काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकारादि विकार-रूपी तम से आवृत होने के कारण अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अज्ञानवश इतर धर्मावलम्बी ओझाओं-झाड़ फूंक करने वालों, नाम के महातमाओं-बाबाओं-मठाधीशों-सन्तों-नव्वाबों-मुल्लाओं और पीरों तक के द्वार पर मस्तक रगड़ता रहता है, किन्तु "ढाक के वही तीन पात", उसके हाथ फिर भी कुछ नहीं लगता—

"दुर्लभा चित्तविश्रान्तिर्विना गुरुकृपां पराम्।"

सैकड़ों वर्ष पूर्व तत्कालीन शासन द्वारा संरक्षणप्राप्त विविध धर्मप्रचारकों ने अत्यन्त चतुराई से सावरी मंत्रों से मिलते जुलते ऊटपटांग छूमन्त्रों किन्तु वास्तव में हाथ की सफाई, युक्ति अथवा रासायनिक द्रव्यादिकों के बल पर विशेष प्रकार के चमत्कारों के प्रदर्शन से देश के असंख्य लोगों को प्रभावित करके दूसरे धर्मों में परिवर्तित किया था। इन लोगों के केन्द्र ऐसे स्थानों पर बनाए गए थे जहां लोग अत्यन्त गरीब, तथा अविद्या—अज्ञान और अन्धविश्वास से आवृत थे, अतः उन्हें वहां अच्छी

सफलता मिली । इन ही में से अधिकांश गोसाईं-सिद्ध-फकीर-औलिया-पीर-हज़रत नवाब तथा कुछ मठाधीश बन गए । इन ही लोगों द्वारा देश की जनता में हीन भावना उत्पन्न करने के लिए बहुत से ऐसे मनघड़न्त मन्त्रों की रचना की गई थी—

गज़नी से आए महमूद ने हमारे देश के परस्पर विरोध का लाभ उठाते हुए भारत पर आक्रमण करके तत्कालीन श्री सोमनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर को लूटने में सफलता प्राप्त की थी, वापिसी पर वह मार्ग में ही मर गया, वह महमूद-गज़नवी कोई फ़रिश्ता या पैगम्बर नहीं था; किन्तु आज वह कुछ इसी प्रकार के मन्त्रों का नायक है, और ओझा लोग उन लोगों के कथनानुसार उसकी प्रेतात्मा (रूह—spirit) को बुलाकर उससे विविध काम लेते हैं और मजे की बात तो यह है कि ऐसे मन्त्रों के आरम्भ में "ओ३म् या "ओं नमो आदेश गुरू को" तथा अन्त में "फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा भी जोड़ा हुआ है ताकि भोली भाली जनता उन की चाल को समझ न सके । उदाहरण के लिए ऐसे कुछ मंत्रों के कुछ खण्ड दे रहा हूं—

"ओं नमो आ हां कंत जुगराज, ए गढ़ गजनी के महमदा वीर—भूत को बांध, प्रेत को बांध, देव को बांध, त्रैसठ कला को बाँध, चौंसठ योगिनी को बाँध भैरूं को बांध, काली को बाँध,——शब्द सांचा, पिण्डकांचा, फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा ।" "ओं नमो आदेश गुरु को, लड़गढ़ी (गजनी) से महम्मूद पठान चढ़िया —चौंसठ योगिनी बांध, हनुमान वीर को बांध, लूना चमारी करै, महमूद पीर—तुरकनी के पूत की दुहाई ।"

और कुछ इस प्रकार के दूसरे मंत्र जो इसी तरह के मठाधीशों तथा उनकी प्रेमिकाओं के नाम पर रचे गए तथा जो दूरदृष्टि के अभाव के कारण कुछ इसी प्रकार के आचार्यों द्वारा संग्रह कर के प्रकाशित कर दिए गए थे—

"ओं नमो आदेश गुरू को—कामरूप देश कामाक्षा देवी, जहां बसे इस्माईल जोगी·········चूके उमा, सुखे लोना चमारी······फुरो मंत्र ईश्वरो वाचा ।"

"ओं काला कलवा चौंसठ बीर"॰ इत्यादि

और कुछ एक ही प्रकार के ऐसे मंत्रों की भी रचना की गई, जिस में दो प्रकार के धर्मावलम्बियों का परस्पर विरोध या मुकाबला दृष्ट होता है, यथा—एक सम्प्रदाय का मन्त्र

"बन में जाए बांदरी जो आधा फल खाय ।
खड़े मुहम्मद हाँक दें आधा सीसी जाए ।।

यही मन्त्र दूसरे धर्मानुयाईयों ने इस प्रकार लिखा—

"बन में जाए बानरी जो आधा फल खाय ।
खड़े हनुमत हांक दें आधा सीसी जाए ।।

यह कोई तांत्रिक मंत्र नहीं हैं और न ही यह कोई सावरि मंत्र हैं और न ही इनमें कुछ प्रभाव है, अपितु यह केवल मात्र स्वार्थ और कनिष्ठ भावनाओं के छींटों से आप्लावित नाम मात्र के मंत्र हैं और इसी प्रकार के ग्रन्थों में से कुछ थोड़े-थोड़े अंश संग्रह कर के कुछ आधुनिक अदूरदर्शक ग्रंथकार "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा। भानमती ने कुनबा जोड़ा" के वाक्यानुसार छोटे छोटे (नाम मात्र के) तंत्र ग्रन्थों को अपनी लेखपटुता के सहारे प्रकाशित कराके वस्तुतः तंत्रक्षेत्र पर कोई उपकार नहीं कर रहे हैं। तंत्र-मंत्र-यंत्रादिकों के उनके इस प्रकार के संग्रहग्रन्थों ने तो मूल-तंत्र-ग्रन्थों को इस प्रकार आच्छादित कर दिया है, जिस तरह राख के ढेर में सुलगते अंगारे। इस से जहाँ मूल विद्याओं का लोप हो रहा है, वहाँ व्यर्थ में लोगों का परिश्रम, समय और धन नष्ट होता है और इसके साथ ही केवलमात्र तंत्रशास्त्र ही नहीं, अपने धर्म पर से भी श्रद्धा हटते हुए हमारा न केवल अपना, अपितु अपनी सभ्यता एवं पूर्वजों की पुरा-उपलब्धियों का क्रमशः ह्रास हो रहा होता है।

विदेशियों द्वारा हमारे पुरा-साहित्य का बहुमूल्य भाग किसी भी मूल्य पर ले जाने के अभियान से जागृत तत्कालीन कुछ राष्ट्र नेताओं, नरेशों, धनपतियों और विद्वानों के भरसक प्रयत्नों ने गुह्य तथा गुप्त ग्रंथों के संकलन-संग्रह एवं पुनः प्रकाशन में निःसन्देह बहुमूल्य सहयोग दिया है। जम्मू, काश्मीर, बीकानेर, राजस्थान, त्रिवेन्द्रम, बड़ोदा, तंजोर, पूना प्रभृति भूतपूर्व राज्यों के नरेशों से आश्रित लाइब्रेरियों के अतिरिक्त नेपाल दरबार, एशियाटिक-सोसाईटी आफ बंगाल, मद्रास राजकीय पुस्तकालय, संस्कृत कालेज लायब्रेरी-संस्कृत विश्वविद्यालय बनारस, भण्डारकर रीसर्च संस्थान, बिहार अनुसन्धान समिति प्रभृति बहुत से संस्थानों ने तो लुप्त हो रहे सहस्रों दुर्लभ ग्रंथों का संकलन एवं अधिकांश का प्रकाशन करके भारतीय साहित्य के क्षेत्र पर अत्यन्त उपकार किया है। इसके अतिरिक्त श्री खेमराज श्रीकृष्णदास श्री वैंकटेश्वर प्रेस, निर्णयसागर प्रैस मुंबई, श्री मोतीलाल बनारसी दास, श्री मेहर चन्द लक्ष्मण दास तथा चौखम्बा बनारस प्रभृति बहुत से प्रकाशकों ने साहित्य को निःसन्देह पुनर्जीवन दिया है।

इस डेढ़-शताब्दी में सर आर्थर-एवलेन, श्री प्रबोधचन्द्र जी बागची, श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती तथा डाक्टर गोपीनाथ कविराज ऐसे महान् विद्वानों ने तंत्र के बहुमूल्य, आर्ष एवं गुप्त ग्रंथों के प्रकाशन के साथ साथ उन पर जो विशेष शोध कार्य किया है उसकी प्रशंसा के लिए शब्द नहीं हो सकते, तथा उन का यह अनुसन्धान कार्य भविष्य में भी तंत्र पर गवेषणा करने वालों के लिए सुमार्गदर्शक रहेगा।

महामहोपाध्याय डाक्टर गोपीनाथ जी कविराज महोदय ने **श्री आकाश भैरव-कल्पाख्य** इस तन्त्रग्रन्थ का अपने लिखे "**तंत्र साहित्य**" नामक ग्रंथ, जो उत्तर प्रदेश शासन के सूचना-विभाग की हिन्दी समिति द्वारा १९७२ ई० में प्रकाशित हुआ, में पष्ठ संख्या २३ पर इस प्रकार वर्णन किया है—

आकाशभैरव कल्प

लि० (१) प्रत्यक्ष सिद्धिप्रद उमा महेश्वरसम्वाद रूप—श्लोक संख्या २००० और ७८ अध्यायों में पूर्ण।

यह मंत्रशास्त्र सांग, सलक्षण, वेदसारभूत तथा सब जीव-जन्तुओं का अभीष्ट प्रद और ज्ञानप्रदायक एवं साधक-सुखदायी कहा गया है। देवी पार्वती जी के महेश्वर से यह प्रार्थना करने पर कि हे दयानिधे, जो शास्त्र लोक में अत्यन्त गुप्त हो, जो सब अभीष्टों को देने वाला हो, और जो साधक श्रेष्ठों का हितकारी हो, उसे आप कहने की कृपा करें—महेश्वर ने इस का उपदेश किया। इसके ७८ अध्यायों के मुख्य विषय यह हैं—उत्साह-प्रक्रम, यजन विधि, उत्साहाभिषेक, मंत्र यंत्र प्रक्रम, चित्रमाला मंत्र, वश्य और आकर्षण प्रयोग, मोहन एवं द्रावण प्रयोग, स्तंभन और विद्वेषण तथा प्रयोग, उच्चाटन-निग्रह प्रयोग, भोगप्रद विधि, आशुतार्क्ष्य विधि, आशुगरुड़ प्रयोग, शिष्याचार विधि, शरभ-सालुव-पक्षिराज कल्प, शरभेशाष्टक स्तोत्रादि, रक्षाभिषेक विधि, बलिविधान, माया प्रयोग विधि, आचार विधि, मातृका-वर्णन, भद्रकाली विधि, औषध विधि, शूलिनि-दुर्गा-कल्प, शूलिनि विधि, वीरभद्रकल्प, जगत्क्षोभण-माला मंत्र, त्रपाविधि, भैरव विधि, दिक्पाल विधि, व्याधिकल्पन, मृत्यु विधि, मन्मथ विधि, चामुंडा विधि, मोहिनीविधि, द्राविणीविधि, शब्दाकर्षिणी प्रयोग, माया-सरस्वती प्रयोग, महालक्ष्मी प्रयोग, माया विधि, पुलिन्दिनी विधि, महाशान्त (न्ति ?) विधि, संक्षोभिणी विधि, धूमावती प्रयोग, चित्रविद्या-विधि, देशिक-स्तोत्र, दुःस्वप्ननाशन-मंत्र विधि, पाशविमोचन-विधि, औषधिमन्त्र-विधि, कालमंत्र-विधि, षण्मुखमंत्र-विधि, त्वरिता-विधि, वड़वानल-भैरव-विधि, ब्राह्मी प्रभृति सप्तमातृ-विधि, नारसिंही-विधि, एवं शरभहृदयादि

(१) (नेपाल दर्बार पुस्तकालय) ने० द० ३१२४६ (ग)

(२) (क) श्लोक सं० २४०० अध्याय ७८, उपदेश शङ्कर

(ख) श्लोक सं० १००० अध्याय ३६ अ० ब० (बड़ोदा पुस्तकालय का अकारादि सूचीपत्र (क) ५६०१ (ख) १०६६८

(३) महाशैव तंत्र से गृहीत। २० उपदेशों में पूर्ण—कैट० कैट (कैटा लागस कैटालागोरस) एन अल्फाबैटीकल रजिस्टर आफ सं० वर्क्स एंड आथर्स, इन थ्री पार्ट्स।

(४) श्लोक संख्या १३७५ अध्याय १-४५ तक-महाशैव तंत्रांतर्गत-सं० वि० (संस्कृत विश्वविद्यालय पुस्तकालय वाराणसी का सूचीपत्र)— २६३७८ अपूर्ण (उल्लिखित) उ०-प्राणतोषिणी में।

देश विभाजन से पूर्व भारत के पश्चिमोत्तरीय सीमाप्रान्त में स्थित एवं वस्तुतः पश्चिम-काशी कहलाए जाने वाले "हरिपुर हज़ारा" नगर वास्तव्य भरद्वाज कुलोत्पन्न परमशाक्त श्री पं० देवीदासजी धम्मी के सुपुत्र मेरे श्री पिता राजज्योतिषी

तथा राजवैद्य पं० लक्ष्मीनारायण जी धम्मी के ज्येष्ट भ्राता एवं मेरे श्री गुरु सर्वतंत्रस्वतंत्र, वेद-शास्त्र-ज्योतिष-आयुर्वेद-तंत्रादि बहुविध विद्याओं में पारंगत, तथा वास्तविकता में विद्यावारिधि श्री श्री श्री १००८ श्री पण्डित लालचन्द्र जी धम्मी ने बहुत परिश्रम और अमूल्य समय लगा कर ज्योतिष-तंत्र तथा आयुर्वेद के हस्तलिखित दुर्लभ ग्रन्थों का, जिनमें बहुत से ग्रन्थ हमारे यहाँ भी कुलपरम्परा से सुरक्षित चले आ रहे थे और कुछ विशेष दुर्लभ ग्रंथों की प्रतिलिपियां स्वयं अपने हाथों द्वारा तैयार की थीं, का एक विशाल भण्डार संग्रह किया था, जिनमें से अधिकांश ग्रंथ हरिपुर हज़ारा में उनके मूल-निवासस्थान में तथा कुछ भाग मेरे पूज्य पिता जी के पास इसी ज़िल्ला मैं वहां से कोई साठ मील पश्चिमोत्तर-दिशा-स्थित "बफा" उपनगर में सुरक्षित रखे थे, परम पूज्य श्री गुरु जी का स्वर्गारोहण विक्रम संख्या १९९५ में हो गया था अत: उन बहुमूल्य ग्रंथों का अधिकांश भाग उनके एक मात्र सुपुत्र दिवंगत राजज्योतिषी पं० दुर्गादत्तजी धम्मी तथा पौत्र राजज्योतिषी पं० डेवलचन्दजी धम्मी, जो आजकल बठिण्डा पंजाब में निवास रखे हुए हैं, के पास हरिपुर हज़ारा (मूल घर) में रह गया। देश विभाजन के समय भागदौड़ में दुर्लभ ग्रन्थों का वह अनमोल खज़ाना उन से नहीं लाया जा सका, किन्तु मैं अपने श्री पिता जी की प्रेरणा तथा दृढ़ प्रोत्साहन से कुछ डेढ़ हज़ार के लगभग ग्रन्थ लाने में सफल हो गया था। तन्त्रशास्त्र सम्बन्धित महत्वपूर्ण ग्रंथों में श्री आकाशभैरवकल्प, श्री गुरु जी कृत संस्कृतानुवाद-सहित श्री शिवताण्डव-तंत्र, श्री भूतडामर-तंत्र, श्री देवीरहस्य, श्री साहिबकौल-कृत श्रीविद्या-पूजापद्धति, श्री दक्षिणकालिका पूजन पद्धति, श्री भुवनेश्वरी रहस्य, श्री गायत्रीपंचाङ्ग तथा ज्योतिष से सम्बन्धित ग्रन्थों में महाराजा रणजीतसिंह जी के राजपण्डित द्वारा अर्घ-ज्ञान एवं भावीफल-ज्ञान पर लिखा हुआ "**भावीज्ञान नामक महाग्रंथ**" तथा आयुर्वेद से सम्बन्धित सुखपुराणादि ग्रन्थों की प्रतिलिपियां मेरे पास सुरक्षित पड़ी हैं, इसके अतिरिक्त पूज्यपाद श्री गुरु जी द्वारा लिखित जैमिनीयसूत्र (ज्यो०) के चारों अध्यायों की संस्कृत टीका तथा उस पर मेरे श्री पिता जी द्वारा कृत सविस्तृत सोदाहरण हिन्दी टीका, श्री पञ्चस्वरा की सोदाहरण संस्कृत हिन्दी टीका, गणितशास्त्र से सम्बन्धित श्री मकरन्दोत्पत्ति तथा शष्कुलीपक्व-ग्रहण सारिणी आदि के अतिरिक्त और बहुत से ग्रन्थ जिनमें पारसीक (फारसी) भाषा में अनुवादित श्री वाल्मीकि-रामायण की भी एक प्रति है, हमारे संग्रहालय में मौजूद हैं, यदि श्री जगदीश्वर की कृपा हुई और विद्वानों से प्रोत्साहन मिला तो बहुत शीघ्र ही उनका प्रकाशन हो जाएगा।

तंत्रशास्त्र कोई अनियमित या ऊटपटांग कल्पना नहीं है, वरन् शब्द, हेतु तथा विज्ञान द्वारा दृढ़ निश्चित, निखिल-शास्त्र-प्रमाणित एवं सर्वसिद्ध विद्याएं तंत्र कहलाती हैं, और इसमें व्यवहृत मंत्रबीज, श्रुति की ऋचाओं के स्वर व्यञ्जनादि अक्षरों के क्षेपकांक जो श्वेत-रक्त-श्यामादि विविध महाविद्याओं के आधार पर दूरद्रष्टा ऋषियों ने विशेष नियमानुसार निश्चय किए थे, परस्पर जोड़कर यथोक्त

अङ्क द्वारा सविधि संस्कार करते हुए शेषांकों से फलस्वरूप निकाले जाते हैं। यथा-प्रसिद्ध ब्रह्मगायत्री ऋचा के आद्यपद "तत्सवितुर्वरेण्यं" से "अ", "भर्गोदेवस्य धीमहि" से "उ" "धियो यो नः प्रचोदयात्" से "म्"। इस प्रकार मंत्र के पदक्रमानुसार बीजाक्षर अ+उ+म् होने से उस का बीजमंत्र ओम् निकलता है। इसी प्रकार विशेष ऋचाओं का उपरोक्त विधि से बीज संस्कार द्वारा 'ऐं'—'ह्रीं'—"श्रीं"—"क्लीं" 'जूँ'—'सः'—सौः, "क्ष्म्र्यैं" आदि विविध मंत्रबीज निकाले गए हैं, जो तंत्रशास्त्र का आधार हैं।

गुरु परम्परा से प्राप्त इस प्रकार की बीज-साधन-विधि को यदि ईश्वरेच्छा हुई तो इस ग्रन्थ के बाद प्रकाशित होने वाले तंत्र ग्रन्थ श्री शिवताण्डव तंत्र तथा भूतडामर तंत्र के साथ-साथ प्रकाशित करने का यत्न करूंगा।

श्री आकाश-भैरव-कल्पाख्य यह ग्रन्थ वेदमूलक है, अतः इस ग्रन्थ में दी गई सिद्ध ऋचाओं के प्रयोग करने से पहिले अपने आपका ब्रह्मगायत्री मंत्र द्वारा यथा-शक्ति पुरश्चरण करके विद्युतीकरण कर लेना चाहिए॥

"गायत्र्याः परं नास्ति इह लोके परत्र च।"

श्री गुरू जी के उपदेशानुसार गायत्रीमंत्र का जप या पुरश्चरण कोई कामना रख कर नहीं करना चाहिये। कार्यानुसार उपयोगी ऋचाएं गायत्री मंत्र के अभ्यासी को ठीक उसी प्रकार फलदायक होती हैं, जिस प्रकार विद्युत-संचारित कमरे में विद्युत उपकरण—पंखा, हीटर या रीफ्रेजेटरादि।

वेद मंत्र किस प्रकार यथोक्त तथा इच्छानुकूल फल देते हैं, इस सम्बन्ध में श्री मेरुतंत्र में इस प्रकार उपदेश दिया गया है—

"अथ गोप्यं प्रवक्ष्यामि गोप्यं मातरिजारवत्।
सर्वेषां वेदमंत्राणां यच्च संसिद्धिकारकम्॥
लोलुपाय कृतघ्नाय नास्तिकाय शठाय च।
सगर्वाय गुरुद्वेष्ट्रे प्रोक्त्वा शापमवाप्नुयात्॥
येषां वैदिकमंत्राणां चलनं कर्मसूचितम्।
तानादि-पाद-सहितान् गायत्र्यास्तु सदा जपेत्॥
अष्टोत्तरसहस्त्रन्तु तद्वत् पालनमन्त्रकान्।
मध्यपादेन संयुक्तानन्तिमेन तु नाशनम्॥
अवश्यं जायते सिद्धिर्गायत्री तेजसा इति॥"

इस प्रकार महर्षियों ने पाद-भेद से गायत्री-मंत्र को सृष्टि, स्थिति, लयानुसार तीन भागों में व्यक्त किया है। सकाम-कार्यों में कार्यभेदानुसार वेद-विधानोक्त अथवा तंत्रशास्त्र में दर्शित ऋचाओं के साथ शीर्ष स्थान पर "ओं भूर्भुवः स्वः" के साथ गायत्री मंत्र के उक्त व अनुकूल भाग को लगा कर शास्त्रानुकूल-विधानोक्त

पुरश्चरण किया जाये, तो निःसन्देह शीघ्र सिद्धि होती है। मंत्र गुरुमुख से ग्रहण करना चाहिये, इस प्रकार श्री गुरु की आज्ञानुसार श्री गुरु की पूजन-प्रणामादि-पूर्वक कार्य करने से यथेष्ट फल की प्राप्ति होती है। यद्यपि गुरुपूजन का सर्वत्र महत्व है, किन्तु तंत्र-शास्त्र में तो श्री गुरु के बिना एक पग भी नहीं उठाया जा सकता, इसीलिये तो जिस तरह अच्छे प्रकार परख कर शिष्य को दीक्षा देने का विधान है, वहाँ शिष्य को भी सुयोग्य एवं सिद्धिप्राप्त गुरु से ही मंत्रोपदेश लेना चाहिए और यदि भूल से किसी ऐसे मायावी-गुरु से दीक्षा ली गई थी जो स्वयं सिद्धि प्राप्त नहीं कर सका, तो शिष्य को दूसरा गुरु अपनाने के लिये भी शास्त्र आज्ञा देता है।

"असिद्धत्वात् गुरोर्देवाः शिष्यसिद्धिर्नजायते ॥"

"मधुभुक् च यथाभृङ्गः पुष्पात्पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ॥"

तंत्रशास्त्र में दीक्षाप्राप्त मनुष्य अपने श्री गुरु में साक्षात् ब्रह्म, मन्त्र ध्वनियों में ईश्वरीय शक्ति की विविध लीलाएं और प्राणप्रतिष्ठाकृत-प्रतिमा में नाना प्रकार की शक्तियां तथा उन की अर्चना के साधन देखता है, यदि ऐसा नहीं कर पाता तो वह सफलताओं से कोसों दूर अशान्त मन होता हुआ दुःख सागर में पतित होता है, इसीलिये शास्त्र कहता है—

'गुरौ मनुष्यबुद्धिश्च मंत्रे वाक्षरशेमुषीम् ।
प्रतिमासु शिला बुद्धि कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥"

इसी प्रकार यदि गुरु किसी तरह की लालसा-भय या धन लेने देने की इच्छा से शास्त्रोक्त योग्यताओं से हीन किसी व्यक्ति को सिद्धविद्या की दीक्षा देता है तो देवता उसको विपरीत फल देते हुए शाप देता है, तथा उसका अपना एवं शिष्य दोनों का किया कराया सब विफल हो जाता है।

"धनेच्छा-भय लोभाद्वा अयोग्यं यदि दीक्षयेत् ।
देवताशापमाप्नोति कृतं च विफलं भवेत् ॥"

अतः पूजन-क्रियादि कार्यों में अपने श्री गुरु से आदेश लेकर गुरु के निर्दिष्ट मार्ग से साध्य-देवता को अनन्य भाव से स्मरण करता हुआ यथोक्त मंत्र का जपानुष्ठान करने से निःसन्देह विस्मयजनक लाभ होता है।

जीवों के नाना प्रकार के भोग कल्याण एवं पुरुषार्थ सिद्धि के लिये सर्वत्र व्यापक ब्रह्म श्रीशिव के ऊर्ध्व-पूर्व-दक्षिण-पश्चिम और उत्तरादि पञ्च मुखस्रोतों द्वारा करोड़ों विद्याओं के श्रवण् की रहस्यमय-कल्पना अति गूढ़ विज्ञान से ओत प्रोत है, तथा इन स्रोतों द्वारा तंत्र की असंख्य विद्याओं का प्रकाश उनके उपास्य देवता की कलाओं के अनुरूप उनका कई श्रेणियों में विभाजन शास्त्रसिद्ध

है, इन ही श्रेणियों में एक प्रसिद्ध श्रेणी है—"क्रान्ता," जिसके अनुसार जगत्स्रष्टा शिव ने इस त्रिलोकी जगत की तंत्र सम्बन्धित विद्याओं को 'अश्वक्रान्ता'-'रथक्रान्ता-'विष्णुक्रान्ता' तीन भागों में विभक्त कर दिया था, इनमें रथक्रान्ता भाग के ८४ प्रसिद्ध तंत्रों में श्री आकाश-भैरव-कल्प का नाम सर्वप्रथम है। इस सिद्ध ग्रन्थ के योग थोड़े ही परिश्रम से शीघ्र ही प्रत्यक्ष फल देते हैं. इसके बहुत से योग मेरे परिवार में परम्परा से चलते आ रहे हैं, तथा इनसे यथा आवश्यकता मनोवाञ्छित कार्यों में आश्चर्य की सफलता प्राप्त की जाती रही है, इन प्रयोगों से असम्भव को भी सम्भव में बदलते देखा है, यहां तक कि इसके विधिवत् प्रयोग-क्रियाओं से साधारण व्यक्ति से राजा तक के भाग्य में उलट पलट हो सकती है, तथा किसी भी व्यक्ति को गतिशील, उसके विविध कार्यों में सफलता, अथवा किसी का गतिरोध तक किया जा सकता है, विजय प्राप्ति तथा शत्रुनिग्रह कार्यों में तो आकाशभैरव, वनदुर्गा महाकाली, शूलिनी तथा श्री वाराही आदि महाविद्याओं को मैंने हस्तामलकवत् सिद्ध देखा है।

शिवशक्ति सम्वादात्मक **श्री आकाश-भैरव-कल्पाख्य** इस तंत्र का तांत्रिक क्षेत्र में बहुत सम्मान है, इसके **निग्रह-दारुण-सप्तक** की तो इतनी प्रसिद्धि है, कि कई तंत्र-ग्रन्थकारों ने अपनी रचनाओं में इसका विशेष प्रशंसा पूर्वक वर्णन किया है, वर्तमान काल में भी श्री पीताम्बरा-पीठ के अधीश्वर राष्ट्रगुरु सर्वतंत्रस्वतन्त्र निगमागम तंत्रपारीण परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी जी ने स्वकृति श्री बगलामुखी रहस्य में इसके निग्रह-दारुण-सप्तक को उसके महत्व को समझते हुए अत्यन्त सुन्दर भाष्य सहित उपयुक्त स्थान दिया है॥

अतिबलवान् तेजस्वी तथा आततायी हिरण्यकश्यपु के संहार, धर्म मर्यादा के संरक्षण, वैष्णव-धर्म के पुनः संस्थापन तथा विष्णुभक्त प्रह्लाद को बचाने के लिए भगवान् विष्णु अंशात्मक-अवतार श्री नृसिंह के रूप में प्रकट हुए थे, तथा उस कार्य की समाप्ति के बाद उन्हें उसी प्रकार विष्णु के तेज में लीन हो जाना चाहिये था, किन्तु उस के स्थान में नरसिंह-रूपधारी वह महाशक्तिमान् अपने कर्त्तव्य को भूलते हुए अहंकार में प्रवृत हो कर अपनी क्रोध-ज्वालाओं के दहकते तेज से विश्व भर को जलाने लगे, तथा उस तेज द्वारा उत्तप्त प्रणी त्राहि त्राहि एवं शान्तिः शान्तिः के लिये परं-ब्रह्म जगदीश्वर से निरन्तर प्रार्थनारत थे, तब प्राणीमात्र के त्राता, त्रिलोकी के विधाता, परम-कैलाश-वासी, भगवान् सदाशिव ने अपने तृतीय-नेत्र से उत्पन्न स्वांशरूप परम तेज और सामर्थ्य युक्त महान् बली श्री वीरभद्र को आदेश दिया कि वह श्री विष्णु के उन अंशावतार श्री नृसिंह के पास जा कर उन्हें समझाएं कि जिस कार्य के लिये उनका प्रादुर्भाव हुआ था वह समाप्त हो चुका है, अतः उन्हें अपने उत्तरदायित्व को ध्यान में रखते हुए अब विश्व भर को दुःख-संतप्त करने की बजाय विश्व की स्थिति की ओर ध्यान देने के लिये परम विष्णु के तेज में अपने आप

को लीन कर लेना चाहिये, और यदि वह फिर भी अहंकार-जाल से आवृत होने के कारण न मानें, तो उन्हें किसी भी तरह उस दिव्य एवं भयानक शरीर से मुक्त कर दिया जाये, श्री शिवमहापुराण तथा लिङ्गपुराणादिकों में इस कथा का सविस्तार वर्णन है। श्री नृसिंह ने श्री वीरभद्र की एक नहीं सुनी और उन्हें ही मारने के लिये दौड़े, तब साक्षात् सदाशिव-रूपी वीरभद्र सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप धारण करके अदृश्य हो गये, और क्षण भर में शरभ रूपी भयानक पक्षी, जिनका एक पंख श्री महाकाली और दूसरा पंख श्री दुर्गा की महान् शक्ति से युक्त था, के रूप में प्रकट हो कर आकाश मार्ग से एक ही चोंच के वार से श्री नृसिंह की बाह्यत्वचा खींच कर ले गये। यही शिव-रूपी वीरभद्र शरभावतार तथा आकाशभैरवादि नाम से प्रसिद्ध हैं। आदिशिवकृत इस प्रस्तुत ग्रन्थ में यही शंकरावतार-शरभ, खगपति, शरभेश्वर तथा आकाश-भैरवादि बहुत से नामों से सम्बोधित इस तंत्र के मुख्य देवता हैं। वेद प्रधान इस तंत्रग्रन्थ में इनकी साधना तथा शूलिनी आदि इनकी बहुविध शक्तियों द्वारा मारण-उच्चाटन-स्तंभन-मोहन-वशीकरणादि षट्कर्म-सिद्धि के लिए इक्यासी अध्यायों में आशु एवं प्रत्यक्ष फल कारक सिद्ध विधान दिये हैं।

जब किसी सुसंस्कृत विधि से सृष्टि, स्थिति एवं लयकरी असंख्य ईश्वरीय शक्तियों द्वारा सञ्चालित विविध क्रियाओं को मनोवाञ्छित मार्ग पर लाकर मनोरथ सिद्ध कर लिये जाते हैं, अथवा शब्द, ध्वनि, औषधि, सङ्कल्प एवं भावनाओं द्वारा दृश्यादृश्य ईश्वरीय-शक्तियों को ग्रहण कर के उनके द्वारा लौकिकालौकिक विविध प्रकार के मनोवाञ्छित कार्यों पर सफलता प्राप्त की जाती है, तो उस की अधिष्ठात्री-विद्या तंत्र कहलाती है। तंत्र, विज्ञान रूपी एक विशाल समुद्र है और नाना प्रकार की विद्याएं इस की तरङ्गें। यह एक बड़ा भारी विज्ञान है, इस में पूजा पद्धति भी है, यौगिक क्रियायें भी हैं, जप पाठ भी हैं, मातृका, शब्द, ध्वनि, स्वर, वर्ण, विन्दु, नादादि से नियमसिद्ध मंत्र भी हैं और मंत्ररहित क्रियाएं भी—स्वरों से रासायनिक द्रव्य, वर्णों से धातु उपधातु तथा मातृकाओं के शेष वर्णों एवं उनके मिलान से विविध औषधि तथा रासायनिक द्रव्यों के भीं सङ्केत मिलते हैं। यंत्रावलियां रहस्यों से भरी हैं इन में पूजा पद्धति भी है, धारणा एवं प्रयोग क्रियाएं भी हैं और इनमें विशेष मशीनरी बनाने के भी सङ्केत हैं। जिस तरह दो प्रकार की वायु (गैसें) मिलकर या परस्पर रगड़ खाकर आर्द्रता-शुष्कता या शीतलता ले आती हैं, अथवा उन से अग्नि की ज्वालाएं या विद्युत सरीखा तेज एवं शक्ति उत्पन्न हो सकती है, ठीक उसी प्रकार मातृकाओं तथा उनसे मिश्रित अक्षरों के उच्चारण से उत्पन्न नाना प्रकार की ध्वनियों के परस्पर मिलान या घर्षण से प्रकृति एवं वातावरण में अमृत और प्रेम की लहरें तरङ्गित हो रही होती हैं, और कभी विरुद्ध-मिलान से द्वेष, परस्पर विरोध, सूनापन एवं संहारात्मक भयानक वातावरण।

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, कि तंत्र विद्या का एक बहुत विशाल

क्षेत्र है और नाना प्रकार के विषय इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। तन्त्र विद्या से सम्बन्धित श्री आकाशभैरवकल्पाख्य इस ग्रन्थ में आदिनाथ श्री शिवमुख द्वारा प्रकाश में आई हुई विद्याओं के प्रयोग से राजा से लेकर एक साधारण व्यक्ति तक के राज्य सम्बन्धित, सांसारिक, व्यवहारिक अथवा गार्हस्थ्य से सम्बन्ध रखने वाली विविध समस्याओं के निवारण के लिय सिद्ध तथा सरल विधियां दी हुई हैं, इसीलिये इस ग्रन्थ की विशेष महानता है। देश भर के पूर्व से पश्चिम एवं दक्षिण से उत्तर तक इस ग्रन्थ के विषयों का विद्वानों में समादर पाना इस ग्रन्थ की विशेष उपादेयता तथा प्राचीनता सिद्ध करता है। प्राचीन हस्तलिखित प्रतिलिपियों पर क्रमशः सैकड़ों सहस्रों बार प्रतिलिपि लिखते समय अशुद्धियों का हो जाना स्वाभाविक है, इस ग्रन्थ में कतिपय ऐसा देखा गया है अथवा कहीं कहीं तो उनका अभिप्राय अच्छे प्रकार स्पष्ट न समझा जा सकने के कारण उनको उसी प्रकार लिखा गया था। यद्यपि मैंने कई स्थानों पर उनको शुद्ध करने का यत्न किया है, किन्तु बहुत क्लिष्ट एवं कुछ स्थानों पर अप्रासंगिक होने के कारण उनको उसी प्रकार छोड़ दिया गया है। और दो एक स्थानों पर अक्षर मिटे होने के कारण मूल प्रतिलिपि में भी वह श्लोक अधूरे ही छोड़ दिए गए थे, उनको भी तद्वत् लिखते हुए पुनः पूर्ण कर सकने के सङ्कल्प के साथ छोड़ दिया गया है। यदि किसी विद्वान् महोदय के पास यह ग्रन्थ मौजूद हो, तो आशा है कि वह हमें इस उत्क्षेप से हुई क्षति को पूर्ण कराने में सहायक होंगे। फिर भी बहुत सी अशुद्धियां अभी भी हैं, जिन्हें मैं ठीक नहीं कर पाया हूं। आशा है कि विद्वान् अगले संस्करण में उनके निवारणार्थ मार्ग दर्शक बनेंगे ॥

आभार प्रदर्शन

मुझ जैसा साधनरहित, चिकित्सादि कार्यों में व्यस्त एवं प्रकाशन-कार्य से सर्वथा अनुभवहीन व्यक्ति इतने बड़े कार्य को कभी भी न कर पाता, यदि मुझे इस ग्रंथ के सम्पादन, संशोधनादि कार्यों के लिए गीर्वाण-भारती-क्षेत्र के प्रकाण्ड तथा प्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक के सुपुत्र चिरञ्जीव डा० वाचस्पति शास्त्री, साहित्याचार्य, एम० ए०, पी० एच० डी० का हार्दिक एवं पूर्ण सहयोग प्राप्त न होता। श्री डाक्टर साहिब ने अत्यधिक समय, अनथक परिश्रम तथा विशेष योग्यता के बल पर इस कठिन और महान् कार्य में जो मेरी सहायता की है, उसके लिए मेरे पास उनके तथा उनके परिवार के लिए आशीर्वाद से अधिक कोई शब्द नहीं, जगदीश्वर उनके कुल में उत्तरोत्तर वृद्धि देता हुआ उनको श्री मार्तण्डवत् प्रकाशमान् रखें, और वह अपने जीवन में भरपूर सफलताएं प्राप्त करें।

इसी प्रकार लाजपतनगर निवासी श्री पं० ज्ञानचन्दजी शास्त्री एम० ए० ने भी कुछ दो तीन फर्मों के संशोधन कार्य में सहायता की थी, मैं उनका भी आभारी हूं।

इसके अतिरिक्त मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्री पं० फकीरचन्द्र जी धम्मी शास्त्री के

आशीर्वाद तथा मेरे अनुज भ्राता पं० पद्मनाभ जी धम्मी शास्त्री, कनिष्ठ भ्राता पं० शिवकुमार धम्मी तथा भ्रातृव्य राजज्योतिषी पं० देवलचन्द्र जी धम्मी तथा पं० सूर्यकुमार जी धम्मी का सौहार्द एवं सहयोग मेरे साथ रहा है। मेरी पुत्री श्रीमती राजरानी शर्मा एम० ए० बी० एड० आयुर्वेदाचार्य, एम० ए० एम० एस० ने भी इस ग्रन्थ की भूमिका-लेखन तथा सम्पादन में मुझे भरसक सहयोग दिया है।

किसी किसी के हाथ से कोई कोई कार्य आरम्भ करा दिया जाए तो वह पूर्णता को प्राप्त होता है। यह श्रेय मेरी शिष्या श्रीमती स्वदेश अरोड़ा एम० ए० संस्कृत को है, जिसने मेरे संग्रहालय में रखी हुई मूल प्रतिलिपि से अपना बहुत समय देते हुए बहुत श्रम पूर्वक मुद्रण कार्य के लिए नई प्रतिलिपि बनाई।

निगमागम विद्याओं के परम श्रद्धालु, धर्ममूर्ति श्री लाला देसराज जी गुप्त तथा उनके सुपुत्र आयुष्मान् श्री शीतल प्रसाद जी गुप्त ने इस ग्रन्थ के मुद्रण तथा प्रकाशन एवं प्राचीन भारतीय वाङ्मय की विद्याओं विशेषतया-वेद, वेदांग तथा तंत्र साहित्य के ऋष्यर्चन एवं प्रकाशन के लिए निरन्तर उद्यमशील। परम विदुषी श्रीमती शान्ति देवी जी मल्होत्रा तथा उनके सुपुत्र आदर्शरत्न मल्होत्रा तथा श्री दिव्यरत्न मल्होत्रा ने इस ग्रन्थ की जिल्द बन्दी के सारे खर्च का भार अपने ऊपर लिया है, उन सब को कोटिशः आशीर्वाद देता हुआ इन सबके लिए आभार प्रदर्शन करता हूं।

नानक चन्द्र शर्मा (धम्मी-भारद्वाज)
(वैद्य कविराज)

॥ ॐ श्री ॥

आकाश-भैरव-कल्प (तंत्रम्)

(अध्यायानुसार संक्षिप्त-हिन्दी-सारांश)

अध्याय १-२

श्री आकाशभैरव कल्प के प्रथम अध्याय में श्री देवी जी सभी विश्व के कल्याण एवं हितार्थ निखिल संसार की मनःकामनाओं और कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए भगवान् श्री सदाशिव से परम गुह्य विद्या के उपदेश के लिए प्रार्थना करती हैं तथा भगवान् शिव ने प्रत्युत्तर में उन्हें सभी कार्यों के आरम्भ में सर्व प्रथम ब्रह्मरूपी श्री गुरु को नमस्कार करने के बाद एकान्त स्थान में पीठस्थापना करके देव-द्विजादिकों का आशीर्वाद लेकर भूतादि शुद्धि-अङ्गन्यासादि के साथ साथ सभी प्रकार के विघ्न-नाशन एवं सर्वप्रकार के मनोरथों में सिद्धि प्राप्ति के लिए पञ्चाक्षर, द्वयक्षर, एकविंशाक्षर अथवा अट्ठाईसाक्षर मन्त्र से श्री महागणपति की पूजन करने की विधि बतलाई।

साधक पीठासीन-कर्णिकान्तर्गत **श्रीगणेश** जी की नवशक्तियों "तीव्रा-ज्वालिनी-नन्दा-भोगदा-कामरूपिणी-उग्रा-तेजोवती-सत्या-विघ्नविनाशिनी" जो सभी रक्त वर्ण वाली—रक्त वस्त्र धारण किए हुए एवं सिन्दूरादि आभरणों से विभूषित हैं और वर तथा अभय दान की मुद्रा में हैं, की सुगन्धित पुष्पों द्वारा पूजन करे। अब इनके मध्य में श्री गणेश-महायन्त्र की "बिन्दु-त्रिकोण-षट्कोण-अष्टदल-चतुरस्रादि" के अनुसार यथाविधि कल्पना करके बिन्दु में श्री गणेश तथा त्रिकोण की बाह्य दिशा में श्री लक्ष्मी जी का पूजन करे, तदनन्तर पूर्व में श्री सहित श्रीपति, दक्षिण में अम्बिका सहित अम्बिकापति, पश्चिम में रति सहित काम, तथा उत्तर दिशा में मही सहित महीपति की पूजन करनी चाहिए। इसके अनन्तर षट्कोण में देवता के अग्रभाग से क्रमपूर्वक पूर्वदक्षिणादि प्रदक्षिणा क्रम से ऋद्धयामोद, समृद्धि-प्रमोद कान्ति-सुमुख-मदनावती दुर्मुख, मदद्रवा-अविघ्न, द्राविणी विघ्नकर्तृ की पूजन करके दक्षिण की ओर पार्श्व में वसुधारा-शंखनिधि तथा वाम पार्श्व में वसुमती-पद्मनिधि की पूजन करे। इसके अनन्तर अग्न्यादि चारों कोणों और पूर्वादि चारों दिशाओं में धर्मादिकों तथा अष्टदल-कमल पर पूर्वादि क्रम से यथाविधि ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, सिद्धचामुण्डा आदि अष्टमातृकाओं तथा अङ्गदेवियों की पूजन करनी चाहिए, और फिर क्रमपूर्वक दिशाओं में लोकपालों की पूजन करते हुए यंत्र के बाहिर की ओर 'अ' से 'क्ष' तक पच्चासों मातृकाओं के अधीशों की अर्चना करे और तदनन्तर यंत्र के बाहिर दो भूचक्रों पर क्रम से श्री गणेश के अस्त्रों पाश और अङ्कुश का

समर्चन करता हुआ गन्ध-माल्य-धूप-दीपादि उपचारों द्वारा चक्रराज की पूजन करे, और फिर श्रीगणेश जी की उनके ध्यानपूर्वक, यथाशक्ति आराधना एवं जप करे, और फिर श्रद्धाभाव से श्री गणेशजी के सोलह (१६) नामों का स्मरण करे। इस प्रकार श्री गणेश की आराधना से विघ्न नहीं होते तथा सभी कार्यों में सफलता मिला करती है।

यहां इस ग्रन्थ में "सुमुखश्चैकदन्तश्च०" इस प्रसिद्ध पौराणिक मन्त्र में "द्वादशैतानि नामानि०" के स्थान पर "षोडशैतानि नामानि०" देते हुए "वक्रतुण्ड-शूर्पकर्ण-हेरम्ब और स्कन्द" चार नाम अधिक दिए हैं, तथा इसके बाद नवकोष्ठात्मक पीठ पर श्री आकाशभैरव की आराधना के आदेश दिए हैं।

अध्याय ३-४

इस अध्याय में श्री शिव ने लोककल्याणार्थ श्री भैरव का आकाशभैरव-आशुगरुड़ तथा शरभेश्वर तीन रूपों में विभक्त होने का वर्णन किया है, इसी प्रकार श्री शरभेश्वर के पुनः तीन रूप शरभ-सालुव तथा पक्षिराज बतलाते हुए श्री शिव ने उन की ऋषि-छन्दादि विनियोग तथा ध्यानादि पूर्वक आराधना करने के लिए उपदेश दिया। तदनन्तर सर्वत्र व्यापक श्री आदिशिव श्री भैरव का ध्यान करते हुए गुरुमुख से प्राप्त षोडशाक्षर मंत्र का जपाङ्गों के सहित एक लक्ष जप करने का कहा। यहीं श्री भैरव यन्त्र, उसके पूजन की विधि बताते हुए मनोवाञ्छित कामनाओं में सफलता प्राप्ति के लिए पूजनानन्तर वेदोक्त श्री रुद्रसूक्त के पाठ का विधान दिया है। रुद्रसूक्त के तीन बार पाठ करने से देवता प्रसन्न होते हैं, तथा भिन्न भिन्न संख्या में रुद्रसूक्त का जप पाठ कई प्रकार की सिद्धियां एवं मनोरथ पूर्ण करता है। रुद्रसूक्त से शिवलिंग का अभिषेचन (रुद्राभिषेक) चतुर्थ अध्याय में दर्शित विधि द्वारा एकादश बार करने से असाध्य कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं।

रुद्राभिषेक के लिए वेद-मन्त्रों द्वारा यथाविधि कलश स्थापना कर के साधक, मातृका वीज सहित पुरुषसूक्त मंत्रों से अङ्गन्यास करे तथा **"इमं मे गङ्गे०"** इस वेद मंत्र द्वारा जल पूर्णशङ्ख से अपने शरीर पर मार्जन करे, तदनन्तर श्री रुद्र महादेव का वैदिक ऋचाओं द्वारा आवाहनादि करता हुआ इष्ट-देवता की पूजन करे, तदनन्तर **श्री सूक्त-घृत सूक्त-भूसूक्त-पुरुष सूक्त-ब्रह्म सूक्त-विष्णु सूक्तादिकों** का पाठ करने के पश्चात् **श्री रुद्रपञ्चक** का यथादर्शित विधि से पाठ करके **"सोऽहं" "सोऽहं"** प्राणमंत्र का स्मरण करते हुए श्री गुरुचरण सूक्त से श्री गुरुचरणों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हुआ तीन बार श्री गुरुचरणोदक का पान करे।

"अविद्या-मूल-नाशाय जन्म-कर्म-निवृत्तये।
ज्ञान-सौभाग्य-सिद्धयर्थं गुरुपादोदकं शुभम् ॥"

श्री **गुरुचरणोदक** अज्ञान रूपी अन्धकार को समूल नष्ट करता है, तथा बुद्धि, ज्ञान, सौभाग्य और सर्वत्र सिद्धि-प्रदायक है इस प्रकार श्री भैरव की महदाराधना श्री गुरुमुख से ही शिक्षा ले कर करनी चाहिए, ऐसा आदेश दिया गया है।

अध्याय ५

इस अध्याय में निग्रहानुग्रहादि सभी कार्यों में यथेष्ट सफलता प्राप्त करने के लिये श्री शरभ यंत्रराज का वर्णन किया है। यथाविधि तीन सीधी और तीन तिरछी रेखाएं एक दूसरे को काटती हुई लिख कर रेखाओं के अग्रसिरों पर त्रिशूल बनाएं और उसके कोष्ठों में "धूं कुरु कुरु फट्" क्रम से लिखें। अब इस यंत्र पर आकाश भैरव श्री शरभ का आवाहन करके अपना मनोवांछित अभिप्राय लिख कर इसकी यथाविधि स्थापना कर दें, फलस्वरूप इस यंत्र द्वारा निग्रहानुग्रहाख्य सभी प्रकार के मनोरथों की सिद्धि होती है। तथा भूत-प्रेत-पिशाच और वैरियों का दमन होता है।

इसके अनंतर इसी अध्याय में सप्तकूटात्मक श्री चिन्तामणि मंत्र कथन किया गया है—

" क्ष्म्र्यों "[1]

यहां इस श्लोक में "मरीचिकाश्यपि" से अभिप्राय ऋग्वेद की बहुप्रसिद्ध ॠचा "जातवेदसे०" से सम्बन्धित अग्निबीज "र" लिया है, चिन्तामणि महामंत्र तंत्रशास्त्र में विशेष प्रसिद्ध है तथा सभी प्रकार के चिन्तित कामनाओं को पूरा करता है। इस एक रक्षामंत्र के विविध संख्या में जप-प्रयोगादि करने से नाना प्रकार के कार्य सिद्ध होते हैं।

इस के अनन्तर श्री कामराज के चतुष्कूटात्मक प्रसिद्ध बीज "क्लीं" तथा महामाया का चतुष्कूटात्मक बहुप्रसिद्ध बीज "ह्रीं" का वर्णन किया है, जिनके स्वतन्त्र रूप में या मंत्र यंत्रों से युक्त या सम्पुटित करके यथोचित संख्या में जपानुष्ठानादि करने से नाना प्रकार के कार्यों में सफलता प्राप्त होती है।

तदनन्तर सभी प्रकार की समृद्धि देने वाला एवं राज या राजकार्यों में जय, यश, सिद्धि तथा समृद्धि देने वाला चतुष्कूटात्मक लक्ष्मी बीज "स्त्रैं"[2] का वर्णन है। इसी प्रकार द्रावण बीज "सां" जो पत्थर हृदयों को भी द्रवित कर देता है तथा सभी प्रकार की व्याधि एवं रोग निवारक भगवान् सूर्य के चतुष्कूटात्मक प्रसिद्ध "ह्रां" बीज का भी वर्णन किया है, जिस के दो लक्ष जप से कुष्ठ, तीन लक्ष जप से राजयक्ष्मा और चार लक्ष जप से सभी प्रकार के भयंकर तथा असाध्य रोग नष्ट हो जाते हैं।

---

१. चिन्तामणि मंत्र को कुछ टीकाकारों ने "क्ष्म्र्यौं" और कुछ ने क्ष्म्र्यीं, कहीं कहीं क्ष्म्र्यैं—क्ष्म्र्यां भी लिया गया है।

तंत्रसार संग्रह में ब्रह्ममज्जा विषाग्नित्वक् सद्यान्तार्घीश बिन्दुमान्।
पावक कांक्षितानर्थान् दद्याच्चिन्तामणिर्यथा ॥

तथा तत्रसार में अग्निः संवर्तकादित्यचानिलौ षष्ठ विन्दुमत्।
चिन्तामणिरिति ख्यातं बीजं सर्वसमृद्धिदम् ॥

२. "श्रीं"

(अध्याय ६-७-८-९-१०)

छठे अध्याय में **चित्रमाला नाम** का श्री आकाशभैरव का प्रसिद्ध मंत्र दिया गया है, जिसे गुरुस्मरण पूर्वक एकाग्रमन से सर्वार्थसिद्धि के लिए एक सौ बार पढ़ने का विधान है और दूसरे साधारण कार्यों में सफलता तथा विजय प्राप्ति के लिए केवल ३ बार ही पाठ करना पर्याप्त होता है ।

सातवें अध्याय में वशीकरण एवं आकर्षण कार्यों में सिद्धि के लिए देवता के ध्यान सहित विधि बतलाई गई है। वशीकरणादि कार्यों में मंत्रराज को "क्लीं" बीज से एवं आकर्षण कार्यों में "आं" बीज से सम्पुटित कर के साध्यनामाक्षर सहित मंत्र का स्मरण करना चाहिये, ऐसा विधान है ।

आठवें अध्याय में मोहन तथा द्रावण कार्यों के लिए विशेष विधि का उपदेश दिया गया है । श्री आकाश भैरव के विशेष प्रकार के ध्यान पूर्वक उसके मंत्रराज को "ह्रीं" बीज से सम्पुटित करके "साध्यं विमोहय २ स्वाहा" इस प्रकार अपने मनोरथात्मक शब्दों सहित स्मरण करें, और द्रावण कार्यों में "साध्यं द्रावय द्रावय स्वाहा" शब्दयुक्त मंत्रराज का अनुष्ठान करना चाहिए, इस प्रकार क्रिया करने से कामवश आर्कषित हुई स्त्रियां सम्मोहित होकर इस तरह द्रवीभूत हो जाती हैं, जिस तरह कि अग्नि के पास रखा हुआ घृत ।

नौवें अध्याय के अनुसार स्तंभन-विद्वेषादि कार्यों में श्री आकाशभैरव के विशेष रूप का ध्यान करते हुए स्तंभन के लिए "लं" तथा द्वेषकार्यों में 'हं' बीज से सम्पुटित करके स्वाहान्त मंत्रराज का पुरश्चरण करने का विधान है—इससे दश दिनों के अन्दर ही वैरी पक्ष आपस में लड़ पड़ते हैं ।

शत्रु-निग्रह एवं उच्चाटन कार्यों में श्री आकाशभैरव के दशमाध्याय में दिये गये ध्यान के अनुसार रूप का स्मरण करते हुए क्रम से "यं" तथा हुं इन बीज मंत्रों से महामंत्र को सम्पुटित करके यथाविधि ५०० बार नित्य दस रात्रि तक प्रयोग करने का उपदेश दिया है, इस से यथेष्ट फल प्राप्त होता है ।

(अध्याय ११)

इस अध्याय में **सारस्वत मंत्र** का वर्णन किया है, जिसके प्रयोग से जिह्वा पर साक्षात् सरस्वती बैठती है तथा गंगाप्रवाहवत् मुख से वाणी का निःसरण होता है, इस विद्या के विधिवत् प्रयोग से भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है ।

वाणी और वाक्सिद्धि के लिए श्री आकाशभैरव महामंत्र को 'वं' बीज से सम्पुटित कर के अन्त में स्वाहा शब्द लगाया जाए तथा चिन्तितार्थ प्राप्ति के लिए चिन्तामणिमंत्र, मोक्ष सिद्धि के लिए 'ओं' बीज और समृद्धि के लिए श्रीं बीज से सम्पुटित करना चाहिए । आरोग्य-प्राप्ति के लिए "घृणि" बीज, रोगनाशन के लिए "स्वौं" (ईं) तथा विषनाशन के लिए ठं बीज-सम्पुटित स्वाहान्त मंत्र का जप किया जाए । इस तरह साधक थोड़े प्रयास से मनोवांच्छित फल प्राप्त कर सकता है ।

(अध्याय १२)

इस अध्याय में **आशुताक्ष्र्य मंत्र** की विधि बताई गई है, जिसके प्रयोग से सकल जगम तथा अनंगम विष तथा विषजनित उपद्रव दूर होते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर इसे शत्रुनिग्रह के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। विनियोग के लिए मंत्र के ऋषि—छन्दादिकों का वर्णन करते हुए आशुताक्ष्र्य का ध्यान एवं मंत्र का उपदेश दिया गया है । यहीं प्रयोग और हवनविधि बताते हुए पूजन और धारणादि के लिए आशुताक्ष्र्य यंत्र का विधान दिया है जिससे सर्पादि का भय नहीं होता तथा सभी प्रकार से सिद्धि और विजय की प्राप्ति होती है ।

(अध्याय १३)

इस अध्याय में कामना भेद से यथानिर्दिष्ट बीजों से सम्पुटित कर के आशुगरुड़ के प्रयोग कहे गए हैं। इसके अनन्तर सम्मोहन—महासिद्धिकर आकर्षण यंत्र—वशीकरण यंत्र—पवनाग्निस्तंभनकर—स्तंभन—स्तोभन—भाषण—विद्वेषण—सर्वदण्डकारण—सर्वसंक्रामणसिद्धिप्रद—विजयकर—सर्पादिजंगम-विषनाशन—शत्रु-मारण तथा अतुल-सौभाग्यदायक—धनप्रद—सर्ववशीकर एवं सत्पुत्र-प्रदायक कई प्रकार के यंत्र लिखने तथा उनकी प्रयोगविधि का वर्णन किया गया है ।

(अध्याय १४)

इस अध्याय में **आशुताक्ष्र्य कवच** तथा उस के जप-पाठ का विधान दिखलाया गया है। इससे कुलवृद्धि एवं पुत्रप्राप्ति होती है। श्री आशुताक्ष्र्य का अतिगुप्त यंत्र जो सभी प्रकार की सिद्धि देने वाला है तथा जिसके धारणादि से मृतवत्सा जीवित पुत्रा—बन्ध्या सन्तानयुक्त एवं कन्या ही जन्मने वाली के पुत्र होता है, का उपदेश दिया गया है। शुक्रवार से ३ दिन तक १० बार नित्य कवच पाठ तथा भल्लातक अथवा देव-सर्षप से हवनादि करना चाहिए एवं अभिषेकादि क्रिया करके एक बार फिर जल में डुबकी लगवा कर रक्षाबंधन विधान किया जाय ।

(अध्याय १५)

इस अध्याय में **शिष्याचार विधि** का उपदेश है। किस प्रकार के व्यक्ति दीक्षा लेने के योग्य नहीं है, और यदि प्रमादवश या किसी भूल से कभी किसी अग्राह्यशिष्य को दीक्षा दी गई है अथवा शिष्य की बुद्धि में गुरु या विद्या के प्रति कोई विरोध या विकृति उत्पन्न होने से हानि का संशय हो रहा है तो उस शिष्य के विद्रावण के लिए श्री शिव ने विशेष विधि की मंत्रक्रिया बताई है। इसके अतिरिक्त दीक्षाविधि, गुरु ही आराध्य देव हैं—गुरु ही परम ज्योति हैं, गुरु ही सर्वोत्तरोत्तर हैं, इत्यादि गुरु की महानता और महिमा का वर्णन किया है। गुरु के आसन—गुरु के सामने ऊंचा या मुकाबले पर अथवा गुरुयान पर नहीं बैठना चाहिए—इत्यादि बहुत से शिक्षाएं दी हैं। अपने सर्वस्व समेत अपने आपको सदैव गुरु का ही समझना चाहिए। निग्रहानुग्रहात्मक सभी अनुष्ठान-क्रियाओं में सदैव श्री गुरु को अपने साथ ही समझना चाहिए तथा निर्भीक होकर सभी क्रियाएं करनी चाहिएं ।

(अध्याय १६)

श्री देवी ने श्री शिव से समस्त जन्तुओं के कष्ट-विनाशन, रक्षा एवं लोकोपकार की दृष्टि से सभी मंत्रों का साररूप महामंत्र जानने की इच्छा प्रकट की इस पर श्री शिव ने सभी प्रकार से रक्षा करने वाला, भोग और मोक्ष को देने वाला, सभी प्रकार के पाप फल का निवारक, अपस्मारादि सभी प्रकार के कठिन मानसिक रोगों को नष्ट करने वाला, ज्वर-रोग-अपमृत्यु आदि नाना प्रकार के कष्टों को हरने वाला तथा सर्व शत्रुकुलविनाशक **श्री शरभेश्वर के महामंत्र** का उपदेश दिया। श्री शरभेश्वर महामन्त्र के कालाग्निरुद्र ऋषि हैं, जगती छन्द और देवता स्वयं भगवान् शरभेश्वर हैं, मंत्र का बीज "खं" तथा उसकी शक्ति "स्वाहा" रूपिणी है तथा इसका प्रयोग मनोवांछित सभी कार्यों की सिद्धि के लिए किया जाता है। इस प्रकार विनियोग करने के बाद साधक '४२' अक्षर वाले इस महामंत्र के क्रमपूर्वक ३-२-१२-६-७-६ अक्षरों से करन्यास तथा हृदयादि न्यास करने के अनन्तर देवता के साथ एक भावना युक्त तथा श्री शरभेश्वर को अग्निरूप एवं तेजोरूप समझते हुए मंत्र वर्णों से निर्दिष्ट शरीरांगों पर न्यासकरे। अब श्री शरभेश्वर का यथोक्त दिव्य ध्यान करते हुए मूलमन्त्र का यथोक्तविधि से जप करे (मंत्रोद्धार मूल ग्रन्थ के ३२ पृष्ठ पर कर दिया गया है)। इस विधि से इस मन्त्र के ४२००० जप से सिद्धि हो जाती है, जपान्त में मनोरथानुसार निर्दिष्ट होमद्रव्यों से दशांश तर्पण तथा ब्राह्मण-भोजनादि अवश्य करना चाहिए, तथा हवन के बाद तीन बार इस से अगले १७ अध्याय में बतलाये गये स्तोत्र सहित श्री शरभेशाष्टक का पाठ करने से मनोवांछित कार्य सिद्ध होते हैं।

तदनन्तर श्री **शरभेश्वर महायन्त्र** विधि बतलाई गई है, जिसके धारण करने से साधक मनोभीष्ट कार्यों में सिद्धि-समृद्धि-सौभाग्य-सर्वत्रविजय और सर्वसम्पत्ति आदि को प्राप्त कर सकता है, और सभी प्रकार के पाप और बाधाओं का निवारण होता है, नाना प्रकार के कठिन रोग, न समझे जा सकने वाले रोग, क्षुद्र रोग तथा भूत-पिशाचादादिकों के प्रकोपों का शमन होता है।

यहीं **शरभेश्वर चक्र** का विधान दिया है, छ और सात सीधी और तिरछी रेखाएं खेंच कर रेखाओं के अग्रभाग पर त्रिशूल बनाए और शूल के अग्रभाग पर साध्य का नाम लिख कर यंत्र के बाहिर गोलाकार चक्र में "**ओं ह्रीं**" शब्द लिखे कोष्ठों में मन्त्राक्षर लिखे—यह यंत्र सभी प्रकार से विजयादि देने वाला है।

(अध्याय १७)

इस अध्याय में श्री **शरभेश्वर का ध्यान** वर्णन करते हुए स्तोत्र-सहित श्री शरभेश्वराष्टक तथा इस स्तोत्र के पाठ फलादि का वर्णन किया है, इसके नित्य पाठ से सभी प्रकार की कामनाओं को प्राप्त करते हुए अन्त में शिवलोक की प्राप्ति होती है, साधक की चोर, अग्नि, व्याघ्र, हाथी आदि हिंसक जीवों तथा भूत, पिशाच,

राक्षसादिकों के उपद्रव से रक्षा होती है, सभी पापों से निवृत्ति हो कर राजयक्ष्मादि नाना प्रकार के कठिन रोगों से छुटकारा मिलता है ।

(अध्याय १८)

इस अध्याय में **श्री शरभेश्वर** के माला-मंत्र पर प्रकाश डाला गया है, जिस के स्मरण-मात्र से सभी प्रकार की सिद्धियां साधक के करस्थ होती है ।।

वश्याकर्षणादि कार्यों में श्री शरभेश्वर का किस प्रकार ध्यान किया जाय, यह बताते हुए प्रथम श्लोक में आकर्षण मंत्र की विधि बताई गई है, जिस के द्वारा सभी संसार का मोहन, योषिताओं का आकर्षण और वशीकरण, साम्राज्य और लक्ष्मी की प्राप्ति एवं शत्रुओं पर विजय होती है ।।

दूसरे श्लोक में आकर्षण कार्यों के लिये अन्य यंत्र बनाने का विधान दिया गया है, जिस के द्वारा अदृष्ट स्त्री भी साधक के पास खिची आती है और उसका वशीकरण होता है ।।

तदनन्तर स्तंभन-विद्वेषणादि कार्यों में श्री शरभेश्वर का किस प्रकार ध्यान करके प्रयोगारंभ किया जाए, बतलाते हुए चतुर्थ श्लोक में स्तंभन-यंत्र लिखने का रहस्य बताया गया है, जिसके प्रयोग से शत्रुओं की जिव्हा, दृष्टि, कर्ण, हनु, मति, गति आदि का स्तंभन होता है ।।

इसी प्रकार पञ्चम श्लोक में विद्वेषण यंत्र की विधि बताई गई है जिस के प्रभाव से दो घनिष्ठ मित्र भी एक दूसरे के जीवन के शत्रु बन जाते हैं ।।

मारणोच्चाटनादि कार्यों में श्री शरभेश्वर का स्मरण किस रूप में करना चाहिए, यह बतलाते हुए सातवें श्लोक में सभी शत्रुओं के उच्चाटन के लिये यंत्र विधि वर्णन की गई है । इससे शत्रु भूत, रोग, पिशाचादि-ग्रह, कलहादि विविध कारणों से आक्रांत और परेशान हो कर उच्चाट मन से भाग जाता है ।

आठवें श्लोक में श्री शिव ने सर्वसंहारात्मक मारण-यंत्र बनाने की विधि बताई है, यंत्र में साध्य का नाम लिख कर यथाविधि प्रयोग करने से यथेष्ट फल होता है ।

यंत्र लिखते समय एवं प्रयोग-काल में नवम श्लोकोक्त श्री शरभेश्वर अस्त्र विद्या (श्री शरभेश्वर गायत्री) का पाठ करना चाहिये । श्री शरभास्त्र-विद्या के प्रभाव से साधक को देवता और राक्षस तक भी नहीं देख पाते साधारण मनुष्यों और पिशाचादिकों का तो कहना ही क्या है ।।

विषवृक्ष प्रयोग

रात्रि काल में विषवृक्ष के काष्ठ और पत्रादिक पर श्लोक १५ के अनुसार साध्य नाम-युक्त मंत्र लिख कर यंत्र पर साध्य के प्राण प्रतिष्ठापित करे, तथा श्री शरभेश्वर यंत्र का १००८ जप करके बलिपूर्वक दक्षिण दिशा में (श्मशानादि में) गाड़ दे, तदनन्तर स्नान कर के फिर १००८ बार जप करे, इस प्रयोग से निःसंदेह शत्रुओं का मरण होता है ।।

सूय ग्रहण से १० दिन पहिले शत्रु की यथापूर्व प्रतिमा बना कर प्राण प्रतिष्ठा कर लें और उसे सूर्यमण्डल में भावना-दृष्टि से स्थित मनन करते हुए श्री शरभेश्वर-मंत्र का यथोक्त विधि से १००८ पाठ नित्य करें, १० दिनों के बाद सूर्यग्रहण काल में शत्रु को अधोमुख और कृष्ण-वर्ण से आक्रान्त समझते हुए श्री शरभेश्वर मंत्र का १००८ बार जप करें, तथा जपांत में सूर्य को तीन बार अर्घ प्रदान करे, इस विधि से उसी दिन शत्रु मर जाता है ।।

श्लोक २२ के अनुसार इसी प्रकार शत्रु का नाम लेकर शरभेश्वर मंत्र का १०० बार दक्षिणाभिमुख होकर घृत-युक्त हवन करने से भी शत्रु दिनावसान तक विनाश को प्राप्त होता है ।

२३वें श्लोक में श्री शरभेश्वर के अन्य सिद्ध यंत्र का भी वर्णन है तथा २४वें श्लोक में सभी प्रकार की रक्षा, सौभाग्य-वर्द्धन और सर्वत्र विजय प्राप्ति के लिये श्री शरभ का विशेष मंत्र दिया गया है—जिसे अथर्वण विद्याओं से सम्बन्धित कहा गया है—और जिसे यंत्र कार्यों में भी प्रयोग किया जाता है ।

२७वें श्लोक में शत्रुकृत तंत्राभिचार एवं क्षुद्रों से संरक्षण एवं तज्जात दुष्टफल-निवारण के लिये यंत्र विधि बतलाई गई है ।

(अध्याय १९)

निग्रह कार्य कहां करना चाहिये या कहां नहीं करना चाहिये, इस अध्याय में श्री शिव ने बहुत सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है ।

जो व्यक्ति अपने तथा पराये दोषों को गुप्त रखते हैं ऐसे उत्तम पुरुष के लिये निग्रह के लिये मन में कल्पना तक नहीं करना चाहिये । इसी प्रकार द्रव्य के लोभ अथवा दूषण के भय से किसी भी वधू के लिये निग्रह-कार्य निन्दनीय है, एवं गुरु, गुरु पुत्र, वन्द्य, दीक्षित, सत्यवादी, सन्यासी, योगी अथवा व्रतानुष्ठानादि-निष्ठ व्यक्ति के लिये मारण कर्म कदापि नहीं करना चाहिए ।

अत्यन्त दु:खी, भयभीत, क्रोधावेश से या राजा की आज्ञा से यदि कोई किसी को गालीगलोचादि या कभी दण्ड देता है या तिरस्कार करता है, किन्तु बाद में अपनी गलती या मजबूरी का अनुभव करते हुए क्षमा याचना कर लेता है तो ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध भी निग्रह कार्य कदापि न किया जाय, अन्यथा श्री शरभेश्वर विपरीत फल भी तत्काल देते हैं । इस प्रकार बहुत सी शिक्षा दी हैं ।।

(अध्याय २०)

इस अध्याय में विविध प्रकार की कामनाओं में सिद्धि प्राप्त करने के लिये होमार्थ विविध प्रकार के हवन-द्रव्य, समिधादि लेने का विधान दिया है, स्थण्डिल विधि का भी निर्देश है । इस प्रकार पिशाचादि निवारण, उन्माद, ताप, ज्वरशूलादि से निवृत्ति, सर्वापत्ति-निवारण, चातुर्थिक ज्वर शान्ति, आयु-आरोग्य-प्राप्ति, बुद्धिवर्द्धन रोगनिवारण, मैत्रीकरण, अनन्त-धन-प्राप्ति, पुत्रकामना, प्रासाद-कामना, वशीकरण

कार्य, आकर्षण-कर्म, विद्वेषण-कर्म, स्तंभन-कर्म, उच्चाटन-कर्म, संहार-कर्म, शत्रुओं का उन्मादीकरण एवं उन्माद विमुक्ति, वाक्सिद्धि, धन-प्राप्ति, धान्य-वर्द्धन, पाप-निवारण, भाग्य-सम्वर्द्धन, द्रव्यलाभ, शक्ति, पुष्टि, रूप, कामशक्ति आदि की प्राप्ति, अभीष्ट-प्राप्ति, प्रसन्नता-प्राप्ति तथा शत्रु-क्षय कार्यों के लिए विविध प्रकार की होम-विधि बताई गई है तथा श्री सालुवेश यंत्र का विवरण देते हुए कुछ सिद्ध प्रयोग भी दिये गए हैं, जिनके विधिवत् करने से शत्रु सद्यः यमपुरी में चला जाता है ।।

(अध्याय २१)

निग्रह-कार्यों में श्री सालुवेश का ध्यान वर्णन करते हुए शत्रुओं को पीड़ित करने के लिए पुत्तलिका विधि बताई गई है। शत्रु जहां भूमि पर पांव धरे, वहां से थोड़ी मृत्तिका उठा लें, और उसमें चतुष्पथ (चौराहे) की मिट्टी मिला कर शत्रु की पुत्तली (प्रतिमा) बनाएं। अब इस पुत्तली में शत्रु के प्राण यथाविधि प्राण-प्रतिष्ठा मंत्रों से स्थापित करके उसे एक सौ बार प्राण-प्रतिष्ठा मंत्र से ही अभिमंत्रित कर लें, अब इस पर १००० बार श्री शरभेश्वर-मंत्र पढ़ कर मूलमंत्र से ही उस मूर्ति के जिस जिस अङ्ग में सूई आदि नोकदार कोई वस्तु चुभोकर बींध दिया जाए तो उस व्यक्ति के उस अङ्ग में तत्क्षण तीव्र पीड़ा होती है। और यदि उस पुत्तली को अग्नि ताप दिया जाए या अग्नि के निकट चूल्हा आदि में दबा दिया जाए तो उक्त शत्रु दाह-ज्वर से तत्काल पीड़ित होता है। और यदि उसी पुत्तलिका को त्रिकुटा और अर्कक्षार सहित अग्नि में जला दिया जाए तो शत्रु की तत्काल मृत्यु होती है।

इस प्रकार श्लोक ४ में बतलाए गए अन्य पुत्तलिका विधान में शत्रु सपरिवार पीड़ाओं से आक्रान्त हो जाता है। पांचवें श्लोक में शत्रुमारण के लिए एक और पुत्तलिका विधान भी दिया है। इसी तरह छठे सातवें श्लोक में भी शत्रुनाशन के लिए प्रतिमा विधियां दी है आठवें श्लोक में किसी शत्रु-स्त्री को पीड़ित करने तथा नौवें श्लोक में आवश्यकता समझने पर उसके मारण कर्म के लिए भी विधि दी गई है।

(अध्याय २२)

इस अध्याय में रक्षाभिषेक विधि का विशेष वर्णन किया गया है चतुरस्र भूमि को गोमय से लिप्त करके निर्दिष्ट द्रव्यों से नव-कोष्ठ बनाएं, तथा उसके मध्य कोष्ठ में एक वृत्ताकार लिख कर उसके मध्य में चतुरस्र बनाएं, अब उसके प्रत्येक कोष्ठ में यथाविधि पुष्पादि स्थापन करके उन पर नौ कुंभ रखें, प्रत्येक कुंभ पर नये दुपट्टे रख कर लाल धागे से लपेट दें अब इन को धूप-दीप प्रदर्शन तथा गन्ध पुष्पादि से अलंकृत कर के घड़ों में पानी भर दें अब इन घड़ों में जिस कामना के लिए अभिषेक कार्य करना है, उसके अनुसार श्लोक ६-७ में निर्दिष्ट रत्न डाल दिए जाएं। उन कुंभों पर दूर्वा और आम के पत्ते रखकर उस पर अलंकारों सहित नारियल रखकर उसे देवता के वाहन-रूप में कल्पना करें उस पर पुष्पासनादि रख कर १००८ बार श्री शरभेश्वर मंत्र का जप करें। अब स्नानादि से निवृत्ति के पश्चात् यजमान पूर्वाभिमुख

होकर बैठे तथा आचार्य उत्तर मुख होकर तीन दिन तक यथाविधि अभिषेक-कर्म करे इससे क्षुद्र रोगों से शीघ्र ही मुक्ति हो जाती है। पांच बार अभिषेक कार्य करने से वात रोग, पन्द्रह दिन तक अभिषेक कार्य करने से वात-शूल नष्ट हो जाते हैं, सर्व रोगों के नाशन के लिए १ मास तक, असाध्य शिरोरोगों के लिए भी १ मास तक—विलासी पिशाचादिकों की पीड़ा निवारण के लिए ३ मास तक अभिषेक करना चाहिए इसी प्रकार राजयक्ष्मा तथा अपस्मारादि कठिन रोगों के लिए १ वर्ष तक रुद्राभिषेक करना चाहिए, इस से सब रोग निश्चय ही ठीक हो जाते हैं।

इसी अध्याय में अभिषेक कर्म द्वारा **वन्ध्या चिकित्सा** भी कही गई है। ऋतुस्नाता शुद्ध तथा स्वस्थ वधू को दस दिन—काक वन्ध्या को बारह दिन—मृतवत्सा को सोलह दिन तक अभिषिञ्चित करके यथानिर्दिष्ट धातु या भूर्जपत्र पर यंत्र लिखें अब इस यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा करा के धारण करादें, इस प्रकार यथाविधि करवाने से अवश्य ही सन्तान होती है।

कार्त्तिक—ज्येष्ठ—भाद्रपद—चैत्र—फाल्गुन एवं मार्गशीर्ष में रक्षाभिषेक आरम्भ करने का विधान है, शेष महीनों में इसका आरंभ शुभ फलदायक नहीं होता।

अभिषेक विधि से गर्भ में पुत्र कन्या का भी ज्ञान हो सकता है।

(अध्याय २३)

इस अध्याय में **मनुष्य-मात्र के कष्ट निवारण,** सभी प्रकार की परेशानियों से मुक्ति तथा अपना मनोबल बढ़ाने, शत्रु-पक्ष द्वारा देश पर आक्रमण-जात संकट के मोचन एवं शत्रु-कृत नानाभिचार-कर्मादिकों से उत्पन्न ज्वरादि विविध रोग एवं महामारी आदि रोगों के शमन के लिए **बलि-विधान** दिया गया है।

ज्वरादि रोगों के शमन के लिए एक नया मिट्टी का बर्तन ले कर उसमें जल भर दें, अब उस पर कपास की जड़ और बीज, सैंधा नमक तथा नीम के पत्ते रखकर देव-भाव से इसे ३ बार प्रणाम करें, तथा यथाविधि पूजन करके तोरणमन्दिर में ले जाएं इसके बाद सायंकाल होने पर चौराहे (चतुष्पथ) में रख दें, इस प्रकार तीन सायंकाल क्रिया करने से रोगी ज्वरमुक्त हो जाता है।

इसी प्रकार और भी बहुत से बलि-विधान दिए गए हैं, जिनको विधिवत् करने से भूत, प्रेत, पिशाचादि ग्रहों के प्रकोप का निवारण होता है तथा शत्रु द्वारा प्रयोग की गईं घोर क्रियाओं द्वारा जनित दुष्ट प्रभाव नष्ट होकर कष्ट और आपत्तियों से शान्ति मिलती है, और शत्रु-पक्ष का दमन होता है।

इसी अध्याय में एक विशेष बलिविधान भी है, जिसमें देवता स्वयं प्रत्यक्ष होकर बलि ग्रहण करते हैं।

इसके अतिरिक्त महारोग, ज्वर, क्षुद्र, भूत, दुष्कृति आदि निवारण के लिए बलिदान की विधि भी हैं। तथा अध्यायान्त में बलि कर्म के लिए श्मशानरुद्र का विशेष मन्त्र भी दिया है, जिसके स्मरण से बलिकर्मादि विविध क्रियाओं में अपनी भी सभी प्रकार से **रक्षा होती है**।

(अध्याय २४)

इस अध्याय में साधक के लिए सदाचार-विधि का वर्णन किया गया है। साधक ब्राह्म मुहूर्त में उठकर अपने गुरुदेव को प्रणाम करके **शरभेशाष्टक** स्तोत्र का ३ बार मन में स्मरण करें, फिर श्रीगणेश और श्रीशरभेश्वर का ध्यान करते हुए यथोक्त विधान से स्नान—संध्या—तर्पणादि से निवृत्त होकर एक सौ आठ या बयालीस बार श्री शरभेश्वर मंत्र का जप करे। अब इसके अनन्तर नदीतट, देवालय या निर्जन किन्तु रम्य स्थान में सुखासन पर आसीन होकर श्री शिवादि को प्रणाम कर के भूतादि शुद्धि पूर्वक ४२००० मूलमंत्र का जप करे, इस प्रकार दशांश विधि से हवन—तर्पण—मार्जन—ब्राह्मण-भोजनादि करना चाहिए। हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण भोजनादि के बिना मंत्र फलदायक नहीं होते। अपितु इस से मनोवाञ्छित कार्य शीघ्र सिद्ध होते हैं, संग्राम में शत्रुओं पर विजय होती है, दुर्भाग्य सौभाग्य में परिवर्तित हो जाता है, अनावृष्टि से महावृष्टि आदि कई प्रकार के असाध्य कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार की पुरश्चर्या विशेष संख्या में करने से विविध प्रकार के मनोरथ प्राप्त होते हैं तथा अतुल सिद्धि मिलती है, इस प्रकार सविस्तर विवरण दिया गया है। एवं सूर्य-चन्द्रग्रहणादि काल में इसके पुरश्चरण से विशेष फल होने का संकेत दिया गया है।

तदुपरान्त पुरश्चरण क्रिया के साथ साथ कुछ विशेष वैदिक ऋचाओं के प्रयोग द्वारा शीघ्र विविध प्रकार के मनोरथ सिद्धि के लिए सहज उपाय बतलाए गए है।

यथा—व्यक्ति-विशेष से अपेक्षित धन प्राप्ति के लिए "**किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु०** ऋचा का जप-पाठ किया जाए तो वह व्यक्ति बिना मांगे ही स्वयं आकर यथेच्छित धन दे जाता है।

निर्जन वन या स्थान में अथवा भयावह जगह में राजा, चौर, डाकू अथवा शत्रु आदि की ओर से आई हुई आपत्ति के निवारण के लिए "**अभिव्ययस्व खदिरस्य०**" इस ऋचा का जप किया जाए तो सभी तरह के भय से साधक को मुक्ति मिलती है।

युद्ध, संग्राम, मल्लादि-युद्ध तथा विवादादिकों में जब परेशानियां अधिक हों और घबराहट बढ़ रही हो तो "**बलं धेहि०**" इस ऋचा का स्मरण करने से मनोबल और उद्यम सहित शक्ति बढ़कर प्रत्यक्ष विजय होती है।

शत्रु के साथ महान् युद्ध एवं शत्रु सेना से घिर जाने पर "वय: सुपर्णा:०" इस ऋचा का १०८ बार पाठ करें तो जिस प्रकार सूर्योदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है ठीक इसी प्रकार शत्रु के पराक्रम को जीत कर युद्ध को जीत लिया जाता है।

जल में डूब गए व्यक्ति की रक्षा एवं जलापत्ति शमन के लिए '**उदगादित्य०** इस ऋचा का स्मरण करना चाहिये, इससे भयंकर मगरमच्छादिकों से युक्त अथवा

दुर्गम तथा भयानक नदी में से भी सुख पूर्वक तैर कर पार हो जाता है अथवा साधक तैर कर पार हो सकता है।

सुख-प्रसव के लिए **"विजहीष्व०"** इस सूक्त से एक सौ बार अभिमंत्रित तैल यदि स्त्री को पान कराया जाए तो सुख पूर्वक बच्चा होता है और यदि कोई स्त्री इस प्रकार के अभिमंत्रित तैल को गर्भ के प्रथम पांचवें तीसरे तथा सप्तम मास में भी पी ले तो उसका तत्क्षण गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता है।

यदि आपत्ति काल में कहीं वन में निवास करना पड़े तो **"अयमस्मान् वनस्पति.०"** इस ऋचा के नित्य पाठ से हिंसक तथा अनिष्ट कर जीव कष्ट नहीं दे सकते तथा वनाधीश उसकी दिन रात स्वयं रक्षा करता है।

वन्ध्या स्त्री अथवा ऐसी स्त्री जो कन्याओं को ही जन्म देती है, को **"विष्णु-र्योनिं कल्पयतु०"** इस ऋचा से सहस्रवार अभिमंत्रित घृत १ मास तक पान कराया जाए, तो वन्ध्या सन्तान युक्त तथा कन्या जन्मने वाली के निश्चय पुत्र होता है।

जब बार बार बनते हुए कार्यों में विघ्न पड़ कर रुकावटें परेशान कर रही हों तो **"गणानां त्वा०"** इस ऋचा के जप से सभी प्रकार के विघ्न शान्त हो जाते है।

आत्म संरक्षण के लिए निम्न ऋचा से रक्षा-बन्धन तैयार किया जाए—

"बृहत्साम क्षत्रभृद्वृद्ध वृष्णियं त्रिष्ठुभौजा शुभितमुग्रवीरम्।
इन्द्रस्तोमेन पञ्चदशेन मध्यमिदं वातेन सगरेण रक्ष॥

तैत्तिरीय सं० ४-४-१२

रक्त वर्ण के सूत को यथाविधि अभिमंत्रित करते हुए ३-४-७ अथवा ११ गांठें (ग्रन्थियां) रक्षाविधि के अनुसार डालकर रक्षासूत्र को शिर में धारण करने से यक्ष-गंधर्व-राक्षसादि भी भयभीत होकर भाग जाते है, भूत-प्रेत-पिशाचादिक ग्रहों का तो कहना ही क्या; दुष्ट हिंसक जानवरों तथा जंगमादि सब विषैले एवं दुःखदाई जन्तुओं से भी रक्षा होती है—अध्यायान्त में शत्रुओं पर विजय पाने एवं शत्रुसंहार के लिए विशेष प्रकार का यंत्र, प्रयोग विधि सहित बतलाया गया है। श्री शिव का कथन है, कि यह सब क्रियाएं गुरुमुख द्वारा जानकर ही करने से सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं।

अध्याय २५-२६-२७-२८

२५वें अध्याय में माया-मंत्र तथा उसका पूजन-यंत्र, प्रयोगविधि के सहित दिया गया है, इस के विधिवत् पुरश्चरण से साधक मायावी हो जाता है, युद्धकाल में योद्धाओं को विजय दिलाने वाले इस यन्त्र के प्रभाव से शत्रु-पक्ष को हाथ पांव हिलाने की भी सूझ बूझ नहीं रहती।

२६वें अध्याय में श्री आकाश-भैरव के दिव्य यंत्र तथा उसकी सांगोपांग पूजन तथा पुरश्चरण की विधि दी गई है, जो सभी प्रकार से सिद्धि देने वाली, भोग-मोक्षप्रद तथा शत्रु, भूत, पिशाचादिकों को विशेषतया नष्ट करती है।

२७वें अध्याय में "अ" से "क्ष" तक मातृका अक्षर, उनके अधिष्ठातृ देवता,

रूप तथा गुणादि का विशेष महत्व, जपफलादि अति स्पष्ट एवं विज्ञानपूर्ण शब्दों के साथ वर्णन किया गया है। भगवान् शिव का कथन है कि मनोवाञ्छित कार्यों में सिद्धि के लिए साधक-श्रेष्ठ को यन्त्र मन्त्र और तंत्र तीनों क्रियाओं का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार पचास मातृका-वर्णों से युक्त **श्री शरभेश मंत्र** के पुरश्चरण का फलसहित वर्णन किया गया है। सौभाग्य सिद्धि के लिए भी मातृकावर्णों से पुटित अथवा युक्त श्री शरभेश-मन्त्र विशेष विधि द्वारा सफलताएं देता है। किन्तु शत्रुनाशन कर्म में मातृका-वर्णों को विलोम विधि से जोड़कर शरभेश मंत्र से पुरश्चर्या करनी चाहिए। मंत्रान्त में अपना मनोरथ और अभिप्राय बोलते हुए "स्वाहा" शब्द कह कर प्रयोग किया जाए, इस प्रकार सभी कामनाओं की सिद्धि के लिए मंत्र के साथ तन्त्र और यन्त्र क्रिया भी साथ साथ सुचारु रखनी चाहिए और यदि साधक विलोमार्णों से देवता के मन्त्र को ओतप्रोत करके यथोक्त विधि द्वारा दस हजार पाठ करता है तो दशों दिक्पालों की शक्तियां शत्रु के पराक्रम को छीन लेती है जिससे वह शीघ्र पराजित हो जाता है।

२८वें अध्याय में **श्री भद्रकाली-मन्त्र,** पूजन यन्त्र तथा उनके प्रयोग की विधि दर्शायी गई हैं। श्री भद्रकाली का मन्त्र इस प्रकार है—

"ईं ॐ काली ह्रीं कंकाली मह्यं सदा त्वं कल्याणी मनोहरी, इह कवितां अव्याहतं सौभाग्यं देहि, अस्मिन् पर-मन्त्र हारिणी रं, पर-यन्त्र-हारिणी रं, अहो पर-विद्याच्छेदिनी रं, ह्रीं स्वाहा।"

भद्रकाली के इस मन्त्र तथा यन्त्र के प्रभाव से शत्रु द्वारा फैलाया गया जाल नष्ट होकर शत्रुपक्ष का ही नाश हो जाता है। तथा साधक को अखण्ड सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

नीम के वृक्ष में स्थित कौवे का घोंसला अमावस्या के दिन लेकर उसे भस्म कर लें, अब इस भस्म को फैलाकर श्लोक ५-६ के अनुसार उस पर भद्रकाली का यन्त्र बना लें तथा काले या नीले पुष्पों से उसकी पूजन करें, तदनन्तर दक्षिणाभिमुख होकर १००८ बार भद्रकाली-मन्त्र का जप करें। अब उस भस्म द्वारा शत्रु की पुतली बना कर उस पर शत्रु की प्राणप्रतिष्ठा करें, फिर उसे काले वस्त्र में लपेट कर शत्रु स्थान में भूमि में गाड़ दें, इस प्रकार करने से शत्रु निश्चय ही मर जाता है, और यदि शत्रु अधिक बलवान् हो या उस पर पूरा प्रभाव न हो सका हो तो उपरोक्त क्रिया एक बार और दुहरायी जाए, इस से निश्चय ही शत्रु का शीघ्र पञ्चत्व होता है।

मारण कार्य सम्पन्न हो जाने पर पुतली को उखाड़कर अवरोहण मन्त्रों से अभिमंत्रित करके जल में डाल देना चाहिए। तदनन्तर साधक अपने वित्तानुसार देशिक-स्तोत्र पाठादिकों से श्री भद्रकाली को सन्तुष्ट करे, और भगवती से कृपा की याचना करे।

इसी प्रकार श्री भद्रकाली मन्त्र को ६४ कलाबीजों से ओतप्रोत करके जप करने से साधक सपरिवार सभी प्रकार की सिद्धि और समृद्धि से सम्पन्न जीवन व्यतीत करता हुआ देहान्त होने पर मुक्ति को प्राप्त होता है।

(अध्याय २६)

इस अध्याय में चिकित्सा की दृष्टि से कई प्रकार के सिद्ध-तैल और अंजनादि बनाने की विधियां दी हुई हैं, जिन के प्रयोग से कई प्रकार के दुःसाध्य रोग और भयंकर सर्प विष भी नष्ट हो जाते हैं।

शंकाक्षुद्र नामक मानसिकरोग से ग्रसित रोगी जो प्रत्येक वस्तु को संशयात्मक दृष्टि से देखता है, इन में किसी किसी को सब कुछ अपवित्र दृष्ट होता है, कोई सदैव प्रत्येक अथवा विशेष वस्तु वा व्यक्ति से भयभीत रहते हैं, अथवा सदैव अपने आपको रोगग्रस्त समझते हैं, ऐसे रोगियों के लिए रक्त अपामार्ग की मूल, वचा, लसुन समभाग लेकर महुआ, नीम तथा एरण्ड बीज के तैलों के साथ तैलपाक विधि से काली मिरच का प्रक्षेप देते हुए तैल सिद्ध करें। इस तैल के रोगानुसार पान, वस्ति, लेपादि से शंकाक्षुद्र रोग से शीघ्र निवृत्ति होती है।

नारियल की गरी तथा मायाफल दोनों समभाग लेकर नारियल के तैल में ही तैलपाक विधि से तैल सिद्ध करें, इस तैल के खान पान से गुह्यद्वार-गुह्योष्ठ ओष्ठ तथा हृदयादि से सम्बन्धित क्षुद्र रोग शान्त हो जाते हैं।

काले वर्ण के कुत्ते के नख और रोम तथा कम्बल नामक मृग विशेष के रोम लेकर अन्तर्धूम विधि से जला दें। अब इस भस्म को थोड़ी हींग मिला कर यथोचित मात्रा में गरम पानी से सेवन कराएं। इस प्रयोग से हृद्रोग (हृदय पीड़ादि) शान्त हो जाते हैं।

गन्धमांसी (जटामांसी विशेष), अपामार्ग, पुनर्नवा, हरिद्रा, शतावरी, लज्जालु, वचा, प्लाण्डु इन सब का मूलभाग-भूमिआमला-सोहांजना का सार (गोन्द) सब समभाग लेकर एरण्डतैल के साथ यथाविधि तैल सिद्ध करें, इस तैल के अभ्यङ्गादि से मस्तिष्क, नासा, हृदय, कर्ण, हाथ और पांव के बहुत से क्षुद्र रोग शान्त हो जाते हैं।

धत्तूर, बेर, पाटला, चित्रक, अर्क, गन्ध-पालाश सब का मूल भाग, गन्धमांसी, पीली सरसों, अपामार्ग-मूल, लाक्षा, शतावरी, गाजर बीज, लसुन, वचा—प्रत्येक १-१ पल (लगभग ४० ग्राम) जल ४ प्रस्थ (लगभग ५.१२० लिटर) निर्गुण्डी और आक के पत्र और पुष्पादिकों का स्वरस ४-४ प्रस्थ (५ लिटर १२० मि० लि०) सब को अग्नि पर चढ़ा कर यथाविधि क्वाथ करें। क्वाथ-शेष चतुर्थांश रहने पर इसके पांच भाग कर लें प्रत्येक भाग को क्रम से समभाग तिल, अलसी, सरसों, एरण्ड और नीम के तैलों के साथ कड़ाही में चढ़ा कर मंदाग्नि पर पाक करें, तैल मात्र शेष रहने पर छान कर अलग अलग रखें। रोगानुसार इन तैलों को अकेले या परस्पर मिलाकर सन्ध्या काल में गुग्गलु आदि से धूपादि-पूर्वक शिर से पांव तक या रोग युक्त अंग पर नरम हाथों से अभ्यङ्ग किया जाय, तो नाना प्रकार के वातादि कठिन रोगों से शीघ्र ही निवृत्ति मिलती है।

चौलाई के पत्ते, एकाब्ज (भूकदम्ब), गिलोय, शीतला, शमी (अथवा कदम्ब) की कोपलें, आकाशबेल, पुष्करमूल, मूली, कदम्ब, कमलकंद तथा वटजटा यह सब समान

भाग लेकर यथाविधि १६ गुण जल में क्वाथ करें, चतुर्थांश शेष रहने पर समभाग तिलतैल मिला कर पाक करें, सिद्ध होने पर प्रयोग करें, रक्तपित्त तथा त्वचा के रोगों के लिये अत्यन्त लाभदायक है।

कस्तूरी, गिलोय, पुष्करमूल, रुद्रजटा, लाल कमल की जड़, इलायची, लवङ्ग, महुआबीज, कुठ, वनचम्पक के पुष्प, मृगश्रृङ्ग की भस्म, श्वेत चम्पक—सब औषधियों का पृथक् पृथक् चूर्ण करके एकत्र मिला लें, अब इनमें से क्वाथौषधियों का यथाविधि क्वाथ सिद्ध करें, चतुर्थांश शेष रहने पर मृगशृङ्ग की भस्म मिलाएं, अब इसमें क्वाथ के बराबर तिलतैल-घृत-आमलास्वरस-गोदुग्ध और कत्तृण (रोहिष घास) का रस-तथा शर्करा मिलाकर मध्यम आँच पर तैल सिद्ध करें। कस्तूरी अन्त में मिलाएं। यह तैल प्राणोन्मुख नाना प्रकार के रोगियों को भी पुनः जीवन दान देता है तथा रसायन है, इसके प्रयोग से सौन्दर्य बढ़ता है, शरीर को पुष्ट करता हुआ पुनः कुमारावस्था देता है, स्त्रियों के रजोधर्म के विकार नष्ट होते हैं तथा पुरुषों की कामशक्ति बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त यह तैल वातपित्तनाशक, दुःसाध्य रक्तचापादि रोग, अति अङ्गताप, पित्त की अति वृद्धि, और इस प्रकार के नाना रोग इसके प्रयोग से शान्त हो जाते हैं। वातपित्त नाशक यह योग सभी प्रकार के रोगों में दिया जा सकता है। इसे लेप, लेहन तथा अभ्यङ्ग सभी प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है।

सर्पविष नाशन के लिये सिद्धाञ्जन योग दिया गया है—सुहागा-सैन्धानमक-हींग-हरिताल-कालीमिरच-पिप्पली-रसौंत (अथवा पारद) कर्पूर, इन सब को आक के दुग्ध में खरल करके वर्ती बना कर रखें, इसे शीतल पानी से घिस कर आंखों में आंजने से भयङ्कर सर्प का कटा भी विषरहित होकर जी जाता है।

शंख, तगर, तुत्थ, कालासुरमा, मनःशिला, कुक्कुटाण्डत्वक्, विष, त्रिकुटा, सफेद कोयल को नन्द्यावर्त (जल पिप्पली) की कलियों अथवा कोंपलों के स्वरस से १० दिन तक खरल किया जाए तथा वर्तिका बनाकर छाया में सुखा लें। रुद्रांजन नाम की यह अगद-रूपी महौषधि आवश्यकता पड़ने पर नंद्यावर्त की कलियों के स्वरस से घिस कर आंजने से सर्प विषादि के महावेगों को नष्ट करती है, तथा मूर्च्छा मोहादि नष्ट हो कर रोगी बच जाता है, इसके अतिरिक्त—ज्वर तथा जङ्गम कीटादि के विषों को नष्ट करता है। एवं अक्षिवात-पिल्ल-काच-कुकूल-मांस-पटल-पुष्पादि नेत्र के अनेक रोग भी दूर होते हैं।

शृङ्गी, लोमशफला[1] (शशुण्डली), ताम्रवल्ली, कमलमूल, सैन्धवनमक, तरुष्क, त्रिकुटा सब सम भाग—त्रिफला क्वाथ से तीन दिन तक खरल कर के अंजन तैयार कर लें, इस के आंखों में आंजने से आंखें बन्द नहीं हो पातीं, पलक खुले के खुले रह

---

१. शशुण्डली बहुफला तण्डुली क्षेत्रसंभवा। क्षुद्राम्ला लोमशफला धूम्रवृत्त फला च सा॥ धन्वन्तरिनिघण्टु।

जाते हैं। विष तो इससे नष्ट होती ही है, किन्तु शत्रु, कूटग्रह, पिशाच तथा भूतादिकों को परेशान करने के लिए यह अत्यन्त बढ़िया अस्त्र है, इसे पुन: ठीक करना अभीष्ट हो तो सुहांजना पुष्प के रस अथवा क्वाथ से नेत्र धो लें।

तालग्रन्थि, तालपत्र, तिलमूल, पुष्कर मूल इन सब को समभाग लेकर किसी हण्डिया में बन्द कर के लघुपुट में भस्म कर लें। इस भस्म को गुड़ में मिला कर खाने से पन्द्रह दिन के अन्दर उदरगतशल्य का निवारण होता है।

अपामार्ग के छिलके-रहित बीज गोक्षीर में भिगो दें, फिर इन्हें गोक्षीर में ही रगड़ कर उचित मात्रा में ३ मास तक प्रयोग करायें। इससे कुष्ठ-रोग का निवारण होता है, कीटदंशादि से उत्पन्न लूतादि त्वचा के विविध विकार, मण्डलकुष्ठादि शान्त हो जाते हैं।

त्रिकुटा, पद्मकेसर, तुत्थ, गन्धमांसी, बीज बीजक (असन के बीज), सब सम भाग, जम्मीरी के फल के रस से सात दिन तक खरल करें। इस औषध को आंखों में आंजने से नाना प्रकार के सर्प-विष एवं भूत, पिशाचादि नष्ट होते हैं इसी योग की वर्तिका बना कर रख लें—इसे कौमारिका-अंजन कहते हैं। नेत्रपुष्प (नेत्र के फोले) पर इसे निंबू रस से आंजने से फोला कट जाता है, कार्श्य (वड़हर अथवा कचूर) के रस से घिस कर आंजने से पिल्ल रोग नष्ट होता है, इसी प्रकार दुग्ध से घिस कर आंजने से पित्त जनित काच, गोमूत्र से घिस कर आंजने से कुकूनादि रोग छूट जाते हैं। तैल में घिस कर लगाने से पड़वाल रोग नष्ट होकर पलकों पर बाल फिर उग आते हैं। सुहांजने के रस से लगाने से माला रोग तथा सफेद चन्दन के साथ घिस कर नेत्रों में आंजने से तापज्वर से छुटकारा मिलता है। लवङ्ग के साथ रगड़ कर आंजने से चातुर्थिक ज्वर से मुक्ति मिलती है। बकरी के मूत्र से घिस कर आंजने से त्रिदोष ज्वर और ताल-दण्ड के रस से वातपित्त ज्वर नष्ट होता है, इसी प्रकार पान के रस से रगड़ कर आंजने से सूतिका-ज्वर नष्ट होता है। बच्चों के अपने ही मूत्र के साथ रगड़ कर आंजने से बालग्रह शान्त होते हैं इसी प्रकार कष्ट-प्रसवा के लिए मुख की लार से रगड़ कर अंजन किया जाए।

चावल तक्र में भिगो दें, दूसरे दिन उन्हें निकाल कर महीन पीस लें, इस योग को युक्ति से अग्निदग्ध-व्रण पर लगाने (लेपादि करने) से पीड़ा शीघ्र शान्त होती है।

कृष्ण-गुग्गुलु तिलतैल में अग्नि पर इतना पकावें, कि मरहम सी तैयार हो जाए, इसे रूई के फोहे से व्रण के मुख पर रखने से कच्चा फोड़ा स्वयं बैठ जाता है, यदि उसमें पीवादि पड़ गई हो तो शीघ्र ही पक कर फूट जाता है, घाव व क्षत पर लगाने से भी इसे यह ठीक करता है। इसी (प्रकार कुचला और मैन फल) को जल से रगड़ कर न पके हुए दुष्ट फोड़े पर लेप करें और उसके सूखने के बाद उपरोक्त गुग्गुलु मलहर का गरम फोहा रखें, और ऊपर पट्टी बांध दें, इस प्रकार तीन बार यह क्रिया करने से दुष्ट-व्रण, विद्रधि आदि वहीं शान्त हो जाते हैं।

आम्लिका (चिञ्चा-वृक्षाम्ल) का कन्द ले कर दूध के साथ महीन पीस कर प्रयोग कराने से जिन स्त्रियों को रजोदर्शन नहीं हो रहा होता, उनका सद्य: रक्त प्रवर्तन होता है।

तिलाक्षिणी-जटा (रुद्रजटा) की जटा लेकर उष:काल में दूध के साथ पिलाने से जिन स्त्रियों को ऋतु धर्म बिल्कुल नहीं होता, उनको भी रजोदर्शन होने लगता है।

कालीमिरच के चूर्ण को जम्भीरी निम्बू के उदर में भर दें और उसे फिर निर्गुण्डी रस में डुबो कर रख लें। चातुर्थिक ज्वर में बारी के दिन इस निम्बू का एक छोटा सा टुकड़ा रोगी को खिला दिया जाय तो चातुर्थिक ज्वर नहीं होता। इस औषध के स्वाद-मात्र से चातुर्थिकज्वर कोसों दूर भाग जाता है।

सूर्य-चन्द्रादि-ग्रहण काल में उत्तराभिमुख-गामिनी "गन्धमांसी" की जड़ निकाल कर अङ्गूठी की तरह अङ्गुली में लपेट लें, अथवा धारण कर लें, इस प्रकार इसे धारण करने से अखिल दुर्गम भूत-प्रेत पिशाचादि निकट नहीं आ सकते।

(अध्याय ३०-३१)

इस अध्याय में श्री शिव ने भगवती दुर्गा के "अग्निदुर्गा-महादुर्गा-जलदुर्गा वनदुर्गा-शूलदुर्गा तथा शूलिनी" छ: भेद बताए हैं। इनमें मारणोच्चाटनादि कार्यों में शीघ्र सिद्धि प्राप्ति के लिये **श्री शूलिनी दुर्गा** की विशेषता बताते हुए मंत्र के ऋषि आदि कराङ्गन्यास, विशेष न्यास तथा ध्यानादि पूर्वक **श्री शूलिनी** का मंत्र बतलाया है।

"श्रीं ह्रीं क्लीं ग्रों नम: शूलिनि, नत जनस्य चिन्तामणे, ज्वल ज्वल, त्वमिह चास्मान्पाहि, समस्त-रिपु-दुष्टग्रह हुं फट् स्वाहा। ४२ अक्षरात्मक:

"ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्ट ग्रह हुं फट् स्वाहा" ग्रन्थान्तरात्।

[1]"ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्ट-निग्रहे हुं फट् स्वाहा" ग्रन्थान्तरे।

षट्कर्म साधना में अतिश्रेष्ठ इस विद्या को गुप्त रखना चाहिए। विशेष विशेष कार्यों में भगवती के रूप और ध्यान की विधि बताते हुए श्री भगवान् ने कहा कि वश्याकर्षणादि कार्यों में इसे रक्त वर्ण, स्तम्भन-विद्वेषण में श्याम वर्ण, निग्रहोच्चाटनादि कार्यों में गहरा कृष्ण वर्ण, मोक्षादि सिद्धि के लिये श्वेत वर्ण तथा सारस्वतादि कार्यों में इसे मोती की तरह चमकदार, श्वेत आभा-युक्तादि रूप में ध्यान करना चाहिये।

शूलिनी दुर्गा की उपासना भोग और मोक्ष दोनों देती है। तथा अणिमादि अष्ट-सिद्धियां प्रदान करती हुई साधक के सभी मनोरथ पूर्ण करती है। मातृकोष्ठ और श्मशानादि में इसके अनुष्ठान से विशेष सिद्धि प्राप्त होती है। मंत्र सिद्धि के लिये जप के विशेष अंग—तर्पण, होम, विप्रभोजनादि क्रियाएं अत्यन्त आवश्यक हैं। वश्यादि शुभ कार्य शुक्रवारादि सौम्य-वारों में तथा उच्चाटन-मारणादि पाप कार्य

---

१. "श्रीं ह्रीं क्लीं ग्रों नम: (शूलिनि) क्ष्म्र्यौं ज्वल ज्वल शूलिनि समस्त-रिपु-दुष्ट-ग्रह हूं फट स्वाहा"

अष्टमी-मङ्गलवारादि पाप वारों में करने की विधि है। इसी अध्याय में श्लोक ३०-३१ तथा ३२ में श्री शूलिनी भगवती का पूजनयंत्र तथा पूजन एवं श्लोक ४९ में दूसरा सिद्ध-यंत्र लिखने का विधान है इसी प्रकार अध्याय ३१ में श्री शूलिनी दुर्गा के यंत्र की पूजन विधि, बलि विधान, भगवती सुमुखी का विशेष सिद्धिदायक स्तोत्र तथा उसके अनन्तर क्रिया-भेद शीर्षक से षट्कर्मों से सम्बन्धित क्रियाओं में भेदात्मक विधि, विधि सहित **आकर्षण-सिद्धिप्रद कंकाली-काल रात्रि** के यंत्र सहित महामंत्र, शत्रु वशीकरण-शत्रुनाशन एवं **सर्वाभीष्टप्रद वटुक-भैरव सहित महाकाली** का यंत्र तथा महामंत्र एवं भगवती की कला को शत्रु देह में प्रविष्ट करा के शत्रु से अपनी इच्छानुसार सभी कार्य करवाने के लिये **रुद्रकाली-सप्तमातृका** महामंत्र दिये गए हैं। इसके **अनन्तर शत्रु मारण** यंत्र, उच्चाटन यंत्र, मारण यंत्रविशेष, सप्ताहान्तर शत्रु मारण प्रयोगादि का प्रकाश किया किया गया है। शत्रुमारण प्रयोगों में श्री **शूलिनि दुर्गा का विशेष ध्यान** बतलाते हुए श्री शिव ने स्पष्ट कहा है कि यह सिद्ध विद्या किसी भी हालत में किसी नास्तिक अथवा कृतघ्न को नहीं देनी चाहिये।

अध्यायान्त में महाभूत-पिशाचादि निवारण तथा शत्रुनाशन के लिये दो विशेष यंत्र बनाने एवं उनके द्वारा सकाम प्रयोग की विधि बताई गई है। शत्रुनाशक यंत्र मंत्रों के प्रयोगानुष्ठानादि के प्रभाव से शत्रुकुल-क्षय—शत्रु-उच्चाटन तथा शत्रु-राज्यादि का उसके गणों सहित सर्वनाश होता है।

(अध्याय ३२ से ३५)

३२ वें अध्याय में शत्रुदल को पराजित एवं नष्ट करने के लिये शूलिनी ध्यान, शूलिनी के मंत्र की विलोम जप-विधि, सर्व रोग, सर्वभूतादि-बाधा निवारण के लिए यंत्र पूजन विधि बताते हुए श्री शूलिनी दुर्गा से ही सम्बन्धित अतिसिद्ध एवं शत्रु दल-नाशक श्री वीर भद्र का मंत्र बतलाया गया है। तथा इसके अनुष्ठानारम्भ में पूजन विधि एवं जपविधि का विवरण देते हुए सर्वत्र जय एवं सफलता प्राप्ति के लिये प्रयोग दिया गया है।

३३ वें अध्याय में सर्व जगत् के क्षोभण के लिये श्री शरभेश्वर का माला मंत्र वर्णित है, जिसका नित्य पाठ अनुष्ठानादि सभी प्रकार की मनोकामनाएं पूर्ण करता हुआ शत्रुपक्ष तथा भूत-प्रेत-पिशाचादिकों को भी नष्ट करता है। अध्यायान्त में सर्वसंक्षोभण यंत्र एवं मंत्र तथा जप का फलादि वर्णन किया गया है।

३४वें अध्याय में ऋषिः, छन्द, ध्यान, मंत्रादि पूर्वक सर्वार्थ सिद्धि प्रद श्री भैरव जी के मन्त्र की प्रयोगविधि वर्णन की गई है। यहीं श्री **उग्रभैरवमन्त्र** बताते हुए नाना प्रकार के कार्यों में अभीष्ट सफलता के लिए **भैरवी** सहित श्री भैरव के विविध रूपों एवं प्रकारों की पूजन विधि का वर्णन किया गया है। विशेष कार्यों में होम द्रव्यों का भेद बतलाते हुए शत्रुओं के विशेष नाशन के लिए **वैरिवज्राख्य भैरव यंत्र** तथा उस चक्र में श्री भैरव की पूजन विधि पूजन मन्त्रों सहित वर्णन की गई है।

३५वें अध्याय में भूतादिकों के **आवेश कार्यों में सिद्धि** प्राप्ति के लिए **श्री विजय भैरव** का मन्त्र ऋषि, छन्द, न्यास, ध्यानादि पूर्वक वर्णन किया गया है, आवेश लाने के लिए मंत्र विधि भी दी गई है। तथा सभी प्रकार की आपत्ति, कष्ट एवं दुस्साध्य-रोगादि के निवारण और शमन के लिए **रुद्राख्या सिद्ध-भैरव-बलि** का विधान बतलाया है, रुद्र बलि में ग्राह्य द्रव्य और मंत्र भी बताए हैं। यहां पर श्री शिव का आदेश है कि अधीर (धैर्य रहित) एवं मन्त्रविद्या-ज्ञानरहित व्यक्ति को बलि कर्म नहीं करना चाहिये, अन्यथा उसे लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है।

(अध्याय ३६)

इस अध्याय में सर्व कार्य सिद्धि एवं सर्वत्र विजय प्राप्ति के लिए श्री क्षेत्रपाल के अष्टाक्षर मंत्र का ऋषि, छन्द, षडङ्गन्यास, ध्यानादि पूर्वक वर्णन है, जिसका निर्दिष्टविधि से अनुष्ठानपूर्वक लक्ष जप करने से सिद्धि होती है। इसके अनन्तर चक्र तथा चक्र पूजन विधि तथा क्षेत्रपाल बलिदान विधि बतलाते हुये श्री क्षेत्रपाल के सूक्त का वर्णन किया गया है, जिसके केवल तीन बार जपने से विदेश में भी आजीविका के साधन प्राप्त होते हैं तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्ति होती है। शत्रुमारण कार्य-सिद्धि के लिये श्मशान में यंत्रादि खनन-विधि, शुभ कार्यों तथा सर्व प्रकार के दुःखनिवारण, पुष्टि, सुख, वश्य, सुसन्तति प्राप्ति के लिये क्षेत्रपाल की **विशेषानुष्ठान-विधि** आदि बतलाई गई है। इसके अनन्तर चोरी गई वस्तु की प्राप्ति के लिये **क्षेत्रपाल-मंत्र-प्रयोग**, नष्ट वस्तु के शीघ्र लाभार्थ जपविधि से द्वितीय प्रयोग और यदि वह चौर फिर भी चौरित धन सम्पत्ति नहीं देता तो उसे, उसके परिवार तथा उसकी वंश तक को कष्ट एवं मारण के लिए श्री क्षेत्रपाल मंत्र के ही विशेष प्रयोगादि दिये गये हैं।

(अध्याय ३७-३८)

इस अध्याय में ऋषि-छन्द-ध्यानादि पूर्वक श्री वडवानल भैरव का यन्त्र और वेदऋचात्मक मंत्र, तथा उसकी पूजन, जप और प्रयोगविधि बतलाई गई है, इस विद्या का साधक जहां चाहे वहीं अग्नि की भड़कती हुई ज्वालाएं निकल सकती हैं तथा इस प्रकार शत्रुपक्ष का दहन करके अभीष्ट सफलता एवं शत्रु पर विजय पाई जा सकती है, यहां आगे जाकर शत्रु-सम्पत्ति के दहन के लिये **'अग्नि'** के प्रार्थनामन्त्र दिये हैं, तथा श्मशानादि की क्रिया बतलाई है। इसके अनन्तर अग्निप्रकोप को पुनः शान्त करने की विधि बताते हुए इस क्रिया द्वारा जनित पाप-निवारण के लिये १०८ बार उपसंहार मंत्र का विधान ब्राह्मण-भोजनादि सहित बतलाया गया है।

इसके अनन्तर आग्नेयास्त्र विद्या, ऋषि-छन्द-षडङ्ग-ध्यानादि सहित वर्णन करते हुये चक्र पूजन विधि बतलाई गई है, जिस के अनुसार आवाहनपूर्वक मन्त्र-स्मरण मात्र से ही शत्रु यमपुरी को चला जाता है।

३८वें अध्याय में अष्ट-कर्म-सिद्धि के लिए इन्द्रादि दशदिक्पालों के मंत्र एवं उनकी अर्चना और प्रयोग विधि बतलाई गई है।

(अध्याय ३९-४०)

इस अध्याय में **महाव्याधिकर रुद्र मंत्र** की ऋषि-छन्द-षडङ्ग-ध्यानादि सहित प्रयोग विधि का वर्णन किया गया है, तथा विशेष प्रकार का यंत्र बना कर बलिपूर्वक श्मशानादि में दबाने का विधान बतालाया है, जिसके केवल मात्र तीन दिन प्रयोग करने से प्रबल शत्रु भी महाव्याधि से अकस्मात् ग्रस्त होकर पंचत्व को प्राप्त होता है, साधक, शत्रु के लिए जिस प्रकार की महाव्याधि की कल्पना करना चाहे वह निर्दिष्ट यंत्र पर अंकित कर देनी चाहिए ।

इसी प्रकार ४०वें अध्याय में शत्रु को अति शीघ्र विनाश करने के लिये ऋषि-छन्द-षडङ्गन्यास-ध्यानादि पूर्वक "**मृत्यु मन्त्र**" और उसका यंत्र तथा प्रयोग विधि बतलाई गई है । रात्रि के समय सहस्रबार शत्रु के नाम सहित यथाविधि जप करने से जपावसान काल में शत्रु की मृत्यु हो जाती है । यदि मूलमंत्र को पचास हजार बार पहिले जप करके सिद्ध कर लिया जाए तो केवल मात्र पांच सौ बार पढ़ने से शत्रु का देहावसान होता है और यदि साधक एक लक्ष जप कर ले तो केवल एक शत बार जप करने से ही शत्रु का कालग्रास हो जाता है ।

(अध्याय ४१)

इस अध्याय में ऋषि-छन्द-ध्यानादि पूर्वक **वज्रपंजराख्य श्री शरभ-सालुव-पक्षिराज कवच** यंत्र विधि सहित दिया गया है, अध्यायान्त में कवच पाठ का फल बतलाते हुये श्रीशिव ने कथन किया है कि इस दिव्य कवच के त्रिकाल पाठ करने वाले की सर्वत्र रक्षा होती है और उसके मनोवांछित कार्य अपने आप सिद्ध होते रहते हैं ।

(अध्याय ४२)

इस अध्याय में **जगद्वश्यकर श्री कामराज** के महामन्त्र का ऋषि-छन्द-कराङ्ग न्यास-ध्यानादि-पूर्वक उपदेश दिया गया है । श्री **कामराज-गायत्री** भी वर्णित है । मन्त्र सिद्धि के लिये श्री कामराज का अनुष्ठान तथा यंत्र विधान भी बतलाया गया है । तदुपरान्त जगत्क्षोभण कर, श्रीप्रद, मनोवांछित फलप्रदायक श्रीकामराज के दूसरे यंत्र का विधान दिया गया है, जिसके धारण करने से सभी प्रकार के सौभाग्यों की प्राप्ति होती है । तदनन्तर श्री **कामराज के पाचों बाणों के मंत्र, पंच बाणवृक्ष** तथा उनकी विधि बताते हुए **त्रैलोक्य-क्षोभकरी एकाक्षरी कामदेव-विद्या**, उसका जपविधान, पीठ शक्तियों के नाम, कामपीठ मंत्र, जगन्मोहन बाणन्यास के साथ साथ **मन्मथ (श्री कामदेव)** के प्रयोग का फल वर्णन किया है । जिससे सभी विश्व का सम्मोहन तथा यथेष्ट धन विभवादि की प्राप्ति होती है ।

(अध्याय ४३-४५)

४३वें अध्याय में महासिद्धि-प्रदायिनी, निग्रहानुग्रह-फलप्रदा, शान्तिप्रदा, वश्याकर्षणादि विविध-कार्यकरी जगन्मोहनी भगवती "**रक्त-चामुण्डी**" का ऋषि, छन्द, न्यास, ध्यान, मंत्र, पूजनविधि सहित सिद्ध-मंत्र दिया गया है, इस बलिपूर्वक विधान से भगवती साक्षात् दर्शन भी देती है तथा साधक को यथेष्ट फल भी ।

४४वें अध्याय में ऋष्यादि-ध्यानान्त श्री **मोहिनी भगवती** का महामंत्र तथा उसका विधान दिया है, तथा पूजनादि के लिए यंत्र बनाने की विधि भी; इस में भगवती कौतूहलपूर्ण विचित्र रूप दर्शाती हुई सब जगत् का सम्मोहन करके सर्वत्र विजय देती है।

४५वें अध्याय में पत्थर-दिलों तक को मोम कर देने वाली **भगवती द्राविणी की** विद्या का ऋष्यादि ध्यानपूर्वक उपदेश दिया गया है, तथा पूजनादि यंत्रविधि भी बतलाई गई है। द्राविणी विद्या के सिद्ध होने के पश्चात् केवल तीन बार मंत्रस्मरण से कठोर हृदय वाले भी द्रवित होकर वशीभूत होते हैं।

(अध्याय ४६-५०)

४६वें अध्याय में ऋष्यादि स्मरण ध्यानपूर्वक **श्री भगवती शब्दार्काषणी** के मंत्र तथा यंत्र का उपदेश दिया गया है जिसकी सिद्धि के पश्चात् विधिवत् प्रयोग से अतीतानागत तथा वर्तमान का साधक को सम्यक् ज्ञान हो जाता है तथा देवी उसके कान में सब कुछ कह देती है।

४७वें अध्याय में सर्वसिद्धिदायिनी भगवती सरस्वती का मंत्र ऋषि षडङ्ग-ध्यानादिपूर्वक सिद्धिकरण-विधि सहित दिया गया है, जिसके स्मरण से भगवती प्रसन्न होकर साधक की जिह्वा पर आसीन होती हुई असीम वाक्‌शक्ति देती है तथा सभी प्रकार के वाद-विवाद तथा सभा आदिकों में विजय प्रदान करती है।

४८वें अध्याय में सभी प्रकार से सौभाग्यवर्द्धन, स्वास्थ्य-संरक्षण, आयु संवर्द्धन आदि पुष्टिकर कार्यों के लिए **महावश्यकरी भगवती लक्ष्मी** का ऋषि-न्यास-ध्यानादि पूर्वक यंत्र सहित सिद्ध मंत्र वर्णित किया गया है, जिसके सिद्ध होने के पश्चात् साधक नित्य अष्टोत्तर जप से सभी प्रकार की समृद्धि से युक्त रहता है तथा उसे यथेष्ट धन की प्राप्ति होती है।

४९वें अध्याय में **माया मन्त्र** का सिद्ध प्रयोग वर्णन किया गया है, जो सारे जगत् को साधक की इच्छानुसार सम्मोहित करता हुआ मनोवांछित सिद्धि देता है। ऋषि छन्द ध्यानादि के सदुपदेश के अनंतर मंत्र सिद्ध करने की विधि का भी उपदेश दिया है, माया मंत्र के सिद्ध होने पर मनुष्य लोकदृष्टि से स्वेच्छापूर्वक अदृश्य हो सकता है।

५०वें अध्याय में **भगवती पुलन्दिनी** की सिद्धविद्या ऋषि-छन्द-षडङ्गन्यास ध्यानादिपूर्वक वर्णन की गई है। मंत्र सिद्ध करने की विधि बताते हुए जप-होमादि विधान का भी आदेश दिया है—मंत्र सिद्धि के बाद स्मरणपूर्वक, देवी, स्वप्न में शुभाशुभ सब कुछ कह देती है।

(अध्याय ५१)

इस अध्याय के तीन खण्डों में **महाशास्ता** जो सभी प्रकार से भोग, मोक्ष, आयु, आरोग्य, पुष्टि, हृष्टि तथा आनंद देने वाले हैं, पुत्र संतान दाता हैं एवं सभी प्रकार के अरिष्ट, अपमृत्यु आदि का निवारण करते हैं, का ऋषि, छन्द तथा नाना कार्यों के

लिए नाना प्रकार के ध्यानपूर्वक, सिद्ध मंत्र का उपदेश दिया गया है। मंत्रसिद्धि के लिए अनुष्ठान विधि बताते हुए सकाम कार्यों के साधनार्थ विशेष क्रिया वर्णित की गई है। इसके अनन्तर महाशास्ता का यंत्र बतलाया गया है जिससे सभी प्रकार के सुख और आनंद, सर्व सिद्धि, सर्वजगत्-वशीकरण तथा सभी प्रकार के भोग और अंत में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

पति यदि क्रुद्ध हो या अनासक्त, अथवा रुष्ट हो गया हो तो इस यंत्र को निर्दिष्ट विधि से लिख कर यदि पत्नी धारण करे तो विरक्त पति भी उसके दर्शन मात्र से कामविह्वल होकर मोहित हुआ उस के वश में हो जाता है।

इसी यन्त्र के धारण से भूत, प्रेत, पिशाच, सर्प, सिंह, व्याघ्र, हिंस्र पक्षी तथा जल-ग्राहादिक जन्तुओं से संरक्षण होता है।

द्वितीय खण्ड में महाशास्तृ की पूजन विधि देते हुए पात्र शुद्धि, आवरण पूजन, यन्त्र के कोष्ठों पर अंगदेवताओं का स्थापन तथा उनकी पूजन, महाशास्तृ गायत्री तथा महाशास्ता की सांगोपांग पूजन-विधि तथा पूजन-फलादि का वर्णन किया गया है।

तृतीय खण्ड में महाशास्ता का ध्यान, आवाहन, एकविंशत्युपचारों सहित समांत्रिक पूजन तथा नमस्कार-मन्त्रादि दिए गए हैं।

(अध्याय ५२)

इस अध्याय में **भगवती संक्षोभिणी** का ऋषि-छन्द-ध्यानादि-पूर्वक मन्त्र वर्णन किया गया है, जिसके विधिवत् अनुष्ठान से सभी जीव क्षुभित होकर परास्त हो जाते हैं। शत्रुनामयुक्त इस मन्त्र के एक सहस्र जप से शत्रु भ्रष्टचित्त होकर घूमता रहता है। और यदि थोड़ी सी भस्म हाथ में लेकर संक्षोभिणी मन्त्र से एक सौ बार अभिमन्त्रित करके अपने मकान की आठों दिशाओं में फेंक दें अथवा गाड़ दें, तो उस मकान के निकट भी चौर, शत्रु, जंगली हिंसक-जानवरादि स्वप्न में भी नहीं आ सकते।

(अध्याय ५३)

शत्रुओं का संहार करने में अतिप्रसिद्ध, आशुफल देने वाली, **भगवती धूमावती** के ऋषि-छन्द-ध्यानादि पूर्वक सिद्धमन्त्र का उपदेश देते हुए मन्त्र सिद्धि के लिए केवल सात हजार जप तथा उसके अनन्तर हवन, तर्पण, ब्राह्मण भोजनादि करना चाहिए, इस प्रकार भगवान् शिव ने बताया; भगवती धूमावती का श्लोकोक्त विधि से यंत्र बना कर उसकी यथाविधि पूजन करके १००० बार मन्त्र का जप करें, फिर उसे बलिदान पूर्वक श्मशान में गाड़ दें और यदि शत्रु के घर भूमि में गाड़ सकने का साधन बन सके तो वहां बलिदान की आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार तीन रात्रि तक शत्रु के निवास की ओर मुख करके जप नित्य करें, इस तरह शत्रु के लिए स्तंभन, उच्चाटन, निग्रह (पीड़ाकरण, मारण), चित्तविभ्रम, सर्वसम्पत्ति-विनाशन अथवा विद्वेषणादि जिस भी संकल्प से क्रिया की गई है, तीन दिन में ही उसका प्रभाव हो जाता है। इस प्रकार के क्रूर प्रयोगारम्भ काल में श्री **शरभेश्वर कवच** से अपना

संरक्षण कर लेना चाहिए, अन्यथा भगवती **ज्येष्ठा-लक्ष्मी** (क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठा—दरिद्रता की देवी) क्रुद्ध होकर साधक के ही भाग्यों का क्षय कर देती है। शत्रु नाशन, शत्रुचित्त-भ्रष्टीकरण, शत्रुभाग्यक्षय-करण, शत्रुस्तम्भनादि विविध प्रकार के प्रयोगों के लिए श्लोक ११ से १४ तक निर्दिष्ट उपदेश के अनुसार देवी का ध्यान करना चाहिए।

५४वें अध्याय में श्री शिव ने विद्वेषण-मारण अथवा दूसरे क्रूर कर्मों के लिए श्री **ज्येष्ठालक्ष्मी (धूमावती)** के सिद्ध यत्र तथा उसकी प्रयोग विधि का उपदेश दिया है। इस यन्त्र की यथाविधि अर्चना करके उसे बलिपूर्वक आधीरात में श्मशान में गाड़ दिया जाए तथा देवीमंत्र का १००८ बार जप किया जाए तो शत्रु की शीघ्र ही मृत्यु होती है। इसी प्रकार **विद्वेषणादि** कार्यों में भी उसी प्रकार निर्दिष्ट विधि से ध्यानादि पूर्वक १००८ बार जप किया जाए तो दो घनिष्ठ मित्रों में भी परस्पर कलह ही केवल नहीं होती अपितु वह एक दूसरे के जीवन के शत्रु हो जाते हैं। और यदि साधक के मन में दया आ जाती है, अथवा साध्य-शत्रु उस की शरण में आ जाता है तो उस मन्त्र-पाठ का विलोम-विधि से जप किया जाए तो उसकी निवृत्ति हो जाती है और अन्य किसी भी उपाय से वह ठीक नहीं हो सकता।

इसके अतिरिक्त महाव्याधि, महारोग, महाभूत (दुष्ट-पिशाचादि), महोन्मादादि कठिन रोगों के निवारण के लिए भगवती घूमावती तथा शरभ-सालुव-पक्षिराज का मालामंत्र बतलाया गया है, जिस से अभिमंत्रित कर के ओषधि अथवा जलादि दिया जाए तो उसके प्रयोग से उन कष्टों का शीघ्र निवारण होता है।

(अध्याय ५५)

इस अध्याय में जलभय दूर करने, जलयात्रा में सभी प्रकार से सुरक्षित एवं सकुशल रहने तथा गहरे और भयानक जलमार्गों तथा नदी समुद्रादिकों में तरण-सिद्धि के लिए श्री **शरभेश्वर के यंत्र का विधान** दिया है, इसके साथ साथ श्री शरभेश्वर के दो मंत्र भी, जिन के विधिवत् अनुष्ठान करने से वह मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। सिद्धि के पश्चात् स्मरणमात्र से ही जल में डूबा हुआ मनुष्य भी क्षणभर में सुरक्षा पूर्वक तैर कर नदी के किनारे आ जाता है। नदी-समुद्रादि की यात्रा के समय इस के मन्त्र तथा यन्त्र दोनों का सदा स्मरण करना चाहिए।

(अध्याय ५६)

इस अध्याय में सिद्ध-विद्याओं में श्रेष्ठ अत्याश्चर्यकरी श्री **चित्रविद्या** का उपदेश दिया गया गया है, जिस की सिद्धि के फलस्वरूप सभी प्रकार की आपत्तियां तथा कष्टादि दूर हो जाते हैं। पैत्योन्माद, अग्नि की भयंकर ज्वालाओं से घिर जाना अथवा किसी भी प्रकार का अग्नि प्रकोप आदि आपत्तियों के निवारण के लिए इस विद्या का सदैव स्मरण करना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है—

"वं रुं धूं सं जुं ठं ह्लीं श्रीं ओं नमो भगवती चित्रविद्ये महामाये अमृतेश्वरी

सर्वविषं नाशय नाशय, सर्वतापज्वरं हन हन, सर्वपैत्योन्मादं मोचय मोचय, आज्योष्णं शमय शमय, सर्वजनं मोहय मोहय, मां पालय पालय, श्रीं ह्लीं **ठं जुं सं धूं रुं वं स्वाहा।**

इसके दस हज़ार जप से मंत्र की सिद्धि हो जाती है। तथा सिद्धि के अनन्तर इसके केवल १००० जपादि प्रयोग से सभी प्रकार के ज्वर, विष, अनिद्रा, क्षुद्ररोग, महोन्माद, हृदयविग्रह, सर्वांगदाह आदि नाना प्रकार के कष्टों का अतिशीघ्र निवारण होता है। इसके अनन्तर श्री **चित्रविद्या का यन्त्र** बतलाया गया है, जिसे भगवती के मंत्र और देशिक-स्तोत्र स्मरणपूर्वक यथाकार्य धारण-सेचनादि से निखिल कार्यों में सफलता मिलती है तथा पैत्योन्माद में शान्ति होती है।

उदम्बर-बीज (अथवा कमलगट्टे के बीज की गिरी) १ भाग-चम्पक पुष्प की कली-२ भाग, दोनों मिला कर अथवा इनमें से कोई एक लेकर, अथवा अवस्थानुसार अनुक्रम से थोड़े-थोड़े समय के बाद उचित मात्रा में रोगी को एक दिन देते रहें, दूसरे दिन प्रातः काल से रोगी को पञ्चगव्य दिलाते रहें और उधर कुंभ में जल भर कर पञ्चद्रव्य एवं पञ्चगव्य भी उस कुंभ में डाल दें और एक बार **चित्रविद्या** मंत्र से अभिमंत्रित करके उत्तराभिमुख ब्राह्मणों द्वारा दक्षिणाभिमुख साध्य रोगी को एक हजार बार अभिषिञ्चत करायें और इसके अनन्तर ३ दिन और बिना पञ्चगव्य पान कराए अभिषेचन किया जाय तो इस से पित्तविकार, पैत्योन्माद, उन्माद, अनिद्रा, अंगमर्दन क्षुद्रोन्माद, उन्मत्त-ग्रह तथा उसके द्वारा जनित हृदय-विग्रह, सर्वांगदाहादि नाना रोग नष्ट हो जाते है, यहां पथ्य के रूप में केवल दूधभात ही दिया जाए और कुछ न दिया जाए, और यदि और कुछ खाने को दिया जाए तो सारी क्रिया व्यर्थ हो जाती है और रोग में वृद्धि होती है।

कमलनाल (बिस) को जौ की दूधीके साथ रगड़ कर अच्छे प्रकार मिला कर पीस ले, उसमें नींबू का रस और आमलास्वरस मिलाकर देवता के मंत्र द्वारा प्रार्थना-पूर्वक उचित मात्रा में मूर्च्छित (मूर्च्छा युक्त) रोगी को युक्ति से पिलाया जाए, तो वह बुलाने से चेतना में आ जाता है।

और यदि चित्रमाला मंत्र से पान या इलायची को अभिमंत्रित करके किसी कामिनी को खिलाया जाए, तो उसका वशीकरण होता है तथा उस मनुष्य के बिना वह क्षण भर भी नहीं रह सकती है।

तदुपरांत चित्रविद्या के दूसरे यन्त्र का विधान दिया गया है जिसे मन्त्रस्मरण पूर्वक स्पर्श करके देवता के वाहनादि उपचारों की पूजन पूर्वक १०० बार चित्रविद्या से अभिमंत्रित मंत्र जप करे फिर उस यन्त्र के कागज या पत्र को गुड़ में लपेट कर निगल ले, अब यदि साधक तीव्र-ज्वालाओं से आवृत वह्नि में प्रवेश करे तो उसके लिए अग्नि शीतल-पुष्पों की तरह सुख देने वाली हो जाती है और यदि उस यन्त्र को कण्ठ, हाथ या शिर पर धारण करें तो अग्नि भय नहीं होता, अग्नि से उबलता घी भी उसको नहीं जला सकता, तथा रोगादि का भय नहीं होता, इस प्रकार के पुरुष को देखकर

युवतियां मोहित होकर उसे प्राप्त करने के लिए यत्नशील होती हैं तथा सभी जगत् उसके वश में होता है और यदि कोई स्त्री इस प्रकार का प्रयोग करे तो सकल युवक उसके लिए लालायित रहते हैं।

चित्रविद्या के इस महागुह्य तथा गुप्त मन्त्र को उषःकाल में ३ बार नित्य पाठ करने से साधक विचित्र गुणों वाला हो जाता है। उसके लिए सूर्य की तीव्र किरणें चन्द्रमा और उसकी हथेली में रखा जल अमृत की तरह शीतल एवं शान्ति पहुंचाने वाला होता है। भूर्भुवः-स्वाधिपति श्री आकाशभैरव का ध्यान करते हुए नित्य अष्टोत्तरशत संख्या में चित्रविद्या का जप करके उससे अभिमंत्रित उषःकाल की सूर्य रश्मियों से युक्त जलपान करने से साधक मानसिक तौर पर पवित्र हो जाता है, तथा उसको किसी प्रकार की बाधाएं नहीं सतातीं।

चित्रविद्या के मंत्र से अभिमंत्रित करके ओषधि, तैल, घृत, दूधादि प्रातः काल नित्य पीने से मनुष्य का कायाकल्प होता है तथा कायासिद्धि होती हैं।

अध्याय ५७

इस अध्याय में भगवान् शरभेश्वर का देशिक स्तोत्र दिया गया है, जिसके नित्य पाठ से श्री गुरु की कृपा, स्वात्म-ज्ञान, सभी मंत्रों की सिद्धि, शत्रुओं पर विजय आयु, आरोग्य, विवादादिकों में जय, भोग, ऐश्वर्य और मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा साधक को सर्व प्रकार से सुख और विश्रान्ति प्राप्त होती है।

अध्याय ५८-५९

५८वें अध्याय में दुःस्वप्न नाशन के लिए ऋग्वेद का सिद्ध मन्त्र जिसे मंत्रोद्धार पृष्ठों में दे दिया गया है, का वर्णन किया गया है, इसे ओं भूर्भुवः स्वः से विलोमानुलोम विधि से सम्पुट किया जाना चाहिए। इसके साथ ही दुःस्वप्ननाशन यन्त्र का भी विधान दिया गया है, जिस के धारण करने से स्त्रियों को गर्भ कालीन परेशानियां नहीं होतीं, तथा गर्भ की रक्षा होती है, गर्भपात नहीं होता। दुःस्वप्न-नाशन के लिए यह विद्या अत्युत्तम कही गई है।

५९वें अध्याय में सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए ऋग्वेदोक्त "ध्रुवासु त्वासु०" मंत्र का विधान दिया गया है। इस मंत्र के आरम्भ में भी ओं भूर्भुवः स्वः तथा अन्त में स्वाहा लगाना चाहिए। इसके प्रयोग से सभी प्रकार के बन्धनों एवं पाश से छुटकारा मिलता है, तथा बन्दी कैद से छूट जाता है। सर्प दंश से मृतप्राय व्यक्ति भी इस मन्त्र के प्रभाव से विषरहित होकर पुनर्जीवन प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त तापज्वर, सभी प्रकार के उन्माद, कठिन रोग तथा शत्रुकृत-अभिचार, तथा उससे जनित दुष्टप्रभाव एव दुष्ट और क्षुद्र रोगादि बहुविध व्याधियां नष्ट हो जाती हैं। सर्व सौभाग्यप्रद इस महामंत्र का साधक अनावृष्टि काल में भी वर्षा करा सकता है।

अध्याय ६०-६१-६२

इन अध्यायों में श्री महागणपति विद्या, यंत्र, तर्पण, प्रयोग तथा श्री गणपति मंत्र की क्रिया से सम्बन्धित औषधि-विधि तथा औषधि मूलादिकों से षट्कर्म साधन की तांत्रिक क्रियाएं बतलाई गई हैं। श्री महागणपतिविद्या के नित्यानुष्ठान से साधक को सभी प्रकार की सिद्धि-समृद्धि-निर्विघ्नता तथा कल्याण मिलता है। इसके साधक की अकाल मृत्यु नहीं होती तथा उसे मनोवांछित फल की प्राप्ति होती रहती है।

६२वें अध्याय में सर्वप्रथम श्री गणपति के यंत्र का विधान दिया गया है, तथा इसके साथ श्री महागणपति मंत्र की जप क्रिया भी, जिसके प्रभाव से स्त्रियों का आकर्षण और वशीकरण होता है।

वशीकरण कार्यों के लिए श्वेतार्क, अपामार्ग—जो श्मशानादि भूमि पर उगे हों का विशेष विधान इस प्रकार बतलाया गया है, जिसके स्पर्श मात्र से जीवमात्र का महावशीकरण होता है, मुहूर्त शास्त्र के नियमानुसार सिद्ध योग से पहिले दिन श्मशान भूमि में उगे हुए श्वेतार्क और अपामार्ग की गन्ध-पुष्प-धूपादिकों द्वारा पूजन करे, तदुपरान्त बलिदानपूर्वक साधक छठे श्लोकानुसार नमस्कार करके उन्हें कच्चे सूत (अथवा कुमारी कन्या के हाथ से कते सूत) से तीन बार लपेटते हुए श्री महागणपति विद्या का दश बार पाठ करे। दूसरे दिन शुभ मुहूर्त में उन्हें बिना टूटे हुए (अखण्ड एवं पूर्ण) जड़ समेत उखाड़ लें। अब उनकी शाखा से इच्छानुसार कड़ा या अंगूठी बना कर रख ले। इसे धारण कर के साधक स्पर्शमात्र से सब को वशीभूत कर लेता है।

राजनीति आदि सम्बन्धित कार्यों में यदि दो परम मित्रों में परस्पर विरोध या लड़ाई करवाना अभिप्राय हो, अथवा दो महाविरोधियों में परस्पर मैत्री कराना उद्देश्य हो, तो उसके लिए भी इसी अध्याय में विशेष सिद्ध तथा अचूक योग दिये गये हैं;

शुभ कार्यों के आरम्भ के लिए शुभ वार-नक्षत्रादि एवं मारणोच्चाटनादि पाप प्रभाव वाले कार्यों के लिए तद्विपरीत पाप नक्षत्र-वारादि मुहूर्त लेना चाहिए, वशीकरणादि कार्यों में औषधि के पुष्प पुष्य नक्षत्र में, फल भरणी नक्षत्र में, शाखा विशाखा में, पत्रादि हस्त नक्षत्र में तथा मूला नक्षत्र में मूल लेनी चाहिए, ऐसा नियम है।

स्त्री वशीकरण—काले धत्तूरे का पञ्चाङ्ग उपरोक्तविधि के अनुसार लेकर उसका रस निकाल लें, अब इसमें से थोड़ा सा रस लेकर उसमें केसर-गोरोचन और कपूर मिला कर अच्छी तरह घिस लें या रगड़ लें। श्री महागणपति का मंत्र स्मरण करते हुए इसका तिलक करें, इस प्रकार के मनुष्य को देखते ही बड़ी से बड़ी अभिमानिनी स्त्री भी वशीभूत हो जाती है।

इसी प्रकार पुष्पादि सहित लज्जालु तथा श्वेतापराजिता की मूल ग्रहण करके गोरोचन के साथ पीसकर अभिमंत्रित करके तिलक लगा कर राजा के सम्मुख जाने से राजा वशीभूत होता है।

६२वें अध्याय में भी सभी जगत् के वशीकरण एवं सभी प्रकार के मनोरथ और कार्यादि साधन के लिए विशेष औषधियों के मूल द्वारा प्रयोग वर्णन किए गए हैं।

मूलिका ग्रहण के लिये भी शुभाशुभ कार्यों के अनुसार मुहूर्त के कुछ विशेष नियम बताए गए हैं—यथा गुटिका तैयार करना हो तो सिद्ध-योग में, पेय बनाना हो तो अमृत-योग में, द्वेष कार्यों में दग्ध-योग, मारणोच्चाटनादि कार्यों में मृत्यु-योग, तथा रोग-निवारणादि कार्यों में अमृत-योग।

मूलिका ग्रहण विधिः—

साधक रक्षाबन्धनादि पूर्वक यथोक्त मुहुर्त में निर्दिष्ट-विधि से भूमि को खोदकर औषध-मूल को बिना टूटे हुए निकाले, और फिर मंत्र से अभिमंत्रित करते हुए शास्त्रादेशानुसार उसे प्रयोग में ले।

स्त्री वशीकरण:—उपरोक्त नियमानुसार अश्वगन्धा-मूल उखाड़ कर कर्पूर और दारचीनी मिला कर जिस स्त्री को भी खान-पान में दी जाए, उसका वशीकरण होता है। और इन ही औषधियों में जायफल मिला कर अच्छे प्रकार पीस कर १-१ माशा (ग्राम) भर की गुटिका बना लें, अब इसे अङ्गूठी में नगीने के स्थान पर रखकर अङ्गुली में धारण करें अथवा उस पिष्टि का वलय बनाकर अंगुली में धारण करें। इसे जब तक धारण किया जाएगा, उस समय तक वीर्य स्तंभन होता है। तथा इसके धारण किए रहने से बार बार कामोत्तेजना होती है।

इसी प्रकार उद्धमिनी (नलिका) के मूल-चूर्ण के प्रयोग से विष, पाण्डु तथा कुष्ठादि नाश होते हैं, इसके अतिरिक्त इस औषधि के प्रयोग से स्तंभन, गुह्यस्तम्भनादि तथा तन्मोक्षीकरणादि विविध कार्य सिद्ध होते हैं।

कुछ औषध-मूलों के प्रयोग से विचित्र कार्य भी होते हैं, यथा काकमाची से नाग सिद्धि, लज्जालु द्वारा किसी को नपुंसक बना देना तथा इच्छानुसार उसका पुनः स्वस्थीकरण आदि। श्यामा नामक औषधि-मूल से सर्प-विष से मृतप्राय व्यक्ति भी बच जाता है, तथा एरण्ड बीज के प्रयोग से पति न्यस्तचित्त हो जाता है।

मारण—श्मशान भूमि में मार्ग के दोनों ओर आमने सामने उगे हुए अर्क वृक्षों की पश्चिम-दिक्गामिनी मूल को बलि पूर्वक उखाड़ कर मंत्र का १००० जप करें, तो शत्रु की मृत्यु होती है।

स्तम्भन—दो आमने सामने लगे विष वृक्षों (कनेर-आक-कुचलादि) की मूल यथा नियम ग्रहण करके साध्य की प्रतिमा बनावें, और उसके जिव्हा-नयन-हृदय-कान-ठोड़ी-पांव-हाथ आदि के चिन्ह बनाकर उस पर शत्रु की प्राण-प्रतिष्ठा करें, और इस पर[1] "लं" बीज मंत्र का एक सहस्र जप कर के देवस्थान-मातृकोष्ठ या शत्रु के द्वार के निकट भूमि में गाड़ दें, तो उस व्यक्ति का सब प्रकार से स्तंभन होता है।

---

(१) मघवाख्यं सहस्रकम्।

अध्याय ६३ से ६८

इस अध्याय में शत्रुनाशन के लिये "**काल**" का ३५ अक्षर का मंत्र दिया गया है, जिसके विधिवत् सहस्र जप से शत्रु काल के मुख में चला जाता है।

६४वें अध्याय में यंत्र सहित **श्री षण्मुख स्कन्द** का मंत्र वर्णित है, जिसके ऋषि-छन्द-ध्यानादि पूर्वक विधिवत् तीन हज़ार नित्य जप से साधक को अखिलार्थ लाभ, सर्वत्र सफलता एवं मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त होती है।

६५वें अध्याय में **श्री महाभैरव (वटुक भैरव)** का मंत्र और यंत्र दोनों दिए गए हैं, सभी प्रकार की सिद्धि के लिये इस मंत्र के अन्त में "नमः" लगाना चाहिए तथा शत्रु के वशीकरण, शत्रु-निग्रह तथा उच्चाटनादि कर्मों में इसे स्वाहान्त कर देना चाहिए तथा यंत्र में अपना मनोवाञ्छित कार्य साध्य-नाम के सहित लिखना चाहिये। इससे अतुल-सिद्धि तथा अभीष्ट कार्यों में सफलता मिलती है।

६६वें अध्याय में अतिशीघ्र-सिद्धिप्रदा भगवती त्वरिता का सैंतीस अक्षर का मंत्र उसके यंत्र के सहित दिया गया है, ऋषि-छन्द-ध्यानादि स्मरण पूर्वक यथा-विधि इस मंत्र को अक्षर-सहस्र (३७०००) जप करके सिद्ध कर लेना चाहिये। इस सिद्धि के बाद मंत्र के १००० जप से भगवती स्वयं दर्शन देकर विहिताविहित सभी कार्य सिद्ध करती है, इसके अतिरिक्त यह गुह्य विद्या परम-सौभाग्य-प्रदा, सर्व-दोष-निवारक, भूत, ग्रह, शत्रु आदि नष्ट करने वाली, अभीष्ट फलप्रद—तथा सभी प्रकार से संरक्षण देती है।

६७वें अध्याय में निग्रहानुग्रह-कारक, सर्व-शत्रु-निवारक तथा सर्वत्र विजय-प्रद **श्री वीरभद्र** का यंत्र एवं मन्त्र दोनों बतलाये गये हैं, मंत्र के ऋषि-छन्द-षडङ्ग न्यास-ध्यानादि स्मरण पूर्वक अक्षर-सहस्र जप करने से सिद्धि हो जाती है, तदनन्तर विधिवत् स्मरण, जप और यंत्र धारण से सर्वार्थ-लाभ और मनोवांछित प्राप्ति होती है।

६८वें अध्याय में सम्पूर्ण विश्व के संहार करने में भी समर्थ **श्री वडवानल भैरव** का दारुण मंत्र दिया गया है, ऋष्यादि ध्यानान्त नियमित क्रियाओं के बाद इसका निर्दिष्ट विधि से कवचोक्त-यंत्र बना कर उस पर शत्रु का नाम लिखें, और उसके अनंतर ३००० बार नित्यप्रति तीन रात्रि तक मंत्र का जप करें, इसके प्रभाव से शत्रु अतिशीघ्र अग्नि से जल कर नाश को प्राप्त होता है तथा उसका सर्वस्व भी स्वाहा हो जाता है।

अध्याय ६९ से ७६

इन अध्यायों में **ब्राह्मी—माहेश्वरी—कौमारी—वैष्णवी—वाराही—नारसिंही—इन्द्राणी—चामुण्डी** इन अष्ट महाशक्तियों के यंत्र और मंत्र विधान दिये गये हैं। सभी देवियों के मन्त्रोद्धार मूल ग्रन्थ में उनके पाठ के साथ साथ ही कर दिये गये हैं।

यहां **ओं भूर्भुवः स्वः सहित वेदोक्त गायत्री ही ब्राह्मी का** मंत्र है, जिसका एक सहस्र नित्य जप करने से मनुष्य दीर्घायु तथा इच्छाशक्ति प्राप्त कर लेता है। गायत्री मंत्र का साधक गायत्री के साथ किसी भी मंत्र को रख कर अनुष्ठान द्वारा उस मंत्र के फल को प्रत्यक्ष एवं त्वरित प्राप्त कर लेता है।

ब्राह्मी-मन्त्र के साथ आरम्भ में "ओं भुवः" अधिक बढ़ाया जाए तो सर्वत्र विजय और सौभाग्य देने वाला माहेश्वरी का मन्त्र कहलाता है।

कौमारी पूजन और दूसरी क्रियाओं के लिये शरभ चक्र पर ही विधान करने का आदेश है, **कौमारी मन्त्र** के जप, अनुष्ठान से शत्रु शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होते हैं।

"ओं भूर्भुवः स्वः" के स्थान पर "ओं वं सं ओं" लगाकर **वेदोक्त गायत्री मंत्र** ही **भगवती वैष्णवी** का सर्वसौभाग्य, धन-धान्य, और अभीष्टार्थप्रद मंत्र बन जाता है। यंत्र-मंत्र-विधि-ज्ञाता इस मंत्र का यथोक्त विधान से नित्यप्रति सहस्र जप करे तो भगवती वैष्णवी सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध करती रहती है।

भगवती **वाराही** के षडक्षर मंत्र का जप, दक्षिणाभिमुख बैठ कर, भगवती वाराही के विशेष यंत्र की पूजन पूर्वक, रात्रि के समय तीन हज़ार बार करना चाहिये, (न दिवा स्मरेत् वार्तालीं), शत्रु नाशन के लिये भगवती वाराही प्रत्यक्ष फल तत्क्षण ही देती है।

नारसिंही का मंत्र, यंत्र पूजन पूर्वक, नित्यं प्रति सहस्र संख्या में पचास दिन तक जपानुष्ठान विधि द्वारा करने से शत्रु विविध प्रकार की परेशानियों में फंस जाता है, तथा दस दिन के अन्दर ही अपना स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान अथवा देशांतर में भाग जाता है।

व्याहृतित्रय-सम्पुटित भगवती **इन्द्राणी की** वैदिक-ऋचा (मंत्र) का ग्रन्थोक्त विधि से यंत्र की पूजन पूर्वक पुरश्चरण करने से सभी प्रकार के रोग नष्ट होते हैं, तथा साधक को सर्व प्रकार से अभीष्ट सिद्धि होती है।

इसी प्रकार **भगवती चामुण्डी** मंत्र **का** उसके अध्यायोक्त यंत्र की विधिवत् अर्चनापूर्वक एक सहस्र संख्या में रात्रि के समय, जप किया जाए, और उस यंत्र को श्मशान-चतुष्पथ, अथवा शत्रु की देहलीज़ आदि में दबा दिया जाए, तो निश्चय ही उस शत्रु की पराजय, विनाश और साधक के सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं।

अध्याय ७७-७८

७७ वें अध्याय में श्री शरभेश्वर का भुजङ्ग-प्रयात-स्तोत्र दिया गया है, तथा उससे अगले अध्याय (७८ वें अध्याय) में श्री शरभ-हृदय का वर्णन है। इन दोनों स्तोत्रों का श्री शरभेश्वर की पूजन के अन्त में नित्य पाठ करने से नाना प्रकार की सिद्धियां, सभी प्रकार के कष्टों से निवृत्ति, तथा सभी प्रकार की दुर्गम समस्याओं का सुलभाव हो जाता है, इसके अतिरिक्त दूसरे देवी देवताओं के मंत्र भी सिद्ध होते हुए **शीघ्र-फल-दायक** होते हैं।

अध्याय ७९-८०

इन दोनों अध्यायों में भगवान् श्री शरभेश्वर का अष्टोत्तर-शतनाम तथा सहस्र-नाम सांगोपांग दिए गए हैं, जो पुण्यफल कारक, सर्वदुःख-निवारक, शत्रु समूह-विनाशक तथा सर्वत्र विजय देने वाले हैं।

अध्याय ८१

इस अध्याय में श्री शरभेश्वर का बहुप्रसिद्ध निग्रह-दारुण-सप्तक दिया गया है, जिसे उसकी सत्वर एवं प्रत्यक्ष सिद्धि तथा अचूक फलदायक होने के कारण बहुत से आधुनिक तंत्र-ग्रन्थ-सङ्कलन कर्ताओं ने अपने ग्रन्थ की उपादेयता बढ़ाने एवं विद्वानों को आकर्षित करने के लिये, अपने ग्रन्थ में उचित स्थान दिया है। यह सद्यः फलदायक स्तोत्र दिव्यशक्ति वाला, निग्रहानुग्रह-फलदायक, यथाविधि जपानुष्ठान पाठ करने से तीन दिन में ही शत्रु का नाश कर देता है तथा निर्दिष्ट मंत्रों द्वारा सम्पुटानुष्ठान करने से तत्तदनुरूप फल देता है। ग्रन्थान्त में कुछ और सिद्ध ऋचाओं और मंत्रों का भी वर्णन है, जिनके विधि-पूर्वक अनुष्ठान से साधक मनोऽभीष्ट फल प्राप्त करता है।

परिशिष्टम्

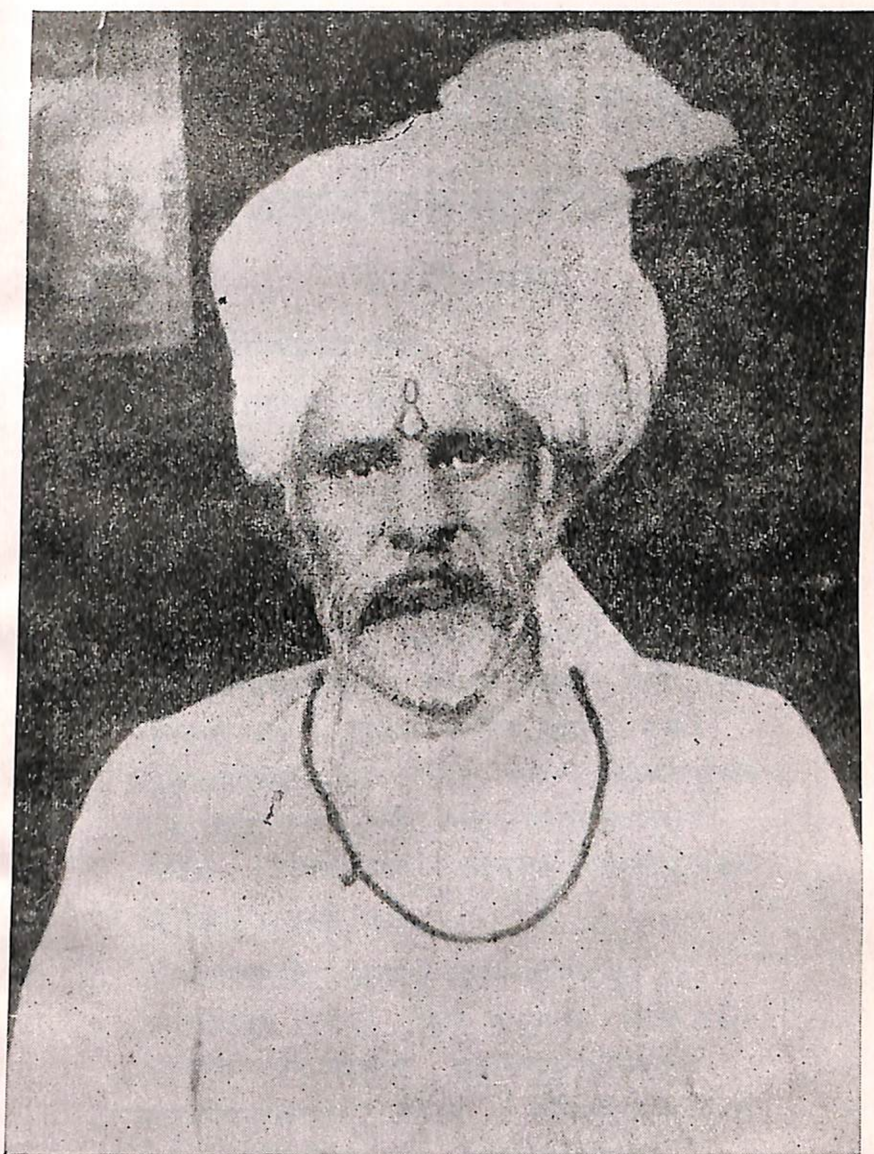
परिशिष्टाध्यायों में मेरुतंत्रोक्त श्री शरभेश्वर का मन्त्र, श्री कालभैरव कृत श्री शरभ-मंत्रराज, मेरुतंत्रोक्त श्री शरभ मालामंत्र, और श्री आकाशभैरव-कल्प नाम से ही लिखित कुछ उपलब्ध पत्रों से श्री शरभेश्वर मंत्रानुष्ठान तथा उस से सम्बन्धित विविध काम्य प्रयोग दिये गए हैं। पाठकों की सुगमता के लिये परिशिष्ट के अनंतर श्री आकाश-भैरव-कल्पाख्य महान् तंत्र में वर्णित वैदिक-ऋचाओं का पूरा विवरण मंत्रपाठ सहित दे दिया है। प्रायः सभी मंत्रों का यथा स्थान उद्धार कर दिया गया है, जो वहां किसी प्रकार लिखने से रह गये थे उन्हें हिन्दी व्याख्या में उद्धृत करने का यथामति यत्न किया है।। आशा है कि विद्वान् अगले संस्करण में त्रुटियों और अशुद्धियों के लिए मार्गदर्शक बनने की कृपा करेंगे।

प्रक्षेप :—अन्त में प्रक्षेप के रूप में मैंने श्री शारदा तिलक, श्री मेरुतंत्र, श्री प्रपञ्चसार तंत्र, श्री मंत्रमहोदधि, श्री नित्योत्सव आदि विशेष प्रसिद्ध ग्रन्थों से संग्रह करके तंत्रासक्तचेतस् विद्वानों के पुनः संस्मरण एवं सर्व साधारण विद्वानों के ज्ञान की वृद्धि के लिये, अतीत से आज तक महर्षियों, सिद्धों एवं विद्या-मनीषियों द्वारा बहुशः अनुभूत श्री गायत्री, सावित्री और सरस्वती (ब्रह्म-गायत्री, आग्नेयास्त्र और त्र्यम्बक) के विधान, महामृत्युंजय और श्री शताक्षरा विधि भी दी है। इनमें आग्नेयास्त्र के साथ प्रकाशित दो अङ्ग दिनास्त्र और कृत्यास्त्र स्थानाभाव के कारण छोड़ दिये है, जिन्हें फिर कभी विस्तृत विधान सहित प्रकाशित करने का यत्न करूंगा।

आशा है कि विद्वान् ब्रह्मास्त्र-धारण के साथ साथ इन सिद्ध विद्याओं को विश्व के कल्याण के लिये उपयोग में लायेंगे।

नानकचन्द्र शर्मा
धम्मी (भारद्वाज)

नई दिल्ली-५
१ वैशाख २०३९



राजज्योतिषी तथा राजवैद्य श्री श्री श्री १०८

श्री पं० लक्ष्मीनारायण जी धम्मी (भारद्वाज)

जन्म स्थान—हरिपुर हज़ारा तथा स्वर्गारोहण स्थान—दिल्ली

परम पूज्य पितृवर,

आप की ही अपार कृपा तथा आशीर्वाद से मैं प्रत्येक कठिनाई को लांघ सका हूं।

॥ ओं श्रीगणेशाय नमः ॥

आकाश-भैरव-तंत्रम्

शिवशक्तिसम्वादात्मकम्

प्रथमोऽध्यायः

ओं श्रीगणेशाय नमः

गुरुं गणपतिं देवीं भैरवं शरभेश्वरम् ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि मंत्रशास्त्रं विभूतये ॥१॥
सांगं सलक्षणं सर्वं वेदसारमभीष्टदम् ।
ज्ञानदं जीवजन्तूनां साधकानां सुखावहम् ॥२॥

श्रीदेव्युवाच ॥

श्रीशिवेशान देवेश श्रीनाथ जगतां पते ।
श्रीकाल-गल-चिद्रूप श्रीमते भवते नमः ॥३॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष महेश्वर ॥४॥
यद् गुह्यं परमं लोके यच्छास्त्रमखिलप्रदम् ।
यद्धितं साधकेन्द्राणां तद्वदस्व दयानिधे ॥५॥

श्रीशिव उवाच ॥

श्रीमत्परम-सौभाग्य-मंत्र-यंत्रागमादिनाम् ।
त्रयाणामपि वेदानां शृणु गुह्यतमं परम् ॥६॥
महामंत्रं क्रियाशास्त्रं महासिद्धिप्रदायकम् ।
सर्व-दोष-प्रशमनं पावनं लोकजीवनम् ॥७॥
धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां फलदानप्रगल्भितम् ।
सर्व-ज्ञान-प्रदं ब्रह्म ज्ञानदं ब्रह्मसिद्धिदम् ॥८॥
तादृशं कल्पमागोप्यं सर्ववेदागमोद्भवम् ।
शीघ्र-सिद्धि-प्रदं श्रेष्ठं शृणु सर्वमयेम्बिके ॥९॥
वक्ष्यमाणं महाशास्त्रं पठतां शृण्वतामपि ।
तथालोकयतां पुंसां वनितानां विशेषतः ॥१०॥

क्षिप्र-सिद्धि-प्रदं दिव्यं कथयामि जगन्मयम् ।
प्रणम्य परया भक्त्या ब्रह्माख्यं योऽवलोकते ॥११॥
सहसा तस्य सौभाग्यमस्तु ज्ञानं च भूयकम् ।
लब्ध्वाशिषः समुत्थाय विभाते देशिकं स्मरन् ॥१२॥
वक्ष्यमाणेन शास्त्रेण साध्यं कर्म समाप्य सः ।
यथातथं पुरा युक्तमेकान्तं भवने शुभे ॥१३॥
यथाविधि समाविश्य भूतोच्चाटं चरेत् स्थितः ।
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ॥१४॥
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।
इति जप्त्वा करास्फोटं त्रिधाघातं पदा तथा ॥१५॥
ततो मन्त्रैर्नमस्कृत्य लोकपालांश्च मण्डपम् ॥

मुक्ता-विद्रुम-रत्न-कांति-रुचिरं हेमं विचित्रं परम्,
नाना-दिव्य-सुगन्धि-गन्ध-निवहं नानाप्रसूनार्चितम् ।
पञ्चाशल्लिपिशोभितं परसुधा-धाराभिरासेचयन्,
पञ्चानन्दमयं प्रसन्नसुखदं भद्राय पीठं नमः ॥१६॥

आब्रह्मलोकादाशेषादालोकालोकपर्वतात् ।
ये वसन्ति द्विजा देवास्तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥१७॥
इति नत्वा समासीनः सर्वालंकरणान्वितः ।
आराधनोपयोगानि संपाद्य तदनन्तरम् ॥१८॥
ब्रह्मरंध्रे यजेन्नाथं ब्रह्मानंदमयं विभुम् ।
परम्पराक्रमेणैव गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥१९॥
चिरं ध्यात्वा ततो देवि भूतशुद्धिं यथाविधिः ।
ऋषिन्यासादिकं कुर्यात् प्रसन्नात्मा यथाविधिः ॥२०॥
सर्वकार्यार्थसिध्यै च सर्व-विघ्न-निवृत्तये ।
पंचद्व्यर्णकविंशेन यजेद्वै नायकं पुनः ॥२१॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे उत्साहप्रक्रमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

अथ विघ्नविनाशाय मंत्रिणां सर्वसिद्धये ।
गणेशाराधनं वक्ष्ये सर्व-काम-फल-प्रदम् ॥१॥

पीठासनेष्ट-पत्रेऽब्जे नव-शक्तीर्गणेशि तु ।
प्रागादितो यजेद्देवि नवमीं कर्णिकान्तरे ॥२॥

तीव्रां च ज्वालिनीं नन्दां भोगदां कामरूपिणीम् ।
उग्रां तेजोवतीं सत्यां ततो विघ्नविनाशिनीम् ॥३॥

रक्तांग-राग-वसन-माल्याभरण-भूषिताः ।
वराभीतिकराः सर्वाः प्रसूनादिभिरर्चयेत् ॥४॥

तस्योपरि महायंत्रं कल्पयित्वा यथाविधिः ।
आवाहनादिपुष्पांतं कृत्वा नत्वाथ पंचधा ॥५॥

गुरुं प्रथममाराध्य पारंपर्यविधानतः ।
विघ्नेश्वरं सावरणं विभुं संविन्मयं यजेत् ॥६॥

आराध्य योऽखिलान् देवानेक-चत्वारि-पंचभिः ।
यजेत्तस्य त्वरं सिद्धिं तन्वन्त्यखिलदेवताः ॥७॥

बिन्दौ गणेश्वरं लक्ष्मीं त्रिकोणे दिक्षु बाह्यतः ।
श्रियं च श्रीपतिं पूर्वे चांबिकामंबिकापतिम् ॥८॥

दक्षिणेऽथ रतिं कामं पश्चिमे चोत्तरेत्ततः ।
महीं महीपतिं चैव भूयो लक्ष्मीं गणेश्वरम् ॥९॥

परतो ऋतुकोणाग्रमादितस्तान्यजेत् क्रमात् ।
ऋद्धयामोदौ समृद्धिं च प्रमोदा-कान्ति-सौमुखौ ॥१०॥

मदनावती समायुक्तं दुर्मुखं च ततः परम् ।
मदद्रवामप्यविघ्नं द्राविणीं विघ्नकारकम् ॥११॥

वसुधारां शंखनिधिं बाह्ये दक्षिणपार्श्वके ।
वसुमतिं पद्मनिधिं वामपार्श्वे यजेत्ततः ॥१२॥

पावकेशानदैत्येय-पवमानेन्द्र-पाशिषु ।
अङ्ग देवीर्यजेदष्टपत्रे प्रागादिमातृकाः ॥१३॥
लोकपालांस्ततः पश्चाद्यजेद्दिक्षु यथाक्रमम् ।
पंचाशदक्षराधीशांस्ततः पाशांकुशौ यजेत् ॥१४॥
चक्रराजं महीकोणद्वंद्वेन परिवेष्टितम् ।
चिरं ध्यात्वा गणेशं च गणेशाभिमुखं स्थिताः ॥१५॥
गन्धमाल्यैः समभ्यर्च्य धूपदीपादिकं यजेत् ।
हुत्वा तदर्ध्यमात्माग्नौ शतवाराभिमर्शितम् ॥१६॥
आत्मन्युद्वास्य देवेशं मस्तकाराधनं चरेत् ।
सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ॥१७॥
लम्बोदरश्च विकटो विघ्नराजो विनायकः ।
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ॥१८॥
वक्रतुण्डः शूर्पकर्णो हेरम्बः स्कन्दपूर्वजः ।
षोडशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥१९॥
विद्यारंभे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥२०॥
एवं स्तुत्वाथ नवकैर्देवमिष्ट्वा यथाविधिः ।
सवने तत्र तत्स्थाने यजेदाकाशभैरवम् ॥२१॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे गणेशयजनविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

रहस्यं शृणु कल्याणि भैरवस्य महात्मनः ।
सर्वलोकैकरक्षार्थं तव वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥१॥

कदा लोकहितार्थाय लीलयाकाशभैरवम् ।
त्रिधा विभज्य चात्मानं रक्षते सर्वदाखिलम् ॥२॥

आकाशभैरवं पूर्वं द्वितीयं चाशु गारुडम् ।
शरभं तु तृतीयं स्याद्रूपत्रयमिहोच्यते ॥३॥

तस्य तार्तीय रूपस्य त्रिधा रूपं विशेषतः ।
शरभं सालुवं चैव पक्षिराजं तृतीयकम् ॥४॥

तत्र मूलत्रिरूपेषु यजेदेवं यथादृढम् ।
आदि देवोऽस्य मंत्रस्य विद्या ऋषिरिहोच्यते ॥५॥

तथाछंदस्तथादेवी देव आकाशभैरवः ।
प्रणवं मांच मायांच बीजशक्ती च कीलकम् ॥६॥

स्वेच्छा-कार्यार्थ-सिद्ध्यर्थे विनियोगोऽथ मायया ।
करांगन्यासजालानि क्रमात्कृत्वाथ भावना ॥७॥

नानाहेति सहस्र-बाहु-सहितं नानास्थिमालाधरम्
नानावर्ण-सहस्र-पाद-कमलं नानाविधालंकृतम् ।
नाना-नाग-विभूषणं पृथुतरग्रीवं सहस्राननम्
नानारातिहरं करालवदनं नौम्यावसानं शिवम् ॥८॥

एवं ध्यात्वा जपेन्मंत्रं षोडशाक्षरपूर्वकम् ।
जपेद् गुरुमुखाल्लब्ध्वा लक्षं सर्वांगसंयुतम् ॥९॥

भूकोणवृत्तांतरवह्निकोणे संपादितं कल्प्य यथाविधानम् ।
आराध्य तत्स्थामखिलोपचारैराराध्य तद्वद्दिशि बाह्यदेशे ॥१०॥

तत्कोणमध्ये सकलोपचारैस्ततो जपेन्मंत्रमभीष्टसिध्यै ।
यामार्धकालार्जितकार्यजालः प्रादुर्भवत्यंबरभैरवः स्वयम् ॥११॥

निवेद्य तस्याखिलमात्मनाथं धृत्वा तदास्यः प्रणिपत्य तिष्ठेत् ।
श्रीरुद्रसूक्तं प्रजपेत् त्रिवारं ततोऽखिलेशं परितुष्टहृत्स्यात् ॥१२॥

चतुष्टयेन तं पश्येदपांगेन दयापरः ।
सप्तकेन लभेत्पूर्णवीक्षणं भाषणं तथा ॥१३॥
एकादशेन वाक्सिद्धिं षोडशेनामरत्वकम् ।
अष्टादशेन सौभाग्यं चतुर्विशेन विग्रहम् ॥१४॥
अष्टाविंशेन देवत्वं त्रिंशेनेन्द्रत्वमाप्नुयात् ।
चत्वारिंशेन वेधस्त्वं स्वर्गभेदं च सर्वसु ॥१५॥
पंचाशता रमेशत्वमष्टाशीत्याथ रौद्रकम् ।
शतेन शिवसालोक्यं सहस्रेण स्वरूपकम् ॥१६॥
सामीप्यमयुतेनैव नियुतेन विशेषतः ।
लक्षेण शिवसायुज्यं चमकं तत्परं यजेत् ॥१७॥
चमकोक्ताखिलं भाग्यं ततस्त्वाकाशभैरवम् ।
संतुष्टहृदयस्तस्मै ददात्येव न संशयः ॥१८॥
तेन श्रीरुद्रसूक्तेन शिवलिंगाभिषेचनम् ।
कृत्वैकादशधा मंत्री पूजयेत्सर्वसिद्धये ॥१९॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे उत्साहयजनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

अथ रुद्राभिषेकस्य विधिं वक्ष्यामि तेऽम्बिके।
येनाखिलापराधं च क्षमते शृणु भैरवः ॥१॥
समाप्य साध्यकं कर्म ब्रह्मयज्ञमुपासनम्।
संगवानंतरं गेहं जनो रम्यं प्रविश्य सः ॥२॥
पूर्ववत्कलशं कृत्वा नमस्कृत्वा महेश्वरम्।
ततः पौरुषसूक्तेन पादर्चेन शिखादिकम् ॥३॥
मातृकासहितेनैव न्यसेत् सव्यापकः क्रमात्।
मंडपं विकरेत्पश्चाद्यज्ञेनेति ऋचाक्षतान् ॥४॥
सुगंधगंधिपयसा पूर्णकुंभमलंकृतम्।
संस्पृशंश्च जपेन्मंत्री गायत्रीं व्याहृतीयुताम् ॥५॥
वेदादींश्चतुरो मंत्रानापोहिष्टात्यृचो नव।
शन्नइन्द्रेति सूक्तं च एतोन्विंद्रमिति तृचः ॥६॥
तरत्समंदीतिचतुःपवस्वसोमसूक्तकं।
आपोवेति महासूक्तं जप्त्वाभ्यर्च्य सुमादिभिः ॥७॥
आपूर्य्य शंखमभ्यर्च्येमं मेगंगेत्यृचं जपेत्।
ऋतं चेति ऋचं पश्चात् त्रिवारं मनसा ततः ॥८॥
गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिंकुरु ॥९॥
इति जप्त्वा त्रिधात्मानं प्रोक्ष्योपकरणानि च।
ततः सहस्रशीर्षेति देवमावाह्यलिंगके ॥१०॥
पीठं पुरुषएवेदं एतावानस्यपाद्यकम्।
त्रिपादूर्ध्वं उदैदर्घ्यं तस्मादाचमनीयकम् ॥११॥
यत्पुरुषेण हविषा मधुपर्कं ततश्चरेत्।
ततो विशेषसूक्तेन स्नानं तं यज्ञमित्यृचा ॥१२॥
श्रीरुद्रपंचके चैव पंचशांतीस्ततः परम्।
श्रीसूक्तं घृतसूक्तं च भूसूक्तं पुरुषसूक्तकम् ॥१३॥

ब्रह्मसूक्तं विष्णुसूक्तं पंचरौद्रं ततः परम् ।
तस्मादिति ततो वस्त्रं तस्मादौत्तर्यकं ततः ।।१४।।
तस्मादित्युपवीतं च मूलेनाभरणानि च ।
यत्पुरुषमिति गंधं ब्राह्मणोऽस्येति पुष्पकम् ।।१५।।
चन्द्रमामनसोधूपं नाभ्या आसीत्तु दीपकम् ।
सप्तास्यासन्नित्यनया नैवेद्यमखिलान्वितम् ।।१६।।
अहमस्मीति सूक्तेन स्पृशन् जप्त्वा ततः परम् ।
परिषेचनमुख्यानि कृत्वा पुष्पेण संस्पृशन् ।।१७।।
निवेदयेत्ततः पश्चान्मधुवाता इति तृचा ।
धूरसीति ततो धूपं श्रिये जातस्तु दीपकम् ।।१८।।
यज्ञेनेति च तांबूलं त्र्यंबकेन प्रसूनकम् ।
सद्योजातेन छत्रं तु वामदेवेन चामरम् ।।१९।।
त्वमापोवषट् त इति शंखतीर्थनिवेदनम् ।
व्यजनं च त्वघोरेण नीराजनं तदित्यथ ।।२०।।
सर्वं समाचरेद्देवमीशान इति दर्पणम् ।
नमस्कृत्वा ततः स्तुत्वा त्रिधा स्वाद्याभिषिक्तकम् ।।२१।।
यथेष्टं प्रार्थ्य देवेशं स्वात्मन्युद्वास्य भैरवम् ।
चिरं ध्यात्वाततो मंत्री सोऽहं सोऽहमिति स्मरन् ।।२२।।
गुरोः समीपमागत्य गंधपुष्पाक्षतादिभिः ।
अभ्यर्च्य तत्पदद्वंद्वं प्रक्षाल्य शुभवारिणा ।।२३।।
तत्कं चरणसूक्तेन प्रोक्षयेत् त्रिः स्वमूर्धनि ।
ततस्तत्तीर्थमादाय स्मरन्मंत्रं त्रिधा पिबेत् ।।२४।।
अविद्यामूलनाशाय जन्म-कर्म-निवृत्तये ।
ज्ञानसौभाग्यसिध्यर्थं गुरुपादोदकं शुभम् ।।२५।।
ततो गंधप्रसूनाद्यैश्चिरं संपूज्य देशिकम् ।
यथा सस्योदनेनैव सत्कारसहितेन तु ।।२६।।
संपूज्य परया भक्त्या स्वयं भुज्यात्ततः परम् ।
इति तु श्रीभैरवस्य महदाराधनार्थकम् ।
ज्ञात्वा गुरुमुखान्मंत्री प्रतिवासरमाचरेत् ।।२७।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसंवादे उत्साहाभिषेकविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

पंचमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

अथ यंत्रप्रयोगं तु कल्याणि शृणु वच्म्यहम् ।
नाना सिद्धिप्रदं श्रेष्ठं नाना कार्यजयप्रदम् ॥१॥

वेधसेनं त्रिमूर्धानं परिविष्ट्याभिवेष्ट्य तत् ।
ऊर्ध्वंशूलं तु तन्मध्ये लिखेद् धुं-कुरुतेति फट् ॥२॥

संपूज्य विधिवद्देवमावाह्याकाशभैरवम् ।
तद्दले स्वेष्टमालिख्य स्थापयेत द्विकोष्ठके ॥३॥

यद्वा चक्रप्रकारेण सिद्धयत्याशु न संशयः ।
निग्रहानुग्रहे चैव तथा षट्कर्मसु ज्वरे ॥४॥

भूत-प्रेत-पिशाचेषु वैरिष्वपि चरेच्छिवे ।
मरीचिं काश्यपिं भानुं नायकं वह्नि मारुतौ ॥५॥

सूकरं च सूरीं चैव विदुश्च तदनंतरम् ।
चिंतामणिरिति ख्यातं सप्तकूटं महामनुम् ॥६॥

हेमपत्रे समालिख्यावाह्य संपूज्य भैरवम् ।
जपं साहस्रकं कुर्याद्रक्षाबंधं यथाविधिः ॥७॥

तेन सर्वसमृद्धि च सर्वकार्यजयं लभेत् ।
अयुतेन वशीकारं नियुतेन धनागमम् ॥८॥

चत्वारिंशेन वाक् सिद्धि मोहनं चतुरुत्तरात् ।
पंचाशता जगत्क्षोभं षष्ठ्या कर्षणमद्भुतम् ॥९॥

उच्चाटनं तु सप्तत्या नवत्या स्तंभनं भवेत् ।
निग्रहं षणवत्या तु लक्षेणाखिलदर्शनम् ॥१०॥

सप्तलक्षेण देवेशि सर्वाभीष्टं लभेद् ध्रुवम् ।
चिंतामणिमहामंत्रं चिंतितार्थप्रदायकम् ॥११॥

एकाक्षरं महामंत्रं (वीर्यं) यत्नेनापि जपांबिके ।
यंत्ररुपेण मंत्रं च मंत्ररुपेण यंत्रकम् ॥१२॥
यंत्रमंत्राक्षरं तस्मात्क्षिप्र सिद्धिप्रदं भवेत् ।
ब्रह्माणं वसुधां विष्णुं मायाबीजं समुद्धरेत् ॥१३॥
कामराजमितिख्यातं चतुष्कूटं महामनुम् ।
महामायां तु तेनैव वेष्टितं मंत्ररुपकम् ॥१४॥
तस्मिन्मंत्रं महायंत्रे देवमाकाशभैरवम् ।
आवाह्यनेन संपूज्य जपेदेकाग्रमानसः ॥१५॥
चतुःसहस्रं वश्याय भर्तुः स्त्रीणामथायुतम् ।
सेनाया नियुतं राज्ञः प्रयुतं द्व्यधिकं नृणाम् ॥१६॥
देवतानां चतुःषष्टिः मुनीनां सप्तसप्ततिः ।
हरेरशीतिर्नवतिं विष्णोर्लक्षं तु वेधसः ॥१७॥
चतुर्लक्षं महेशस्य सर्वयजनपूर्वकम् ।
सर्वे ह्यनेन मंत्रेण प्रीता भवंति सिद्धिदाः ॥१८॥
अनंतं च बृहद्भानुं नारायणमतः परम् ।
महामायां ततो विन्दुं संयोज्याशेषमुद्धरेत् ॥१९॥
महामायेति विख्याता चतुष्कूटाक्षरात्मिका ।
तत्कूटं मंत्रयंत्राख्यं सर्वकार्यार्थसिद्धिदम् ॥२०॥
तस्मिन्नावाह्य देवेशमिष्ट्वा पंचसहस्रकम् ।
मोहनाय जपेन्मंत्रं जंतूनामयुतं नृणाम् ॥२१॥
स्त्रियं द्वादशसाहस्रं नियुतं रोगशांतये ।
पंचविंशतिसाहस्रं द्रव्यलाभाय मानुषात् ॥२२॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्रं तु पुत्रलाभाय योषितम् ।
सप्तत्रिंशत्सहस्रं तु महावैरस्य शांतये ॥२३॥
षट्चत्वारिसहस्रं तु विद्वेषोच्चाटसिद्धये ।
षट्पंचाशत्सहस्रं तु मृतकोत्थापनाय वै ॥२४॥
चतुःषष्टिसहस्रं तु सर्वाकर्षणसिद्धये ।
अष्टाशीतिसहस्रं तु देवताकर्षसिद्धये ॥२५॥
सप्तनवतिसाहस्रं सर्वसौभाग्यसिद्धये ।
सर्वस्तंभाय लक्षं तु मारणाय द्विलक्षकम् ॥२६॥

चतुर्लक्षं प्रसादाय पंचलक्षं विशेषतः ।
इन्द्रत्वं दशलक्षेण त्रिंशलक्षेण तत्त्वकम् ॥२७॥
षष्टिलक्षेण विष्णुत्वं रुद्रत्वं दशलक्षतः ।
चतुःशतेन लक्षेण महामाया त्वमंबिके ॥२८॥

रुद्रं वैश्वानरं विष्णुमायां बिंदुमतः परम् ।
उद्धरेदखिलं योज्य चतुष्कूटं परात्परम् ॥२९॥

लक्ष्मीबीजमितिख्यातं सर्वसंपत्समृद्धिदम् ।
महामायावदखिलं विशेषाद्राज्यसिद्धिदम् ॥३०॥

अश्विनीमंत्रमुद्धृत्य महामायां च बिंदुकम् ।
द्राविणीयमितिख्यातं त्रिकूटं द्रावकारकम् ॥३१॥

एतन्मंत्रमये यंत्रे विधिवत्पूज्य पूर्ववत् ।
लक्षत्रयं जपं कुर्यादखिलं कामराजवत् ॥३२॥

ईशानं पावकं विष्णुं नारायणमतः परम् ।
विन्दुद्वयं च संयोज्य चोद्धरेद्भास्कराख्यकम् ॥३३॥

चतुष्कूटं महामंत्रं सर्वव्याधिहरं परम् ।
चिंतामणिवदखिलं द्विलक्षात्कुष्ठनाशनम् ॥३४॥
यक्ष्माहरं त्रिलक्षं तु सर्वलक्षचतुष्टयम् ॥३५॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे मंत्र-यंत्र-प्रक्रमं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

चित्रमालां प्रवक्ष्यामि शीघ्रसिद्धिप्रदायिनीम् ।
सर्वसौभाग्यदां तुर्यां चतुर्वर्गफलप्रदाम् ॥१॥
आकाशभैरवस्यास्य मंत्रस्यानंदभैरवः ।
ऋषिः छंदस्तु गायत्री देवताकाशभैरवः ॥२॥
ह्रींकारं बीजमित्युक्तं हुङ्कारं शक्तिरुच्यते ।
सर्वाभीष्टार्थसिध्यर्थे विनियोगस्तु मायया ॥
करांगन्यासजालानि क्रमात्कृत्वाथ भावयेत् ।
सहस्रपाणिपद्वक्त्रं सहस्त्रत्रयलोचनम् ॥
सर्वाभीष्टप्रदं देवं स्मरेदाकाशभैरवम् ॥३॥

ओं नमो भगवते आकाशभैरवाय निखिललोकप्रियाय-प्रणत जन-परिताप-विमोचनाय सकल-भूत-निवारणाय सर्वाभीष्टप्रदाय नित्याय सच्चिदानंदविग्रहाय सहस्रबाहवे सहस्रमुखाय सहस्र-त्रिलोचनाय सहस्र-चरणाय करालाय अखिलरिपु-संहारकारणाय अनेक-कोटि-ब्रह्म-कपाल-मालालंकृताय नररुधिरमांसभक्षणाय महाबलपराक्रमाय महदन्तराय विष-मोचनाय पर-मंत्र-यंत्र-तंत्र-विद्या-विछेदनाय प्रसन्नवदनाम्बुजाय एह्येहि आगच्छागच्छ ममाभीष्टमाकर्षयाकर्षय आवेशयावेशय मोहय २ भ्रामय २ द्रावय २ तापय २ सिद्धय २ बंधय २ भाषय २ क्षोभय २ भूतप्रेतादि पिशा-चान्मर्दय २ कुर्दय २ पाटय २ मोटय २ गुंफय २ कंपय २ ताडय २ त्रोटय २ भेदय २ छेदय २ चंडवातातिवेगाय संतत-गंभीर-विजृंभणाय संकर्षय २ संक्रामय २ प्रवेशय २ स्तोभय २ स्तंभय २ तोदय २ खेदय २ तर्जय २ गर्जय २ नादय २ रोदय २ घातय २ वेतय २ सकल-रिपु-जनान्छिन्धि २ भिन्दय २ अंधय २ रुन्धय २ नर्दय २ बंदय २ श्रीं ह्रीं क्लीं कल्याणकारणाय श्मशा-नानंदमहाभोगप्रियाय देवदत्तं आनय २ द्रुनय २ केलय २ मेलय २ प्रपन्न वत्सलाय प्रतिवदन-दहनामृत-किरणनयनाय सहस्रकोटि-वेताल-परिवृताय मम रिपूनुच्चाटयोच्चाटय नेपय २ तापय २ सेचय २ मोचय २ लोटय २ स्फोटय २ ग्रहण २ अनंत-वासुकि-तक्षक-कर्कोटक-पद्म-महापद्म-शंख-

गुलिक-महानाग-भूषणाय स्थावर-जंगमानां विषं नाशय २ प्राशय २ भस्मीकुरु २ भक्तजनवल्लभाय सर्गस्थितिसंहारकारणाय कथय २ सर्व शत्रून् उद्रेकय २ विद्वेषय २ उत्सादय २ उत्पादय २ बाधय २ साधय २ दह २ पच २ शोषय २ पोषय २ दूरय २ मारय २ भक्षय २ शिक्षय २ समस्तभूतं शिक्षय २ श्रीं ह्रीं क्लीं क्ष्म्रचैं अनवरत-तांडवाय आपदुद्धारणाय साधुजनान् तोषय २ भूषय २ पालय २ शीलय २ काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्यं शमय २ दमय २ त्रासय २ शासय २ क्षिति-जल-दहन-मारुत-गगन-तरणि-सोमात्मशरीराय शम-दमोपरति तितिक्षा समाधान श्रद्धां दापय २ प्रापय २ विघ्न विच्छेदनं कुरु २ रक्ष २ क्ष्म्रचैं क्लीं ह्रीं श्रीं ब्रह्मणे स्वाहा ।

इति गोप्यं महामंत्रं परमाकाशभैरवम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण नंदंत्यखिलदेवताः ।।
शतवारमिमं मंत्रं जपेत्सर्वार्थसिद्धये ।
त्रिवारं कार्यसिध्यर्थं जपेदेकाग्रमानसः ।।
प्रथमं तु त्रिधा मृश्य गुरुं स्वेष्टं यदा स्मरेत् ।
तत्काम्यसिद्धये शक्तौ जुहुयात्स्वात्मपावके ।।७।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे चित्रमालामंत्रं नाम षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

सप्तमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

श्रृणु देवि क्रियाभेदं शीघ्रसिद्धिप्रदायकम् ।
नानाकर्मसमोपेतं साधकानां विवेकिनम् ।।१।।
रक्तांबर सुमलेप भूषणं रक्तलोचनम् ।
रक्तवर्णलसद्ग्रीव रक्तकुंडलसंयुतम् ।।२।।
रत्नकेयूरमुकुट लसच्चंद्रार्धशेखरम् ।
प्रसन्नममृतोन्मत्तं प्रणताभीष्टसिद्धिदम् ।।३।।
इक्षुकोदडंपुष्पेषु पूर्णबाहुसहस्रकम् ।
कार्मुकोत्थशरैर्दिव्यैः पूरिताशावकाशकम् ।।४।।
चिरं ध्यात्वा जपेदेवं जगद्वश्याय साधकः ।
काममादौ ततो मंत्रं पुनः कामं सपल्लवम् ।।५।।
त्रिसहस्रं ततो मंत्री (मौनी) देशिकाज्ञामनुस्मरन् ।
ततः सर्ववशीकारं साध्ययुक्तं विशेषतः ।।६।।
आकर्षे तु तथाध्यानं पाश-बाहु-सहस्रकम् ।
तत्पाशपूरिताशेषककुभः कर्षंताखिलम् ।।७।।
ध्यात्वा जपेत्तथा मंत्रं साधकः स्थिरमानसः ।
आंकारं च ततो मंत्रं पुनरां सहपल्लवम् ।।८।।
आकर्षणे विशेषज्ञः ससाध्यं तस्य सिद्धये ।
राजचौरारि नारीणां देवतानां विशेषतः ।।९।।
चेतनाचेतनानां च भूत-प्रेत-गणादिना ।
तस्य शीघ्रं लभेद्देवि सर्वाकर्षणमद्भुतम् ।।१०।।
सर्वलोकवशीकारं सर्वकार्यजयं तथा ।
ते सर्वे तद्वशं प्राप्य दास भूता भवंति हि ।।११।।
यं यं मनसि संचित्य जपेद्भवति साध्ययुक् ।
ते सर्वे तद्वशं प्राप्य दास भूता भवंति हि ।।१२।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे वश्याकर्षणप्रयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अष्टमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

पीताम्बरं प्रसन्नाक्षं कुंकुमारुणवक्षसम् ।
मुक्ताहार-लसद्ग्रीवं रत्नशिंजितनूपुरम् ॥१॥

उत्तुंग-रत्नमुकुटमुद्यद्भानुसमप्रभं ।
अमृतानंद-संभोग-लीलमद्भुत-विग्रहम् ॥२॥

स्वच्छंदमात्मवैलास्यं मोहिताखिललोककम् ।
ध्यात्वा जपेत्ततो मंत्रं प्रसन्नात्मा जितेन्द्रियः ॥३॥

तस्य दाढ्र्यप्रभावेन देव-दानव-राक्षसाः ।
भूत-प्रेत-पिशाचाश्च योषितोखिलमानुषाः ॥४॥

मन्मथानलनिर्दग्धास्त्यक्ताचेष्टांबराशनाः ।
दिदृक्षवस्त्यक्तलज्जा मुह्यंत्यखिलजंतवः ॥५॥

महामायां ततो मंत्रं मायां साध्यं विमोहय ।
ततः स्वाहेति माहेशि द्रावयाद्रावयेति वै ॥६॥

विशेषान्मन्मथस्थानात् स्मर पारवशाः स्त्रियः ।
द्रवंति बहुरेतांसि वह्नेराज्यमिव स्वयम् ॥७॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे मोहन-द्रावक-प्रयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

वक्ष्यामि तव देवेशि स्तंभनद्वेषकर्मणि ।
जंगमस्थावराणां च क्षिप्राश्चर्यनिदर्शनम् ।।१।।

महाकालघनश्यामं वज्रदंतमुखांबुजम् ।
कपिलाक्षं बृहत्स्कंधं करालं कृष्णवाससम् ।।२।।

गंगास्थिमालाचंद्रार्धशेखरं विषमेक्षणम् ।
महाकायं महावेगं व्याल यज्ञोपवीतिनम् ।।३।।

वामहस्तै रिपोरास्यं भीषयंतं प्रतिक्षणम् ।
सत्वरं दक्षहस्ताग्रै स्ताडयंतं मुखस्थले ।।४।।

एवं ध्यात्वा जपेन्मंत्री चिरमाकाशभैरवम् ।
पूर्वसंख्यामहामंत्रमर्धरात्रौ यथा विधिः ।।५।।

चराचर-गति-स्वांत-लोचनास्य-करांघ्रिणाम् ।
गुह्य-लिंग-श्रुति-स्तंभं स्तंभयंति न संशयः ।।६।।

वासवं मूलमंत्रं च पुनरिन्द्रं सपल्लवम् ।
रुद्रमंत्रं पुना रुद्रं पल्लवम् द्वैषसिद्धये ।।७।।

विद्वेषणप्रभावेन स्वप्रतापपराक्रमैः ।
वैरिणां मन्युमन्योन्यमेधयंतमहेतुकम् ।।८।।

तयोरैश्वर्यजालानां क्षयं कुर्वीत तत्परम् ।
तयोर्दशदिनात्पश्चान्महद्युद्धं भवेद् ध्रुवम् ।।९।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे स्तंभ-विद्वेष-प्रयोगो नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

दशमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

निग्रहोच्चाटने वक्ष्ये नितरां परिपंथिनाम् ।
महाक्रूरतरं गुह्यं शृणु सर्वं वरानने ।।१।।
करालमुग्रदंष्ट्रं च कालांजनसमप्रभम् ।
अनेक-कोटि-ब्रह्मास्थि-मुंड-मालाविभूषितम् ।।२।।
घोराट्टहास-भिन्नांड-गोलकं कृत्तिवाससम् ।
सहस्र-मुख-हस्तांघ्रि मुकुटं नागभूषणम् ।।३।।
सहस्र-कोटि-वेताल-गण-संघसमावृतम् ।
नानाविध-शिलाभेदैर्वर्षयंतं स्वकिंकरैः ।।४।।
महावीर्यमतिक्रुद्धं महाभीतपराक्रमम् ।
भक्षयंतं निजैर्भूतैः परिपरिन्थकुलं बलात् ।।५।।
एवं रूपं चिरं ध्यात्वा स्मरेदाकाशभैरवम् ।
दशरात्रं जपेन्मंत्री जपन्पंचशतं मनुम् ।।६।।
उच्चाटनं च संहारं दशाहात्परतो लभेत् ।
वायुबीजं च मंत्रं च पुनर्वायुं सपल्लवम् ।।७।।
हुङ्कारं च पुनर्मंत्रं पुनर्हुङ्कारपल्लवम् ।
इति प्रयोगद्वितयं कुर्याद्यत्नेन चाम्बिके ।।८।।
सहस्राल्लभते सिद्धिं संशयो नास्ति शोभने ।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे उच्चाटन-निग्रहप्रयोगो नामदशमोऽध्यायः ।।१०।।

एकादशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

मोक्षसारस्वतं वक्ष्ये सर्वेषामपि यत्नतः ।
समाहितेन मनसा शृणु कल्याणि शोभने ।।१।।
स्फटिकाभं महादेवं प्रसन्नवदनांबुजम् ।
अमृतांशु कलाचूड़मग्नि-सूर्येन्दु-लोचनम् ।।२।।
व्याघ्रचर्माम्बरं शांतं व्यालयज्ञोपवीतनम् ।
वैडूर्यहार-शोभाढ्यं मंदस्मित-मनोहरम् ।।३।।
मुक्ता-विद्रुम-रत्नानुसांगदंसु-विभूषितम् ।
स्वर्णनूपुरपादाब्जं श्वेत-कुंडल मंडितम् ।।४।।
वीणां व्याख्यानमुद्रां च पुस्तकं स्फटिकस्रजम् ।
भस्म-भस्त्रं-गदां-पद्मं-सुधाकुंभं करांबुजैः ।।५।।
बिभ्राणममलं ब्रह्मज्ञानमुद्रा-स्वरूपिणम् ।
चन्द्रमंडल -मध्यस्थं सच्चिदानंदमव्ययम् ।।६।।
ध्यात्वा जपेत्ततो मंत्रमयुतं तत्त्ववित्तमः ।
विजृंभते महाबाणी वियद्गंगाप्रवाहवत् ।।७।।
तद्वाणीं दूरतः श्रुत्वा प्रकंपंते कवीश्वराः ।
तस्य भोगं च मोक्षं च भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्यते ।।८।।
भूतले पूजितः सर्वैर्भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ।
अनेनैव शरीरेण जीवन्मुक्तो भवेच्छिवे ।।९।।
भाषा मंत्रं पुनर्भाषां स्वाहांतं मंत्रमुच्यते ।
चिंतामणिं ततो मंत्रं पुनश्चिंतामणिं नमः ।।१०।।
मोक्षाय प्रणवाद्यंतं धारणाय विशेषतः ।
श्रियै श्री पुटितं स्वाहा घृणिरारोग्यबृद्धये ।।११।।
चंद्रं रोगविनाशाय विषनाशाय ठं-युतम् ।
इति गुह्यतमं शास्त्रं लघुसिद्धिप्रदायकम् ।।१२।।
यत्नेनापि यजेद्देवि सर्वकामार्थसिद्धये ।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे भोगप्रदो नामैकादशोऽध्यायः ।।११।।

द्वादशोऽध्यायः

श्रीदेव्युवाच ॥

देवादिदेव लोकेश शशिचूड़महेश्वर ।
त्राहि मां जगतां नाथ शश्वदानन्दशाश्वत ॥१॥

श्रीशिव उवाच ॥

आशुतार्क्षप्रयोगस्य रहस्यं शृणु वच्म्यहम् ।
सर्वकामप्रदं दिव्यं चतुर्वर्ग-फल-प्रदम् ॥२॥
आशुतार्क्ष्याख्य-मंत्रस्य शंकरः ऋषिरुच्यते ।
छन्दस्तु जगती देव आशुतार्क्ष्याख्य-भैरवः ॥३॥
गं बीजमाहुतिः शक्तिरभीष्टे विनियोगकम् ।
गां श्रीं इति करन्यासं षडंगं चाथ भावना ॥४॥

आजानोस्तप्तहेम-प्रभममलमय-प्रख्यमानाभि तस्मा-
दाकर्णकुंकमाभं भ्रमरकुलमिव श्याममामूर्ध्व-केशम्
ब्रह्मांडं व्याप्त-देहं द्विभुजमभिवरैर्भूषणैर्भूषितांगम्
पिंगाक्षं तीक्ष्णदंष्ट्रं वरदमभयदं तार्क्ष्यमुग्रं नमामि ॥५॥

श्रीं गं गरुडाय गरुडाय महागरुडाय समस्तांडाय त्रैलोक्यनायकाय नागशोणितदिग्धांगाय ओं पक्षिराजाय विष्णुवाहनाय सर्वसर्पान् संहर २ मर्दय २ मोदय २ लोटय २ त्रोटय २ भ्रामय २ मुंच २ आकर्ष २ आवेशय २ सिद्धय २ शीघ्रय २ समस्तभूतवेतालान् नाशय २ सर्वग्रहान् नाशय २ सर्वशत्रून् नाशय २ सर्वसर्पान् संहर २ स्वाहा ।

षट्षष्टिशतमेवैतं मंत्रं यत् आशुतार्क्ष्यकम् ।
मोहनाकर्षणावेश-स्तंभ-वश्यानि भाषणम् ॥६॥
दंड-विद्वेष-संक्राम-स्तंभोच्चाटारिनिगृहम् ।
एवं नानाप्रयोगं च योग्यं कर्मादि-मस्तके ॥७॥
कुर्यादतंद्रितो मंत्री सर्वकार्यार्थसिद्धये ।
देवभूत-ग्रहादीनां नाना रोग नृणां शिवे ॥८॥

एवं नानाविधाख्यानां नाशायानुग्रहाय च।
दृढ़व्रतः क्रियां कुर्यात्सकलां पल्लवान्विताम् ॥९॥
अयुतं तु पुरश्चर्या संख्या सांगं समाचरेत्।
पिष्टंनागंतिलांल्लाजा पायसं च घृतान्वितम्।
अश्वत्थ वह्नि शाखे च गरुन्मद्धोममुच्यते ॥१०॥

षट्कोणांतरतोऽग्नि-वायु-लिपियुङ्मायां च सप्तार्णकम्।
कोणेष्वष्टसु साध्य वह्नि लिपियत् तद्बाह्य चिंतामणिम्॥
पाशं शक्तिमथांकुशं प्रणवकं संवेष्टच तारायुतं।
कुर्यात्सर्पभयापहं जयकरं सर्वार्थ-सिद्धि-प्रदम् ॥११॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे आशुताक्ष्यंविधिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

अथ प्रयोगभेदानि वक्ष्यामि शृणु शोभने।
प्रयोग स्मरणादेव सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥१॥

मोहाकर्षवशीकारस्तंभ-स्तोभेषु भाषणे।
विद्वेष-दंड-संक्राम-प्रें-खोच्चाटेषु मारणे ॥२॥

सोमाग्निकामदेवेशावदग्नांशं भृगूनि च।
[1]श्रीं ह्रीं यंत क्रमादादौ मंत्रस्योच्चाटये तथा ॥३॥

मायां कृशानौ चतुष्पत्रकेसरं लक्ष्मी ऋतौ तत्त्रिशूलेषुनाम्।
यंत्रं प्रशस्तं स्थिरजंगमानां संमोहनं देवग्रहादिकानाम् ॥४॥

इति गुह्यं महामंत्रं संमोहनमनुत्तमम्।
मंत्र-स्मरण-मात्रेण मुह्यं त्यक्त्वा वरानने ॥५॥

बिन्दौ वह्नि ऋतौ लक्ष्मीं कुलतारात्तु नामकम्।
शूलकोणांतरालेजां श्री मायाभ्यां विवेष्टयेत् ॥६॥

एतद् गुह्यं महावीर्य्यं भीममत्याशुसिद्धिदम्।
जंगमाजंगमानां च लभेदाकर्षणं शिवे ॥७॥

तारं मध्येऽष्टपत्रेमां भू द्वंद्वे नाम मन्मथम्।
मायावृतमिदं श्रेष्ठं स्वेच्छावश्यकरं परम् ॥८॥

बिंदौ सुरेशमथ वह्निगृहे कृशानुं
भूकोण-युग्म-विलसत्क्षमयाभिवीतम्।
मायांकवाह्य मथ तच्छ्रुतिराजभृंगं
स्तंभ-प्रशस्तमतुलं पवनाग्निकालाम् ॥९॥

मध्येनामवसप्तारेत्वष्टास्त्रे मामजामपि।
कामावृतमिदं यंत्रं स्तंभनं तोषणं शिवे ॥१०॥

बिंदौ वायुं दशारे तु भूकारं नाम बाह्यकम्।
मायावृत्तं महायंत्रं भूतभावनलंपटम् ॥११॥

---

१ (वा) ऊं ह्रूं यं ह्रं

देव-ग्रहाणां साध्यानां भूत-प्रेत-ग्रहादिनाम् ।
विशेषतो हि मूकानां भाषणं लभते क्षणात् ॥१२॥

राशिकोष्ठे लिखेद्राशिं मध्ये वह्नौ यशार्णके ।
कोणाग्रशूलके साध्यं स्वेच्छाविद्वेषणं परम् ॥१३॥

मध्ये नाम शिखौ वह्नि शकारं रुद्रपत्रके ।
शूलाग्रेषु क्रिया साध्यं मूल मूलोर्ध्वकोणके ॥१४॥

यंत्रमेतन्महावीर्यं सर्व-दंडन-कारणम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण बिभ्यतेऽखिलमूर्तयः ॥१५॥

बंधने त्रोटने चैव तापने पाटने तथा ।
वर्तने नर्तने तापे रोदने नादने प्लवे ॥१६॥

नानाविलासा दोषेषु दृढत्त्वं च क्रियां चरेत् ।
तत्क्षणादेव सिद्धिः स्यात् संशयो नास्ति शोभने ॥१७॥

ह्रूंकारं वृत्तमध्ये मरुदृतुभवने तत्कलापे कृशानुं
हंकारं शूलमूले तदनुपरिवृतं स्वेष्टकं कामसाध्यम् ।
कृत्त्वा तस्मिन् प्रकल्पे गृहकलितमथो साध्य वक्त्रात् प्रसर्प-
द्धूमो बभ्रं समेत्य द्रुतमरिवदने संविशंतं विचिंत्यात् ॥१८॥

एतद् गुह्यतमं मंत्रं सर्व-संक्राम-लंपटम् ।
देवभूत-ग्रह-क्ष्वेड-गर्भ-प्राण-ज्वराणि च ॥१९॥

बहुनात्र किमुक्तेन सर्वसंक्रामणं लभेत् ।
यत्नेनापि जपेत्तस्माच्छीघ्रसंक्रामसिद्धये ॥२०॥

एकादशविधा मंत्राः स्वरकोष्टोर्ध्वपंक्तिकम् ।
रेखा शूलाग्रनामार्णं प्रें खं दुःसहमद्भुतम् ॥२१॥

भूमौ निधाय तद्यंत्रं निविष्टः शिवदिङ्मुखः ।
जपेदाशुप्रतिध्वंसं रिपुं जित्वोपशांतये ॥२२॥

मध्ये मायां षडस्त्रे पवनमथ वहिः पंचकोणे फडर्णम्
बाह्ये शूलाग्र नाम प्रणवमथ वहिर्मायया वेष्ट्य पश्चात् ।
तालीपत्रे तु ताम्रे लिखितमथ जपेत्क्षिप्रताक्ष्यं समंत्रं
सर्पोच्चाटं तदेतत्किमुह विचरतां जंगमानां पशूनाम् ॥२३॥

ऊर्ध्वं तिर्यक् च पंचत्रितय-मनुगृहं रिष्ट-संख्यं विलिख्य
वर्णान्मंत्रस्य बाह्ये त्रिशिख-गृहयुगे क्रूरषट्कं च हुं हुम् ।
साध्यं शूलाग्रदेशे कटु-युग-लिपितं-नागदुग्धं प्रसिक्तम्
जप्त्वा मंत्रं लिखित्वा द्विशतमथ तथा वैरिणां ध्वंसनाय ॥२४॥

यंत्रमेतन्महावीर्यरिपु-तूल-महानलम् ।
दृढचित्तः क्रियां कुर्यात्सहसा साधकोत्तमः ॥२५॥
शशि-रवि-शिखि-युक्तं ठाद्वहिः साध्यनाम्
महियुगमनुषंग प्रक्रिया-चक्रतमेत् ।
... ...
प्रतिवशमतुलंसत्पुत्र - भाग्यप्रदं च ॥२६॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे आशुगारुड-प्रयोगभेदो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीदेव्युवाच ॥

देव देव महादेव सर्वज्ञ करुणानिधे ।
पाहि मां कृपया शंभो परमानंदशंकर ॥१॥
यत्तु गुह्यं शुभतरं सर्व-रक्षा-करं परम् ।
गरुत्मान्येन मंत्रेण संतुष्यति हि तद्वद ॥२॥

श्रीशिव उवाच ॥

साधु देवि महाप्राज्ञे ज्ञानं वक्ष्यामि शंकरि ।
आशुताक्ष्यस्य कवचं महामंत्रं वदाम्यहम् ॥३॥
भोग-मोक्ष-दम-ज्ञान-तिमिरांधस्य तौलिकम् ।
भुक्ति मुक्ति प्रदं श्रेष्टं सिद्धिदं सर्वसिद्धिदम् ॥४॥
ऋषि-न्यास-प्रभावाश्च शंकरादिति मंत्रवित् ।
समाहितेन मनसा जपेन्मंत्रोत्तमोत्तमम् ॥५॥
ताक्ष्यो मे पुरतः पातु गरुडः पातु पृष्टतः ।
सोमः पातु च मे वामं वैनतेयस्तु दक्षिणम् ॥६॥
शिखायां गरुडः पातु निटिलं त्वहिसंधरः ।
नासिकाग्रं विभुः पातु नयने विनतासुतः ॥७॥
तेजिष्ठः श्रोत्रयोः पातु मुखं संतापमोचनः ।
ओष्ठयोः पातु नागारिः पातु तालू प्रजाकरः ॥८॥
जिह्वां खगेश्वरः पातु दंतान्पात्वरुणानुजः ।
सीरुकश्चिबुकं पातु पातु चोग्रः कपोलयोः ॥९॥
महारिहा गलं पातु चांसयोः कृतविक्रमः ।
करौ पातु च रक्ताक्षः कराग्रे तु महाबलः ॥१०॥
अंगुष्टौ च हरिः पातु तर्जन्यौ हरिवाहनः ।
मध्यमे सुमुखः पातु चानामिके त्रिलोचनः ॥११॥
कनिष्ठिके महोत्साहः स्वात्मांगः पातु दोः स्तनम् ।
करपृष्ठं कलातीतो नखान्यमृत-संधरः ॥१२॥

हृदयं पातु सर्वज्ञः कक्षे पक्षिविराट् ततः।
उरःस्थलं कलाधारः पातु मे जठरं परम् ॥१३॥
परात्परः कटिं पातु पातु नाभिं हरिप्रियः।
गुह्यं पातु मनोवेगः जघनं खगपन्नजः ॥१४॥
जितेन्द्रियो गुदं पातु मेढ्रं संतानवर्धनः।
ऊरू पशुपतिः पातु जानुनी भक्तवत्सलः ॥१५॥
जंघे पातु वषट्कारः सर्वलोकवशंकरः।
गुल्फौ नीलशिरः पातु पादपृष्ठं मुरारिधृक् ॥१६॥
धीरः पादतलं पातु चांगुलीः परमंत्रतुत्।
रोमकूपाणि मे पातु मंत्र-बंधिविमोचकः ॥१७॥
स्वाहाकारस्त्वचं पातु रुधिरं वेदपारगः।
साक्षिकः पातु मे मांसं मेदांसि पातु यज्ञभुक् ॥१८॥
सामगः पातु मे चास्थि शुक्रं तु हविवर्धनः।
शोभनः पातु मे मज्जां बुद्धिं भक्तवरप्रदः ॥१९॥
मूलाधारं खगः पातु स्वाधिष्ठानमथात्मवित्।
मणिपूरकमत्युग्रः कलधी पात्वनाहतम् ॥२०॥
विशुद्धिमपरः पातु चाज्ञामाखंडलप्रियः।
द्रुतताक्ष्यो महाभीमो ब्रह्मरंध्रं स पातु मे ॥२१॥
ऐंद्रं फणिभुजः पातु आग्नेयं कलिदोषभित्।
याम्यं लघुगतिः पातु नैर्ऋतं सुरवैरिजित् ॥२२॥
पश्चिमं पातु लोकेशो धौतोरुः पातु मारुतम्।
गुलिकाशीति कौवेरं पातु चैशान्यमोजसः ॥२३॥
ऊर्ध्वं पातु सदानंद-गीत-नृत्यप्रियस्तथा।
गरुडः पातु पातालं गरलाशी तनुं तथा ॥२४॥
धन धान्यादिकं पातु ताक्ष्यो राक्षस-वैरिधृक्।
भीषणः कन्यकाः पातु भार्यामग्निकणेक्षणः ॥२५॥
त्वरितः पातु चात्मानं धर्म-कर्म-क्रतूत्तमः।
पुत्रानायुष्करः पातु वंशं रिपुनिषूदनः ॥२६॥

संग्रामे विजयः पातु माग्रं शत्रुविमर्दनः ।
सिद्धिं पातु महादेवो भगवान्भुजगाशनः ॥२७॥
सततं पातु मां श्रेष्ठं स्वस्तिदः साधकात्मवान् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तौ च कुंकुमारुणवक्षसः ॥२८॥
सर्व-संपत्प्रदः पातु स्तुतिर्मंत्रस्य सिद्धिषु ।
इदं तु ताक्ष्र्यकवचं पुरुषार्थप्रदं परम् ॥२९॥
स्वस्तिदं पुत्रदं सर्वरक्षाकरमनुत्तमम् ।
युद्धे वह्निभये चैव राज-चोर-समागमे ॥३०॥
महाभूतारिसंघट्टे निजपेत् कवचं शिवे ।
स्मरणादेव नश्यंति प्रचंडानलतूलवत् ॥३१॥
आशुताक्ष्र्याख्य-कवचं परमं पुण्यवर्धनम् ।
महागुह्यं महामंत्रं महामोहन-संज्ञकम् ॥३२॥
सर्वदेवमयं मंत्रं सर्वायुधकरं परम् ।
सर्वमृत्यु-प्रशमनं सर्वसौभाग्य-वर्धनम् ॥३३॥
पावनं परमायुष्यं पाप-पाश-प्रमोचनम् ।
मुनीश्वरैश्चयमिभिर्नाभिजाद्यमरैः परैः ॥३४॥
गुह्यकैश्च सुरश्रेष्ठैः स्तूयमानं महोज्ज्वलम् ।
त्रिकालं प्रजपेद् ध्यानपूर्वकं कवचं शिवे ॥३५॥
सहसा सर्वसिद्धिः स्याद्वाग्विभूतिर्विशेषतः ।
मुनीनामपि संपूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ॥३६॥
चतुर्दशसु लोकेषु संचरेन्मारवत्तु सः ।
अनेनैव तु कायेन भूतले बहुसंपदम् ॥३७॥
चिरं प्राप्य तु देहांते विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥३८॥

शिखि-ऋतु-वसु-कोणं चाष्टपत्रं भुवं च ।
ऋतु-शत-शशिचाग्निं भास्कर-व्योमकं च ॥
सकलमनिलयुक्तं तद्बहिः साध्यशक्तिं ।
धृत-मृत-सुत-वंध्या-पुत्रदं ताक्ष्र्यमेतत् ॥३९॥

इदं चक्रं महाख्यातं सर्ववक्त्रोक्तमोत्तमम् ।
महागुह्यं महाभीमं महासिद्धिकरं परम् ॥३६॥
शुक्रवासरमारभ्य पूज्य जप्त्वा दिनत्रयम् ।
अनेन कवचेनैव जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥४०॥
तज्जलेनाभिषिच्याथ होमं कृत्वा हि रुक्षकैः ।
निमज्जतां जले देवि बंधयेत्पुत्रकामिनाम् ॥४१॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे आशुगारुडकवचं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पंचदशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

रहस्यं श्रृणु वक्ष्यामि शिष्यबोध्यमनुत्तमम् ।
साधकानां हितार्थाय शोभने मंत्रसिद्धये ॥१॥
उदासीनं विटं दुष्टं लघ्वास्यं रोगिणं जडम् ।
लब्धमूर्खमसत्याढ्यमभक्तं भीममर्भकम् ॥२॥
मानहीनं वधूसक्तं विषयातुरमक्रमम् ।
अंगहीनमनाचारं शिष्यं नैव परिग्रहेत् ॥३॥
गृह्णीयाद्यदि हानिः स्यात्सिद्धेर्मंत्रस्य तत्वतः ।
महादेवो भवेत्क्रुद्धस्तस्याशुभकरं भवेत् ॥४॥

लब्धोपदेशं च कृतापराधं संबोधयित्वा बहुशः प्रयत्नात् ।
तत्रापि दुष्टं प्रसमीक्ष्य मंत्रं जपेत्ससाध्यं प्रतिलोमतो वाक् ॥५॥
सहस्रमेकं त्रिदिनं क्षपायां सदेशिकः क्रूरतरोऽधमः स्यात् ।
तमस्तु शिष्यस्य भवेद्दरिद्रं भ्रांतिश्च रोगो मरणं क्रमेण ॥६॥
तस्माद् गुरुः शिष्यमदर्पवित्तं सुभक्तमर्थाभिरतैर्निवृत्तम् ।
स्नातं समाहूय पवित्रहस्तं मंत्रेण संमंत्रित-तोयसिक्तम् ॥७॥
ध्यात्वा गुरुं दक्षिणकर्णरंध्रे कृत्वोपदेशं हृषिभावपूर्वम् ।
ततः प्रयोगांतरमप्यशेषं विधानपूर्वं स्वगुरुपदिष्टम् ।
लब्ध्वाथ शिष्यः सकलं क्रमेण यथानुरूपं कलयेत्स्वनाथम् ॥८॥

गुरुरेव परं ज्योति र्गुरुः सर्वोत्तरोत्तरः ।
गुरुरेव जगत्साक्षी तस्मादाराधयेद्गुरुम् ॥९॥
देवो गुरुर्गुरुर्देवो गुरुर्मंत्रो मनुर्गुरुः ।
देवो मनुर्मनुर्देवस्तस्मादाराधयेद् गुरुम् ॥१०॥
देवता-गुरु-मंत्राणामैक्यभावमनुस्मरन् ।
निर्भयः सुतले भूते जपं कुर्यात्समाहितः ॥११॥
गुर्वासने गुरोरग्रे गुरुयाने च वेश्मके ।
गुरोरुपरि भागे च निवसेन्न कदाचन ॥१२॥

ज्येष्ठान्पितामहान्बंधून् तेषांपत्नींश्च वंशजान् ।
न नमेदात्मनाथस्य संन्निधौ पितरौ नमेत् ॥१३॥

नैव वंद्यो भवेदेतैरेताभिर्गुरुसंनिधौ ।
पुत्रैः सुतादिभिर्वर्गैः स्निग्धैश्चापि कदाचन ॥१४॥

मास्तु मास्त्विति वक्तव्यंकृते यदि यथातथैः ।
नमस्कारस्तथा मंत्री नाथायेति निवेदयेत् ॥१५॥

यथा स्वयं नमस्कुर्याद् गुरुबुद्धया तु पूर्वजान् ।
सर्वानपि विशेषज्ञाननुध्यायंश्च देवताः ॥१६॥

जप-होमादि-पूजादि न पसार्यं गुरोर्बुधः ।
वाक्यस्य श्रवणादर्वागुत्तिष्ठेदपि दर्शनात् ॥१७॥

गुरुवाक्यांतरे वाक्यं न वदेदप्युपांशुसः ।
तुं-कारमपि हुङ्कारं न चैकवचनं तथा ॥१८॥

निंदत्वखिलसुहृज्जनोऽपि वंश्यो निंदंत्वनुजसुतप्रणामकाद्याः ।
निंदत्वनिशर्मनिंदिता च भार्या नूनं यच्छरणमहं भजामि नाथम् ॥१९॥

इति निश्चित्य चित्तःसन् गुरोराज्ञानुपालनम् ।
कुर्यादतंद्रितो मंत्री यद्विधिस्तद्दिवानिशम् ॥२०॥

गुरुणोक्तं यदाचारं तदाचारं समाचरेत् ।
विहिताविहितं वापि गुर्वाचारस्तु चाचरेत् ॥२१॥

निग्रहानुग्रहे चैव तथाकर्म-विभेदके ।
गुरुध्यानपरः कुर्याज्जपंसर्वार्थसिद्धये ॥२२॥

शरीरं जीवितं धान्यं गृहं क्षेत्रं गवादिकम् ।
अभिमानादिकं सर्वं गुर्वर्थमिति भावयेत् ॥२३॥

वाजिनां दानदानानि नाथायेति स्मरेद् बुधः ।
कुर्यादनभिमानज्ञो निर्विकारो निराकुलः ॥२४॥

उपास्यन्नात्मनाथेन स्वात्मानं योज्य कातरात् ।
ऐक्यं तु चिंतयेत्किंचित्स्वप्नेऽपि न कदाचन ॥२५॥

ब्रह्मणा विष्णुना चैव मयोपास्यो हि देशिकः ।
तं कृपां भो निधिनाथं बुद्धिश्रांतं विभावयेत् ॥२६॥

सुकरं दुष्करं वापि सुखं वा दुःखमेव वा ।
सर्वं नाथाज्ञया प्राप्तमिति मत्वा गुरुं यजेत् ॥२७॥
स्वकीयं परकीयं वा यदर्दशि मनोहरम् ।
तद्वस्तु देशिकायैव तत्क्षणादेव वेदयेत् ॥२८॥
अखिल-निगम-शास्त्र-प्राप्त-सूत्रोपशाखो-
पनिषद तुलवाक्यं ज्ञानसारानुसारम् ।
विदितविहितपात्रज्ञानमाचारमार्गम्
विदित-गुरु-कटाक्षोद्भूतसर्वात्मबोधम् ॥२९॥

इति श्रीग्राकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे शिष्याचारविधिर्नाम पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

श्रीदेव्युवाच ॥

देव देव महादेव गिरीश गिरिजापते ।
त्राहि मां दयया नाथ सच्चिदानंदशाश्वत ॥१॥
मंत्राणामपियत्सारं सर्वलोकैक-शिक्षणं ।
रक्षणं सर्वजंतूनां ब्रूहि मे तं विभो मनुम् ॥२॥

श्रीशिव उवाच ॥

रहस्यं श्रृणु देवेशि सर्वरक्षाकरं परम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण वैरिणां कुल-नाशनम् ॥३॥
भोगमोक्षप्रदं दिव्यं भुक्ति-मुक्तिप्रदायकम् ।
सर्व-पाप-प्रशमनं सर्वापस्मारनाशनम् ॥४॥
राज-चोरादि-मृत्यूनां नाशनं जयवर्धनम् ।
ज्वर रोगघ्नमापद्घ्नं मनुं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥५॥
शरभेश्वर मंत्रस्य ऋषिः कालाग्निरुद्रकः ।
छंदस्तु जगती, देवो भगवान् शरभेश्वरः ॥६॥
'खं' कारं बीजमित्युक्तं स्वाहा शक्तिरतः परम् ।
स्वेच्छा-प्रयोगसिध्यर्थे विनियोगस्तथांबिके ॥७॥
त्रि द्वि द्वादश नवकं सप्तकं तु नव क्रमात् ।
मंत्राक्षरैः करन्यासं मातृका सहितं मनुम् ॥८॥
केशादिके न्यसेन्मंत्री करवत्तु षडंगकम् ।
शिरो-ललाट-भ्रूमध्ये नेत्रयोः श्रोत्रयोर्नसोः ॥९॥
गंडयोरंसयोः कंठे बाह्वोः संधिषु च क्रमात् ।
स्तनयोः पार्श्वयोर्नाभौ लिंगे पायौ क्रमान्न्यसेत् ॥१०॥
पदोः संधिषु सर्वांगे मंत्र-वर्णान्प्रविन्यसेत् ।
ब्रह्मरंध्रे च केशांते भाले चाज्ञाप्रदेशके ॥११॥

विशुद्धे नाहते चैव मणिपूरे च लिंगके।
आधारेच त्रिभिर्द्वाभ्यां पंचभिः सप्तभिः पुनः ॥१२॥
नवभिर्मुनिभिर्बाणैर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां विभागतः।
पदानि विन्यसेत्पश्चान्मूलेन व्यापकं न्यसेत्।
न्यासद्वयं विधायैवं ध्यायेत्तं शरभेश्वरम् ॥१३॥
चंद्रादित्याग्निदृष्टिः कुलिश-वर-नखश्चंचुरत्युग्रजिह्वः
काली दुर्गा च पक्षौ हृदय जठरगौ भैरवो वाडवाग्निः।
ऊरुस्थौ व्याधि-मृत्यू शरभ-वर-खगश्चंडवातातिवेगः-
संहर्ता सर्वशत्रून्विजयतु शरभः सालुवः पक्षिराजः ॥१४॥
विमल-नभमहोद्यत्कृत्तिवासो वसानम्
द्रुहिण-सुरमुनीन्द्रैः स्तूयमानं गिरीशम्।
स्फटिकमणि जपास्रक् पुस्तकोद्यत्कराब्जम्
शरभमहमुपासे सालुवेशं खगेशम् ॥१५॥
तारं प्रथममुच्चार्य खें-खां-खं फडनंतरम्।
प्राणग्रहासि द्वितयं हुं-फट् तु तदनंतरम् ॥१६॥
सर्वेति पदमुक्त्वाऽथ शत्रुसंहारणाय च।
शरभ-सालुवायेति पक्षिराजाय इत्यपि ॥१७॥
हुं-फट् स्वाहेति मंत्रं तु द्विचत्वारिंशदक्षरम्[1]।
जपेद्वर्णसहस्राणि संख्यानि च महेश्वरि ॥१८॥
दशांशंतर्पणं होमं शतांशं द्विजभोजनम्।
सहस्रांशमथो देवि क्रमादेवं समाचरेत् ॥१९॥
होमद्रव्याण्यहं वक्ष्ये अधुना शृणु पार्वति।
स्वगृहे दक्षिणे भागे कल्पिते त्र्यस्रकुंडके ॥२०॥
स्वसूत्रोक्तविधानेन त्वाज्य भागांतमाचरेत्।
तत्र दूर्वां गुडूचीं च तिलांल्लाजांश्च पायसम् ॥२१॥
अपूपं च यवं चाज्यं क्रमात्सौम्यं समाचरेत्।
अपामार्गं च वह्निं च खादिरं च कटुत्रयम् ॥२२॥

---

१ मंत्रोद्धारो यथा :—ओं खें खां खं फट् प्राणग्रहासि प्राणग्रहासि हुं फट् सर्व-शत्रु-संहारणाय शरभ-सालुवाय पक्षिराजाय हुं फट् स्वाहा।

सैन्धवं सर्षपं चाज्यं क्रमात्क्रौर्यं हुनेत्सुधीः ।
होमेन विधिना देवि क्रूर-सौम्य-क्रियादिषु ॥२३॥
होमे जपेऽस्मिन्सद्भक्तिरवश्यं क्रियतां न चेत् ।
विपरीतं भवेत्तस्मादुदासीनं न कारयेत् ॥२४॥
स्वयं शिवमयं ध्यात्वा पावकं शरभेश्वरम् ।
होमांते तु जपेन्मंत्री त्रिवारं शरभाष्टकम् ॥२५॥
तेनाष्टकेन मंत्रेण भगवान्वरदो भवेत् ।
त्रिकोणं विलिखेत्पूर्वं तद्बाह्ये तु दलद्वयम् ॥२६॥
द्वादशारं तु तद्बाह्ये तद्बाह्ये तु नवास्रकम् ।
सप्तास्रं च चतुः पंच भूपुरं च क्रमाल्लिखेत् ॥२७॥
पावकादि-पृथिव्यंतं लिखेन्मंत्रं यथाक्रमम् ।
तद्बहिः कोणषट्केतु प्रागारभ्य मनुं लिखेत् ॥२८॥
खट् फट् जहि तथा छिन्धि भिन्धि हंधि लिखेत्क्रमात् ।
अकारादि क्षकारांतं वेष्टयोद्बिन्दु-संयुतम् ॥२९॥
महायंत्रमिदं पुण्यं सप्तावरणकं परम् ।
सर्व-सिद्धि-प्रदं श्रेष्ठं सर्वसंपत्प्रदायकम् ॥३०॥
सर्व-रोग-प्रशमनं सर्वसौभाग्यदायकम् ।
सर्व-बाधा-प्रशमनं सर्व-शत्रु-जयं शुभम् ॥३१॥
सर्व-भूतवशीकारं सर्वपापविमोचनम् ।
नानाज्वरहरं यंत्रं नाना क्षुद्र-निवारणम् ॥३२॥
य इदं धारयेद्भक्त्या नासाध्यं तस्य विद्यते ।
अनेनैव तु मंत्रेण साक्षाच्छिवमयो भवेत् ॥३३॥
षट् सप्तकोष्ठेषु विलिख्य शारभं रेखाग्रशूलं च तदग्रसाध्यम् ।
बाह्ये तु मायावृत-तारवेष्टितं जयादिकं साधितुमाशुचक्रम् ॥३४॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे शरभ-सालुव-पक्षिराज-कल्पं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

श्रृणु देवि महागुह्यं परं पुण्यविवर्धनम् ।
शरभेशाष्टकं मंत्रं वक्ष्यामि तव तत्त्वतः ॥१॥

ऋषि-न्यासादिकं यत्तत्सर्वं पूर्ववदाचरेत् ।
ध्यान-भेदं विशेषेण वक्ष्याम्यहमतः शिवे ॥२॥

ज्वलन कुटिलकेशं सूर्यचंद्राग्नि नेत्रम्
निशित-तर-नखाग्रोद्धूतहेमापि देहम् ।
शरभमथ मुनीन्द्रैः सेव्यमानं सितांगम्
प्रणतभयविनाशं भावयेत्पक्षिराजम् ॥३॥

देवादिदेवाय जगन्मयाय शिवाय नालीक-निभाननाय ।
शर्वाय भीमाय शराधिपाय नमोऽस्तु तुभ्यं शरभेश्वराय ॥४॥

हराय भीमाय हरिप्रियाय भवाय शांताय परात्पराय ।
मृडाय रुद्राय विलोचनाय नमोऽस्तु तुभ्यं शरभेश्वराय ॥५॥

शीतांशुचूडाय दिगंबराय सृष्टि-स्थिति-ध्वंसनकारणाय ।
जटाकलापाय जितेन्द्रियाय नमोऽस्तु तुभ्यं शरभेश्वराय ॥६॥

कलंक-कंठाय भवांतकाय कपाल-शूलात्तकरांबुजाय ।
भुजंगभूषाय पुरांतकाय नमोऽस्तु तुभ्यं शरभेश्वराय ॥७॥

शमादिषट्काय यमांतकाय यमादि-योगाष्टकसिद्धिदाय ।
उमाधिनाथाय पुरातनाय नमोऽस्तु तुभ्यं शरभेश्वराय ॥८॥

घृणादि-पाशाष्टक-वर्जिताय खिलीकृतास्मत्पथि पूर्वगाय ।
गुणादि-हीनाय गुणत्रयाय नमोऽस्तु तुभ्यं शरभेश्वराय ॥९॥

कालाय वेदामृत-कंदलाय कल्याण-कौतूहल-कारणाय ।
स्थूलाय सूक्ष्माय स्वरूपगाय नमोऽस्तु तुभ्यं शरभेश्वराय ॥१०॥

पंचाननायानिलभास्कराय पंचाशदर्णाद्यपराक्षराय ।
पंचाक्षरेशाय जगद्धिताय नमोऽस्तु तुभ्यं शरभेश्वराय ॥११॥

नीलकंठाय रुद्राय शिवाय शशिमौलिने ।
भवाय भवनाशाय पक्षिराजाय ते नमः ॥१२॥

परात्पराय घोराय शंभवे परमात्मने ।
शर्वाय निर्मलांगाय सालुवाय नमो नमः ॥१३॥

गंगाधराय सांबाय परमानंदतेजसे ।
सर्वेश्वराय शांताय शरभाय नमो नमः ॥१४॥

वरदाय वरांगाय वामदेवाय शूलिने ।
गिरिशाय गिरीशाय गिरिजापतये नमः ॥१५॥

कनक-जठरकोद्यद्रक्त-पानोन्मदेन
प्रथित-निखिल-पीडा नारसिंहेन जाता ॥
शरभ हर शिवेश त्राहि नः सर्वपापा-
दनिशमिह कृपाब्धे सालुवेश प्रभो त्वम् ॥१६॥

सर्वेश सर्वाधिकशांतमूर्ते कृतापराधानमरानथान्यान् ।
विनीयविश्व-विधायि नीते नमोऽस्तु तुभ्यं शरभेश्वराय ॥१७॥
दंष्ट्रानखोग्रः शरभः सपक्षश्चतुर्भुजश्चाष्टपदः सहेतिः ।
कोटीर-गंगेन्दुधरो नृसिंहक्षोभापहोस्मद्रिपुहास्तु शंभुः ॥१८॥
हुङ्कारी शरभेश्वरोष्टचरणः पक्षीचतुर्बाहुकः
पादाकृष्ट-नृसिंह-विग्रहधरः कालाग्नि-कोटि-द्युतिः ॥
विश्व-क्षोभहरः सहेतिरनिशं ब्रह्मेन्द्र मुख्यैः स्तुतो
गंगाचंद्रधरः पुरत्रयहरः सद्यो रिपुघ्नोऽस्तु नः ॥१९॥
मृगांग लांगूल सचंचु-पक्षो दंष्ट्राननांघ्रिश्च भुजासहस्रः ।
त्रिनेत्र गंगेन्दुधरः प्रभाढ्यः पायादपायाच्छरभेश्वरो नः ॥२०॥
नृसिंहमत्युग्रमतीवतेजः प्रकाशितं दानव-भंग-दक्षम् ।
प्रशांतिमंतं विदधाति यो मां सोऽस्मानपायाच्छरभेश्वरो नः ॥२१॥
योऽभूत्सहस्रांशु-शत-प्रकाशः स पक्षि-सिंहाकृतिरष्टपादः ।
नृसिंह-संक्षोभशमात्तरूपः प्रायादपयाच्छरभेश्वरो नः ॥२२॥
त्वां मन्युमंतं प्रवदंति वेदास्त्वां शांतिमंतं मुनयो गृणन्ति ।
दुष्टे नृसिंहजगदीश्वरे ते सर्वापराधं शरभ क्षमस्व ॥२३॥

कर-चरण कृतं वाक्-कर्मजं कायजं वा
श्रवण नयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
शिव शिव करुणाब्धे श्रीमहादेव शंभो ॥२४॥
रुद्रः शंकर ईश्वरः पशुपतिः स्थाणुः कपर्दी शिवो
वागीशो वृषभध्वजः स्मरहरो भक्तप्रियस्त्र्यंबकः ॥
भूतेशो जगदीश्वरश्च वृषभो मृत्युंजयः श्रीपति-
र्योऽस्मान् कालगलोऽवतात्पुरहरः शंभुः पिनाकी हरः ॥२५॥
यतो नृसिंहं हरसि हर इत्युच्यते बुधैः।
यतो बिभर्ति सकलं विभज्य तनुमष्टधा ॥२६॥
अतोऽस्मान्पाहि भगवन्प्रसीद च पुनः पुनः।
इति स्तुतो महादेवः प्रसन्नो भक्तवत्सलः ॥२७॥
सुरानाह्लादयामास वरदानैरभीप्सितैः।
प्रसन्नोऽस्मि स्तवेनाहमनेन विबुधेश्वराः ॥२८॥
मयि रुद्रे महादेवे भयत्वं भक्तिमूर्जितम्।
ममांशोऽयं नृसिंहोऽयं मयि भक्तमस्त्विह ॥२९॥
इमं स्तवं जपेद्यस्तु शरभेशाष्टकं नरः।
तस्य नश्यंति पापानि रिपवश्च सुरोत्तमाः ॥३०॥
नश्यंति सर्वरोगाणि क्षयरोगादिकानि च।
अशेष-ग्रह-भूतानि कृत्रिमाणि ज्वराणि च ॥३१॥
सर्प-चोराग्नि-शार्दूल गजपोत्रिमुखानि च।
अन्यानि च वनस्थानि नास्ति भीतिर्न संशयः ॥३२॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवि देवान् शरभ सालुवः।
ततस्ते स्व-स्वधामानि ययुराह्लादपूर्वकम् ॥३३॥
एतच्छरभकं स्तोत्रं मंत्रभूतं जपेन्नरः।
सर्वान्कामानवाप्नोति शिवलोकं च गच्छति ॥३४॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे शरभेशाष्टक-स्तोत्र-मंत्रं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

माला-मंत्रं प्रवक्ष्यामि रहस्यं शृणु शोभने ।
मंत्र-स्मरण-मात्रेण करस्थाः सर्वसिद्धयः ।।१।।

ओं नमः पक्षिराजाय निशि-कुलिश-वर-दंष्ट्रा-नखायानेक-कोटि-ब्रह्म-कपाल-मालालंकृताय सकल-कुल-महानागभूषणाय सर्वभूतनिवारणाय नृसिंह-गर्व-निर्वापण-कारणाय सकलरिपु-रंभाटवी-विमोटन-महानिलाय शरभ-सालुवाय ह्लां ह्लीं ह्लूं प्रवेशय २ रोग-ग्रहं बंधय २ बालग्रहं बंधय २ आवेशय २ भाषय २ मोहय २ कंपय २ बंधय २ भूतग्रहं बंधय रोगग्रहं बंधय यक्षग्रहं बंधय पातालग्रहं बंधय चातुर्थग्रहं बंधय भीमग्रहं बंधयापस्मार-ग्रहं बंधय उन्मत्तग्रहं बंधय राक्षसग्रहं बंधय ज्वालाग्रहं बंधय ज्वालामुखग्रहं बंधय तमोहारग्रहं बंधय भूचरग्रहं बंधय खेचरग्रहं बंधय बेतालग्रहं बंधय कूष्मांडग्रहं बंधय स्त्रीग्रहं बंधय पापग्रहं बंधय विक्रमग्रहं बंधय व्युत्क्रमग्रहं बंधय प्रेतग्रहं बंधय पिशाचग्रहं बंधयावेशग्रहं बंधय अनावेशग्रहं बंधय सर्वग्रहान्मर्दय सर्वग्रहान् त्रोटय त्रोटय प्रैं त्रैं हैं मारय शीघ्रं मारय मुंच २ दह २ पच २ नाशय २ सर्वदुष्टान्नाशय ह्लुं फट् स्वाहा ।

अरुणमरुणमालालंकृता संकराग्रै-
विधृत-परशु-शक्ति पुष्प-बाणेक्षु-चापम् ।
विविध-फणफणीन्द्रैर्भूषणैर्भूषितांगं
शरभमखिलनाथं नौम्यहं सालुवेशम् ।

आकर्षणादिप्रयोगाः ।।

मारं वर्त्तुलमध्यगे वसुदले मायां च लक्ष्मीं तथा
बाह्ये क्षोणि-पुटे लिखेत्प्रतिदिशं ब्लूं कारकं भूपुरे ।
मारं साध्य-समन्वितं रिपुजयं लोकाय मोहाकरं
नारीवश्यमहोविचित्रमचिरात्साम्राज्यलक्ष्मीप्रदम् ।

आलेख्यं वृत्तमध्ये मरुदनलगृहं द्वंद्वके शक्तिलक्ष्मीं
तद्बाह्ये षट्दलान्तः शरभ-मनुमथो सप्तकं सप्तकं च।
ओंकारं तस्य बाह्ये तदनु परिवृतं साध्यमाकर्षयेत्तां
त्रैलोक्यस्थामदृष्टां स्त्रियमपि विविधान्याशु-भूतानि चैतत् ॥२॥

त्रिनयनमथ शुकाभं श्याममालावतंसं,
मुसल-हल-रथांगं-मुष्टिदाभीतिहस्तं।
ग्रहण-रिपु-पिशाच-स्तंभ-विद्वेष-सिद्ध्यै,
प्रतिदिनमथ मंत्रं भावयेत्सालुवेशम् ॥३॥

मध्ये शक्ति सभूमिं बहिरपि पृथिवी कोणके शक्तिबीज
तद्बाह्ये कोणषट्के शरभमनुमथो बाह्यके भूमिकोणे।
भूमिं शक्ति च बाह्ये प्रणवमथ बहिस्साधकं स्तंभनाख्यम्
शत्रूणामास्य-दृष्टि-श्रुति-मुख-हनु-पत्प्राणिनां यंत्रमेतत् ॥४॥

खंकारं वृत्तमध्ये तदुपरि कमले लांतकं शक्तियुक्तम्
तद्बाह्ये शक्तिकोणे त्वज-वृषभ-मुखान्यालिखेत्कोणशूले।
आलेख्यं साध्यमेतत्सकलमपि ततस्तारमायाभिवीतम्
विद्वेषं यंत्रमेतत्त्रिभुवनमपि किं स्वल्पकानां नराणाम् ॥५॥

ज्वलदनलसमाभं सूर्य-चंद्राग्नि-नेत्रं
स्वकरकलित-शूलं-खड्ग-खेटं-कपालम्।
सकलरिपु-जनानां कर्ण-हृद्वाग्विभिन्नम्
स्मरतु शरभमेवं मारणोच्चाटनाय ॥६॥

वायुं सद्वृत्तमध्ये तदनु भृगुगृहे पावकं तस्य बाह्ये
षट्कोणे सालुवेशं त्रिशिखमथ बहिस्तस्य रेखाग्रसाध्यम्।
तद्बाह्ये शक्तिबीजं जय-विजय-युतं दीपिकावीतमंत्रम्
शत्रूणां भूत-रोग-ग्रह-गण-समरोच्चाटनं चैवमेतत् ॥७॥

बीजं स्वाहेशकोणे ऋतुगृह-विवरे वायु-बीजं ससाध्यम्
तद्बीजं साष्टकोणे शिखि-सहितमथो साध्यकं चाष्टपत्रे।
वह्न्यर्णं साध्य-पूर्णं भुवि भुवनमथो साध्ययुक्तं दशारे
व्योमाख्यं साध्य-युक्तं शरभमनुवृतं सर्वसंहारचक्रम् ॥८॥

सालुवेशाय विद्महे पक्षिराजाय
धीमहि । तन्नोरुद्रः प्रचोदयात् ॥६॥
एतदस्त्रं महामंत्रं जपेन्मंत्रं सदांबिके ।
तस्य सर्वभयं नास्ति स्वप्नेऽपि च कदाचन ॥१०॥
शरभास्त्रमिदं प्रोक्तममोघं जयवर्धनम् ।
तत्प्रभावं दृशा द्रष्टुं न सहंतेऽमरासुराः ॥११॥
कुतो नर-पिशाचाश्च क्षुद्र-भूताभिचारकाः ।
ग्रहग्रामवृताः क्लिष्टाः खेचराः पृथिवीचराः ॥१२॥
तस्मादेवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरशतं सुधीः ।
मंत्रपूतं समाक्रष्टुं कालेनापि न शक्यते ॥१३॥
बुद्धिमान् शरभं घोरमस्त्रराजं महामनुम् ।
न्यास-भावं-जपं कुर्यादन्वहं-पाप-मुक्तये ॥१४॥

विषवृक्षप्रयोगः ।

ऊर्ध्वं च तिर्यग्ग्रह-वेद-रेखां लिखेत्क्रमाद्यंत्रमनन्यमंत्रम् ।
बाह्येषु शूलं विलिखेत्ससाध्यं त्रैलोक्यसंहारकरं त्वमोघम् ॥१५॥
विषवृक्षे समालिख्य प्राणानावाह्य पूज्य तत् ।
अष्टोत्तराख्य-साहस्रं जपेदेकाग्रमानसः ॥१६॥
बलि-पूर्वं क्षपामध्ये दक्षिणस्यां खनेद्दिशि ।
ततः स्नात्वा जपेन्मंत्रमष्टोत्तर-सहस्रकम् ॥१७॥
रिपवो मरणं यांति संशयो नास्ति सुंदरि ।
भानुमण्डल-मध्यस्थं वैरिणं दशकेऽहनि ॥१८॥
राहु-संग्रहणादेव कृष्णवर्णमधोमुखम् ।
पुट-पाक-तनुं क्लांतं निर्वाणं प्राणसंकटम् ॥१६॥
चिरं ध्यात्वा जपेन्मंत्री अष्टोत्तर-सहस्रकम् ।
जपांतेऽर्घ्य-त्रयं कुर्यात्सूर्यमालोकयन्सुधीः ॥२०॥
भूयो जपेत्सहस्रं तु कृत्वा भस्मीकृतं रिपुम् ।
सरिपुस्तद्दिनादेव मरणं यात्यहेतुकम् ॥२१॥
द्विषंतमुद्दिश्य सहस्रवारं जप्त्वा घृतं तेन हुनेद् हुताशे ।
दिनावसानात्पुरतोरिपूणां शरीर-नाशाय सुसिद्धमंत्री ॥२२॥

बिन्दु-वह्नि-रसकोणमथाष्टद्व द्वकं सचतुर्दशपत्रम् ।
भूपुरं च विलिखेदथ मंत्रं मध्यमादि-बहि-नाम-सतारम् ॥२३॥

पायान्नो देवः शरभस्त्वपायात्
सहारि-रोगाद्विपिनोरगाभ्याम् ।
वैश्वानराखु-करि-ऋक्षकेभ्यः
परेभ्यो भूतेभ्यो रुषितात्कृतांतात् ॥२४॥

आथर्वणमिमं मंत्रममोघदुरितापहम् ।
सर्व-संरक्षणं श्रेष्ठं सर्व-सौभाग्य-दायकम् ॥२५॥
एतद्यंत्रं समालिख्य हेमपट्टादिके शुभे ।
विधिना धारयेद्योऽयं सर्वत्रविजयी भवेत् ॥२६॥

बिन्दौ बीजं ऋताब्जे यम-बटुक-महावीर-दुर्गा-विकार्णान्
वश्यादीनष्टपत्रे शतमख-मुखतो भैरवान्क्ष्माष्टकोणे ।
दिक्पालान्साध्य-पूर्वान्निल-रिपुकृता-शेषतंत्राभिचार-
क्षुद्रैस्तत्तत्प्रयोक्तं प्रमथननद्यं शारभं-घोरमेतत् ॥२७॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

निग्रह-प्रयोगः

श्रीशिव उवाच ।।

निग्रहं कर्म वक्ष्यामि मंत्राणां सर्वदा कलौ ।
उचितानुचितं वेत्तुमुपायं सिद्धि-हेतुकम् ।।१।।

क्रियांतरमुपालभ्य क्रियते योऽयमत्र तु ।
तं प्रतिक्रियया जेतुं कालं नैव विचारयेत् ।।२।।
अपवादं ब्रुवन् यं यः सभायां नैव हेतुना ।
तं नरं क्रियया हतुं दोषो नास्ति कदाचन ।।३।।

गुरु-मातृ-पितृ-द्रोही धर्मिणी मर्म-सूचकः ।
यस्तं मारयितुं देवि दोषो नास्ति कदाचन ।।४।।
धन-धान्य-गृह-क्षेत्र-धेनु-पुस्तक-तस्करम् ।
कुरुते यस्तमाहतुं दोषो नास्ति कदाचन ।।५।।
अभाषमाणं पुरुषं हठात्कारेण ताडयेत् ।
यस्तमाहतुमीशानि दोषो नास्ति कचाचन ।।६।।
भाषमाणं च तन्नारीं ब्रूयात्कोपादवाच्यकम् ।
तं नरं देवि संहतुं दोषो नास्ति कदाचन ।।७।।
वनितां वृन्द-मध्यस्थां मान-भंगं करोति यः ।
गिरिजे तं नरं हतुं दोषो नास्ति कदाचन ।।८।।

व्यभिचारीमपि वधूं बलात्कारं करोति यः ।
तं मारयितुं देवि दोषो नास्ति कदाचन ।।९।।
दंपती-मेलनं-कालं प्रकाशं यः करोति च ।
नराधमं तमाहतुं दोषो नास्ति कदाचन ।।१०।।
स्वकीयं परकीयं च दोषं यत्नेन गोपयेत् ।
नरोत्तमं तमाहतुं मनसापि न चिंतयेत् ।।११।।

भूषणं दूषणं वापि ब्रुवंती या तु तां वधूम् ।
यद्वा तद्वापि संहर्तुं मनसापि न चिंतयेत् ।।१२।।

गुरुपुत्रं गुरोर्वन्द्यं दीक्षितं सत्यवादिनम् ।
योगिनं व्रतमध्यस्थं मनसापि न चिंतयेत् ।।१३।।

दुःखातिरेकाच्च भयाच्चकोपाद्राजाज्ञया भाषणमावभाष्य ।
पश्चात्क्षमध्वं विवशान्मयोक्तमिति ब्रुवंतं पुरुषं न कार्य्यम् ।।१४।।

एतद्रहस्यं सुबुधः समीक्ष्य क्रिया-विधानं स करोति लोके ।
तदेव नूनं शरभेश्वराज्ञा नान्यत्र सर्वं विपरीतमेति ।।१५।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे एकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

विंशोऽध्यायः

अथ होमभेद-प्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

वदाम्यशेषं शृणु होम-भेदं क्रियाविधानं गिरिराज कल्पे।
नूनं महाभूत-पिशाच-रोग-ज्वराहि-दुष्टौघवियोगशांत्यै ॥१॥
मधुं मधूकं मधुकं दशाहं सहस्रमैकैकदिनं वरेण्ये।
होमं प्रकुर्यात्प्रयतो मनीषी समस्तदुर्वार-भयाद्विमुक्त्यै ॥२॥
लवंगमेकं मधुकं च कोष्ठं तिलं घृतं चंपककुड्मलं च।
दिनं सहस्रं प्रयतो दशाहमुन्माद-ताप-ज्वर-शूलशांत्यै ॥३॥
श्रीभार्गवीभिर्नवरात्रहोमैः प्रयांति शांति कुपिताश्च देवाः।
आयुष्करं मृत्युहरं समस्त-दोषापहं-श्रीकरमापदघ्नम् ॥४॥
पलाश-शाखाभिरभीष्टसिध्यै रक्षाय कुर्यादथ खादिरोत्थैः।
तत्तद्दिनर्क्षस्य समिद्वरैस्तु ज्वरादि-शांत्यै जुहुयात्त्रिरात्रम् ॥५॥
उदुम्बराश्वत्थ-समित्सहस्रैः कुर्याच्चतुर्थज्वर-होम-शांत्यै।
प्रतापसोत्थैः कुसुमैर्घृताक्तैश्चिरायुरारोग्य-बलाय कुर्यात् ॥६॥
मेधासमिद्भिस्त्वथ बुद्धिकामस्त्वरोगकामो नगराजजाभिः।
उदुंबरोत्थैर्बहुमित्र-कामस्त्वनंतरायाय शमीसमिद्भिः ॥७॥
पुत्राय कुर्यादथ दीपिकाभिः प्रसाद-सिध्यै करवीरपुष्पैः।
वश्याय कुर्यान्मधु-सिक्त-पद्मै राकर्षणाय स्मर-पंच-बाणैः॥८॥
विद्वेषणायाथ विषांघ्रिपोत्थैः स्तंभक्रियाया कपिजाप्रसूनैः।
उच्चाटनाय स्नुहि-सालपत्रैः संहारणायार्क-कटु-स्नुहीभिः ॥९॥
धत्तूर-शाखा-फल-पत्र-पुष्पैरुन्मादनायास्यशिफां विमुक्त्यैः।
वाक्सिद्धयेऽर्कं मधुकं प्रकुर्याद्धनाय शांतांगजशाखिपुष्पैः ॥१०॥
यद्धान्यहोमं हुतमस्य शीघ्रं तद्धान्य-राशेस्तनुतेऽभिवृद्धिम्।
अन्नेन चान्नं पयसा घृतौघं घृतेन भाग्यं मधुना धनं स्यात् ॥११॥
तैलेन सारं दधिनाथपुष्टिं चूतप्रवालैरपि रूपसिद्धिम्।
दाडिमीकुसुमजालकैर्नरो मन्मथत्वमुपयाति सुभ्रुवाम् ॥१२॥

एवमेवमयुतं रवौ दिने कारयेदखिल-कार्य-सिद्धये ।
देह्यभीष्टमिति याचितुं पुरैर्वा मुदं परिदधाति सायकैः ॥१३॥
दानवारिभिरहर्निशं यथा पारिजात इव मानवैः शिवः ।
त्रिकटु-सर्षप-हिंग्वजमोदकान्युरग-मौलि-ससैंधव-जीरकम् ।
सुघृत-पारद-टंकण-संयुतं शरभ होममरिक्षयायेव तत् ॥१४॥

शिखिपुरयुगमध्ये शक्तिबीजं च कोणे
प्रतिगृहमथ मंत्रं सप्तवर्णं लिखित्वा ॥
इषुमनुमथ बाह्ये षोडशारे त्रिवर्णं
महि-युग-युगमेतत्सालुवेशस्य यंत्रम् ॥१५॥

एतत्तु संपूज्य तदग्रभूमौ रिपूमलातेन लिखेद्यमस्य ।
मध्ये तु रूपं विलिखेद्यथाङ्गं तदंग-देशे सुमनः पुमांसम् ॥१६॥
मुखाक्षि-नासापुट-कर्ण-जिह्वा-गलांस-वक्षोदर-नाभि-लिंगम् ।
प्रत्यंग-साध्यं विलिखेत्समानं वह्नि ससाधाय हुनेत्सहस्रम् ॥१७॥
तत्साल-शाखाभिरथाष्ट-चूर्ण-युक्ताज्य-सिक्ताभिरनन्यचेताः ।
दिनत्रयादेव पुरोऽयमाख्यमगाद्रिपुर्धाम इव स्वगेहान् ॥१८॥
साध्य-द्रुकृत्ति परिकल्प्य तस्मिन् वायुं समापाद्य मनोः शतेन ।
श्वेतार्क-दुग्धेन ततोऽष्ट चूर्णं पिष्ट्वापि संलिप्य वितप्य वह्नौ ॥१९॥
लेप्यप्रताप्याथ पुनः प्रलेप्य प्रताप्य लिप्त्वा निखनेत् श्मशाने ।
दत्वा बलिं मंत्रमथ त्रिवारं जप्त्वा ततः स्नानमथाचरित्वा ॥२०॥
जपेत्सहस्रं यम-दिङ् मुखः-सन्मंत्रावसाने रिपु-साध्य-मुक्त्वा ।
वर्मादि शेषं तु ततः प्रयोज्य सद्योऽथ रात्रं शरभेश्वराख्यम् ॥२१॥
शरीरपिंडं तरसा विहाय सद्यो रिपुः कालपुरं प्रयाति ।
संहृत्य तत्साध्य-विहङ्गमांगं सूत्रेण कोदडंमिवाथ बद्ध्वा ॥२३॥
साध्यं गजाद्दक्षपदांगमृद्भिः कृत्वाथ कृत्तिं परिकल्प्य वायुम् ।
मांजिष्टमालिप्य मुखे च कर्णे त्वलातचूर्णं ह्यवशेषदेहे ॥२३॥
तदस्थिशेषेण शरेण कर्णे मंत्रं समुच्चार्य विचार्य्य चैवम् ।
शतप्रयोगात्सरिपुः स्वदेहात्प्रयाति याम्यं पुरमाशु घोरम् ॥२४॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

सजल-जलद-नीलं चाष्टबाहुं त्रिनेत्रम् ।
विविध-चटुलपक्षं दीप्यमानोर्ध्वकेशम् ॥
मनसि निहित-कोप-स्पंदमानाधरोष्ठं ।
सकलरिपु-विनाशं सालुवेशं नमामि ॥१॥

कृत्वा साध्य-चतुष्पदो स्थितिपथेषूत्कृष्णिकां मृत्तिकाम् ।
तस्मात्क्वाणक-वस्त्र-भूष-सुमनालेपांजनैश्चंदनैः ॥
आभूष्यास्य-करेण-मूर्ध्नि-निकटे स्पृष्ट्वा शतं मारुतम् ।
जप्त्वा मंत्र-सहस्त्रकं च विधिवत् खड्गेन तां पीडयेत् ॥२॥

यस्मिन्पीडितमत्र शत्रुतनुषु क्षिप्रं तु तस्मिन्स्थले ।
पीडां कुर्वति नूनमग्नितपनादाविर्ज्वरांगो भवेत् ॥
अर्कक्षीरकटुत्रयेण-सहितां वह्नौ प्रदग्ध्वा तदा ।
शत्रुः कालपुरं प्रयाति तरसा श्रीसालुवाज्ञावशात् ॥३॥

कृत्तिं कृत्वाथ साध्यक्षितिमुचिततरोः क्षीरमालिप्य तस्याम् ।
वायुं प्रस्थाप्य जप्त्वा मनुमथ शतकं क्षारतोयेन लाक्ते ॥
कुर्यान्निक्षिप्य मंत्र-प्रवचन-करणैः शत्रुलोकास्तदानीम् ।
प्रायः संतानपूर्वं जनवरसहिताः सम्यगार्ताः भवंति ॥४॥

साध्यं मृक्षीरसिक्त-प्रतिकृतिमथ तत् शालिपिष्टेन कृत्वा ।
संस्थाप्य प्राणवायुं शरभ-मनु-शतं संजपित्वाथ मंत्री ॥
तस्यां तस्योदरे तु प्रथित-कटुपरास्यस्य चत्वारि विश्य ।
त्वस्याग्रक्षारमध्ये पथि भुविनिखने द्वैरिणां मारणाय ॥५॥

साध्यत्व-कृत्तिकायां पवनमभिनिवेश्यावृताशीति मंत्रम् ।
तस्यां वै पीलिकानां द्वयधिकंदशशतं संनिवेश्यांगसंधौ ॥
कापित्थैः कंटकेन्द्रैः श्रुति-नयन-शिरोभाल-नासाग्र-जिह्वा ।
कर्णादिष्वंगकेषु प्रतिभिदि-खननं शत्रुनाशाय कुर्यात् ॥६॥

साध्यामृत्वं मनोज्ञां द्विविधकृतियुतां तंतुनैकीकृतांताम्
वायुं संस्थाप्य तस्याः शिरसि तनयकं जंतुमावेशयित्वा ॥
नासांगंडे च कर्णे भ्रमरयुगमधो जाठरे त्वाखुसूनुम्
जप्त्वा मंत्रं तु मंत्री द्विशतमथ खनेद्वैरिनाशाय कोष्ठे ॥७॥

ताल-क्ष्मां-रुट् समूलां महिपरिवृतं सालराजस्य मूलम्
हृत्वा ते गर्भ-नारी-मलयुग-सहितं नारिकेलस्य मध्ये ॥
क्षिप्त्वा मंत्री जपित्वा शतमनुमथ तं मार्गदेशे खनित्वा
पश्चात्तत्संख्यमेवं प्रजपतु स मनुं योषितां वेदनाय ॥८॥

गृह्णीयात्तं प्रसूत्यै पुनरपि नयनां मारणाय प्रताड्यद्
गर्भस्थं मृत्युमेतच्छिथिलितमकरोत्स्रावितुं धारयेत्तम् ॥
एवं मंत्री क्रियाणां कृतिमकलयत स्वात्मताढ्य-प्रभावै-
र्निःशंकं क्ष्मासुदेशे शरभ-शिव-वशात्सर्वदा सिद्धिमेति ॥९॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

अथाभिषेक-विधिः

श्रीदेव्युवाच ।।

शंभो शिव जगन्नाथ सर्वजीव दयापर ।
अभिषेक-विधिं श्रोतुमिच्छाम्यहं वद प्रभो ।।१।।

श्रीशिव उवाच ।।

अभिषेक-विधिं वक्ष्येऽलंकृते मंडपे शुभे ।
गोमयेनाथ संलिप्य पृथिवीं चतुरस्रकाम् ।।२।।
गंधाक्षतैस्तु संकीर्य तंदुलेनासितेन तु ।
नवकोष्ठं समालिख्यालंकृत्य कुसुमादिभिः ।।३।।
मध्यकोष्ठे लिखेद्वृत्तं तन्मध्ये चतुरस्रकम् ।
नवकुंभं च तन्मध्ये प्रतिष्ठाप्य नवांशुकम् ।।४।।
तंतुना परिवेष्टयाथ धूपदीपं प्रदर्शयेत् ।
गंध-माल्यैरलंकृत्य पूरयेद् घटमंभसा ।।५।।
पद्मरागं प्रजा-कामस्त्वायुष्कामस्य मौक्तिकम् ।
रजतं वृद्धिकामस्तु तेजस्कामस्तु विद्रुमम् ।।६।।
वैडूर्यं वीर्यकामस्तु सर्वकामस्त्वशेषकम् ।
हिरण्यं वा तु तत्स्थाने घटमध्ये विनिःक्षिपेत् ।।७।।
तस्योपरि च दूर्वाम्र-पल्लवानि प्रकल्पयेत् ।
नारीकेलं ततः पश्चात्सालंकारं प्रकल्पयेत् ।।८।।
देवता-वाहनं तत्र प्रकुर्यादासनादिकम् ।
विश्वामित्रेण तत्कुंभं दूर्वया संस्पृशेत्ततः ।।९।।
अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेन्मंत्रं समाहितः ।
कृतस्नानं समाकृष्ट-भूतांगंत्वार्द्रवाससम् ।।१०।।
प्राङ्मुखं देवदत्तं तं कुंभ-पाणिरुदङ्मुखः ।
अभिषेकं त्र्यहं कुर्यात्क्षुद्र-रोग-विमुक्तये ।।११।।

पंचाहं वात-रोगस्य वात-शूलस्य पक्षकम् ।
मासं तु सर्वरोगस्य शिरोरोगस्य मंडलम् ॥१२॥
अनुभोगपिशाचस्य त्रिमासं चाभिषेचयेत् ।
तथैव क्षय-रोगस्य त्वपस्मारस्य वत्सरम् ॥१३॥
अभिषेकस्य तत्सर्वं शमनं याति सुन्दरि ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अभिषेकं समाचरेत् ॥१४॥
अथ वंध्याचिकित्साख्यमभिषेकं वदाम्यहम् ।
वीर्यवन्तीं वधूं शुद्धां ऋतुस्नानदिनात् ततः ॥१५॥
दशाहं जन्म-वंध्याख्यां द्व्यधिकं काकवंध्यकाम् ।
मृत-वंध्यां षोडशाहं तदंते तु विशेषतः ॥१६॥
ऋतं चेति त्यृचा कुंभं शत-वाराभि-मंत्रितम् ।
अभिषिच्य ततः पश्चाद्रक्षां कुर्वीत बुद्धिमान् ॥१७॥
सीसं षण्मास-वीर्यं तु ताम्रं वत्सर-वीर्यकम् ।
त्रिलोहं च वत्सरार्धं तु राजतं च त्रिवर्षकम् ॥१८॥
भूर्जपत्रं चतुर्वर्षं पंचाब्दं पंचलोहकम् ।
दशवर्षं तु काष्णीयं कांचनं यावदायुषम् ॥१६॥
तस्माद्धिरण्मये पत्रे साध्ययंत्रं विलिख्य तु ।
तद्यंत्रमक्षरं यद्यत्तत्तदावाह्य देवतम् ॥२०॥
प्रत्येकं शतवारं तु प्राणमंत्रं जपेद् बुधः ।
षोडशाद्युपचारं तु कुर्यात्सर्वं यथाक्रमम् ॥२१॥
मूलेन च सहस्रं तु प्रत्यहं प्रजपेच्छिवे ।
अभिषेकावसाने तु प्रमज्जन्तीं वधूं जले ॥२२॥
बद्ध्वा तु पत्रिकां कंठे पश्चादुत्थापयेच्छिवे ।
अयसा शुद्ध-सिक्ताख्या शुद्धांगा शुद्ध-वाससी ॥२३॥
ततस्तदादि षण्मासे निम्नगां नातिलंघयेत् ।
भृगुवारे तु संस्नानं तदा यंत्रस्य धूपनम् ॥२४॥
ब्राह्मणान्भोजयेद्देवि ऋतुस्नानदिने दिने ।
तदा घृत-पयोक्तान्नमृतुस्नाता विपेष्य च ।
भित्वा तदष्टकं पिंडमुपलेपित-भूतले ॥२५॥

निक्षिप्य च करं[1] स्नात्वा तोयेन परिषेच्य च ॥२६॥
आकाश-भूतल-स्वर्गचारिणो देवताः स्वयम् ।
इहागत्य तदाकालं वदंत्याशु सितां सुतम् ॥२७॥
दशवारमिदं जप्त्वा स्फोटयेत्तु करं पुनः ।
ततः पश्चात्प्रदेशस्थो जपेन्मंत्रं पुनः पुनः ॥२८॥
प्रथमं काक आगत्य भक्षितं यत्तु पिंडकम् ।
तद्दक्षिणादियुग्मश्चेत्पुत्री भवति निश्चयः ॥२९॥
पुत्रं तु युग्मकं नूनं पिंडे चेत् स्याद्विशेषतः ।
प्रथमं प्रथमे मासि द्वितीयादि तथा क्रमात् ॥३०॥
तत्तल्लक्षणकाले तु सा नारी गर्भिणी भवेत् ।
एतद्विधानकं गुह्यं सर्वशास्त्रोत्तमोत्तमम् ॥३१॥
इत्थं ज्ञात्वा कलौ मंत्री सर्वकार्याणि साधयेत् ।
तुलायां वृषभे सिंहे मीने कुंभे च वृश्चिके ॥३२॥
रक्षाभिषेकौ कर्तव्यौ नान्ये मासि शुभावहौ ॥३३॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे रक्षाभिषेकविधिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

---

१ (खरं खात्वा इति मूल पाठे)

त्रयोविंशोऽध्यायः

बलिकर्म-प्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

रहस्यं शृणु देवि त्वं सर्वलोकार्थसाधकम् ।
सर्वजीवात्म-संताप-मोचनं प्राणवर्धनम् ॥१॥
मंत्रे यंत्रे तथा तंत्रे प्रयोगे कृत्रिमे यदा ।
संकटे पूर्ण-संपाते त्वभिचार-महाज्वरे ॥२॥
नाना-निर्याण-संजाते ग्राम-गोग्रहणे रणे ।
प्रवर्तते महाक्रूरे रोगे पापसमाकुले ॥३॥
तदा तच्छमनार्थं तु बलिकर्म वदाम्यहम् ।
नवपात्रं समादाय मृण्मयं विधि-पूरितम् ॥४॥
कर्पासमूलबीजं च सैंधवं निम्ब-पल्लवम् ।
स्थापयित्वाऽनले देवि परिणीय त्रिवारकम् ॥५॥
ततस्तत्पश्चिमे भागे नयेत्तोरणमंदिरे ।
एतदेव त्र्यहं कुर्यात्केवलं ज्वरशांतये ॥६॥
प्रोक्तोऽयं बलि-कर्माख्यः सायंकाले समाचरेत् ।
शिखा-कर्णयुगे दोः पत्संधौ संधौ स्तनद्वये ॥७॥
नारिकेलं प्रणीयाऽथ छादयेन्नव-वाससा ।
प्रदर्श्य च महाधूपं माला मंत्रं स्मरेद् बुधः ॥८॥
नारिकेरं शिराग्रस्तं गृहीत्वा परिणीयतम् ।
दत्वा बलिं ततो वस्त्रं सकर्णं स विपाटयेत् ॥९॥
एवं क्रमेण पादांतं कृत्वा कुंभाभिषेचनम् ।
तद्बलिं नैऋते भागे निनयेज्जल-वर्जिते ॥१०॥
कर्मारकमिदं प्रोक्तं नानाक्षुद्र-विमुक्तये ।
नाना-रोग-निवृत्यै स्यादेकाह-ज्वर-शांतये ॥११॥
प्रस्थद्वयं समुद्धृत्य त्रिधान्नं संविभज्य तत् ।
कृत्वा तु मध्यमं पिंडं पुत्तलीकां यथाविधिः ॥१२॥

नानावर्णैरलंकृत्य नानावर्ण-प्रसूनकैः ।
आद्यंत पिंडं तद्बाह्ये न्यसेत्साध्यं समुच्चरन् ॥१३॥
केशाक्षिश्रुति-नासास्य कर्ण-हृन्नाभि-गुह्यके ।
पाणि-पत्संधि-भेदैश्च कुर्याद्दीपं पृथक् पृथक् ॥१४॥
साध्यप्राणमनु मंत्री जपांते नाभि नीयताम् ।
नालिकेर-र्बाल दत्वा पश्चादीशान-दिङ् नयेत् ॥१५॥
प्रोक्तो घोरकृतिर्देवि सर्व-पैशाच-शांतये ।
ताम्रपात्रेऽम्भसा पूर्णे गंध-पुष्पाद्यालंकृते ॥१६॥
देवदत्त पुरो भागे तस्य छायाऽभिवेशिते ।
मालामंत्रेण संमृश्य शालिपिष्टेन छादयेत् ॥१७॥
नवदीपं तदग्रे तु कुर्याद्वि तं विचक्षणः ।
अभितो नीयते नैवं दिशि वायव्यके नयेत् ॥१८॥
कक्षपाख्यमिदं प्रोक्तं नानाज्वर-विमुक्तये ।
आदाय चोदकं पात्रं पूर्णोदक-बहिर्युतम् ॥१९॥
तिलाक्षत-समंगानां रजोभिस्तंडुलोन्मुखैः ।
अलंकृत्य चतुः पार्श्वं पंचदीपं प्रकल्पयेत् ॥२०॥
धूपं संवेशयित्वाथ लाजेनाभ्यर्च्य पेषयेत् ।
बलिं दत्वोत्तरे भागे नयेत्पैशाचशांतये ॥२१॥
एवं त्र्यहं समाकुर्याद्भीषणाख्यं विचक्षणम् ॥२२॥
भांडं शिरोविनाशाय पादलोलूख-पूर्वकैः ।
क्रमाल्लिप्योरुलूखाग्रे दीपमादाय मध्यतः ॥२३॥
अष्टपद्माकृतिं कृत्वा त्वलंकृत्वा त्रिवर्णकैः ।
दलांतरं तु लाजेन दीपं पात्रे च मध्यगे ॥२४॥
दलाद्बहिस्तिलैः पुष्पैरलंकृत्यविचक्षणः ।
दल-केशं तु निर्वाणमुल्मुकालेपनाननम् ॥२५॥
चूर्णं बिंदुं समायुक्तं तेन शेषावृतांगकम् ।
साधकं निर्भयं खड्ग-पाणिनं कालरात्रिके ॥२६॥
वरयेत्सोऽपि तद्गृह्य देवदत्तं प्रदक्षिणम् ।
त्रिधा कृत्वा तमालोक्य खड्गं कर्णे निधाय च ॥२७॥

आगच्छेद्दिवं गच्छेदट्टहासं समन्वितम् ।
सेवकैर्वाद्यघोषैश्च श्मशाने बलिपूर्वकम् ॥२८॥
श्मशाने रौद्रकं मंत्रं जपित्वा तत्त्रिवारकम् ।
निधाय च ततः स्नात्वा स गच्छेद् गेहकं विना ॥२६॥
अभिनीय कपालाख्यं बलिमेवं समाचरेत् ।
महारोग-ज्वर-क्षुद्र-भूत-कृत्रिमशांतये ॥३०॥
........................ग्रह ग्राहोवधूम्रकम् ।
इतराण्यपि भूतानि यावंति बलि-दर्शनात् ॥३१॥

ओं नमो भगवते श्मशानरुद्राय नररुधिर मांसभक्षणाय कपालमाला-धराय प्रेतवाहनाय खड्गकपालहस्ताय सर्वभूताधिपतये क्लां दां ह्रां एह्येहि आगच्छागच्छ समस्त-भूतरोगान् नाशय २ सर्वरिपून् नाशय २ क्लें दें ह्लें श्रीं इदं भुंक्ष्व २ क्लूं ब्लूं ह्लूं सर्वसौभाग्यं देहि देहि स्वाहा ।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे बलिकर्मविधानं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

आचारविधिप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

सदाचारविधिं वक्ष्ये साधकानां वरानने ।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय प्रणम्य गुरुमात्मनः ॥१॥

शरभेशाष्टकं मंत्रं त्रिवारं मनसा जपेत् ।
नमस्कृत्वा ततो मंत्री गणेशं शरभेश्वरम् ॥२॥

ततस्तीर्थं समाश्रित्य मुखनासाक्षिशोधनम् ।
कृत्वा मंत्री ततः स्नात्वा मूलमंत्रं त्रिधा जपेत् ॥३॥

त्रिधाऽऽचम्य त्रिधा प्रोक्ष्य त्रिरर्घ्यं तर्पणत्रयम् ।
त्रिधा संमंत्र्य तद्भस्म ललाटादिषु विन्यसेत् ॥४॥

किरीट-कुंडलैर्युक्तं सर्वाभरण-भूषितम् ।
अथवा भस्मनाऽऽभूष्य सांध्यकर्म समाचरेत् ॥५॥

सूर्य-मंडल-मध्यस्थ ज्योतिर्मय-मुखांबुजम् ।
चारु-कुंडल-संयुक्तं चन्द्रमालावतंसिनम् ॥६॥

दशबाहुं महाकायं सुवर्ण-सदृश-प्रभम् ।
चक्र-शूल-गदा-खड्ग-बाण-कार्मुक-खेटकम् ॥७॥

घंटा-कपाल-शंखैश्च भासमान-करांबुजम् ।
दिव्याभरण-संयुक्तं दिव्यवासं त्रिलोचनम् ॥८॥

चिरं ध्यात्वा जपेन्मंत्रमष्टोत्तरशतं शिवे ।
द्विचत्वारिंशदथवा जपित्वा वाग्यतः सुधीः ॥९॥

पुरश्चरणविधिप्रयोगः ॥

शिलोच्चये नदी-तीरे वने देवालयेऽपि वा ।
विजने मंदिरे रम्ये प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽथवा ॥१०॥

सुखासने समासीनः प्राणानायम्य तत्त्वतः ।
दुष्टोच्चाटं तु दिग्बंधं भूतशुद्धिं दृढासनः ॥११॥

प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋषि-न्यासादि-पूर्वकम् ।
सहस्रद्वय-संयुक्तं चत्वारिंशज्जपं चरेत् ॥१२॥
तर्पणैरुक्तहोमैश्च सिद्धमंत्री तथा भवेत् ।
तर्पणस्य च होमस्य द्विजानां भोजनस्य च ॥१३॥
तद्दशांश-क्रमेणैव कुर्यादिकैकशः क्रमात् ।
तत्स्थानेष्वथवा मंत्री मनोः संख्यं पृथग् जपेत् ॥१४॥
विना तर्पण-होमैश्च विना ब्राह्मण-भोजनैः ।
पुरश्चर्यां च यः कुर्यात्तस्य मंत्रो न सिध्यति ॥१५॥
जपं च तर्पणं होमं ब्राह्मणाराधनं तथा ।
चतुरंगमिति ख्यातं तस्माद्यत्नेन कारयेत् ॥१६॥
स्वात्मनाभिमुखं मंत्रं सुश्रुवे विधिवद्यदा ।
यत्तथा सिद्धि-पर्यंतं गर्भस्थो मंत्र-दैवतः ॥१७॥
जपे पूर्णे ततः स्वांते जायते मंत्र-देवता ।
तज्जने दर्शनाद्यत्तत्प्रथमांगं वरानने ॥१८॥
संजात-तर्पणात्पूर्णमंत्रदेवो न सिध्यति ।
वरेण्यं तर्पणं तस्माद्यत्नेनापि समाचरेत् ॥१९॥
वर्धमानो मंत्र-देवस्तर्पणारंभणादितः ।
समाप्तौ विद्धि तं यत्तद्द्वितीयांगमुदीरितम् ॥२०॥
विधिनोक्तेन होमेन मनोर्देवः प्रभुर्भवेत् ।
सर्वाधिकं प्रभुत्वं यत्तत्तृतीयमुदाहृतम् ॥२१॥
ब्राह्मणाराधनाद्देवोदयावान् वरदो भवेत् ।
तेन लब्धं प्रसादं यत्तच्चतुर्थमुदाहृतम् ॥२२॥
मंत्रिणां मंत्रसिध्यर्थं चतुरंगमुदीरितम् ।
चतुरंगपुरश्चर्यां कारयेन्मंत्रसिद्धये ॥२३॥
एवं प्रयोग-सिध्यर्थं पुरश्चर्याद्वयं भवेत् ।
ततः स्वेच्छा-प्रयोगांस्तु भूत-वैरिषु कारयेत् ॥२४॥
पुरश्चर्यात्रयेणैव सर्वभूतवशी भवेत् ।
विशेषादनभिज्ञोऽपि बुध्याबुध्य समो भवेत् ॥२५॥

चतुष्टयेन देवेशि सारस्वतमवाप्नुयात् ।
अष्टादशसु भाषासु स्वर्नदीव विजृंभते ॥२६॥
जपेल्लक्षत्रयं नूनं क्षुभ्यंत्यखिल-योषितः ।
देव-गंधर्व-भूतादि-वनिताकर्षणं भवेत् ॥२७॥
चतुष्टयेन लक्षेण बार्हस्पत्यं भवेन्नृणाम् ।
विशेषाद् द्रुम-सर्पादि स्मर-रूपत्वमंबिके ॥२८॥
षट्लक्षेण जपेनैव विषहंता गदं किमु ।
रिपूणां कालरूपत्वमंबिके संभविष्यति ॥२९॥
मंत्रिणां सप्तलक्षेण वरुणत्वं भविष्यति ।
स्वेच्छा-हानि महावृष्टिर्द्रुतं वर्षयितुं किमु ॥३०॥
लक्षाष्टकेन समंत्री श्रीदो भवति पार्वति ।
तथा नवनिधीनां च पतित्वं किं पुनः स्वयम् ॥३१॥
नवलक्ष-जपादेव कंपंत्यखिल-देवताः ।
चतुर्दशसु लोकेषु तस्यासाध्यं न विद्यते ॥३२॥
दशलक्षात् सुरेशत्वं मंत्रिणां संभविष्यति ।
निग्रहानुग्रहं सर्वं स्मरणादेव सिध्यति ॥३३॥
द्वादशाख्येन लक्षेण साक्षाद् ब्रह्मसमो भवेत् ।
स तदा विविधान्स्रष्टुमधिकारी भवेत्स्वयम् ॥३४॥
षोडशादेव लक्षाणां नरो नारायणो भवेत् ।
तत्र माया जयं तस्य विश्वरूपत्वमंबिके ॥३५॥
देव-दानव-गंधर्व-खेचराः पृथिवीचराः ।
भूत-प्रेत-पिशाचाद्याः स्थावरं जंगमं तथा ॥३६॥
तस्य मायावशं प्राप्य स्फुटितं नैव कौशलम् ।
अर्धयामेन तत्कोपान्नाशतां संप्रयांति ते ॥३७॥
पंचविंशति-लक्षेण पंचशीर्षो भवेन्नरः ।
तस्य सर्व-जयं तस्य वीक्षणान्निग्रहं तथा ॥३८॥
अनंत-कोट्यंड-डंभः अहंकारं च दारुणम् ।
स्वर्ग-स्थिति-लयादीनां कर्तृत्वं तस्य जायते ॥३९॥

पंचाशल्लक्षमात्रेण परब्रह्म भवेत्तु सः ।
चित्स्वरूपं समाश्रित्य चिदानंदो भवेत्तदा ॥४०॥
अतः परं फलं नास्ति स्वात्मलाभादिति श्रुतिः ।
स्व-स्वरूपानुसंधानं कुर्यादेवं पुनः पुनः ॥४१॥
सूर्य चंद्रोपरागे च विषुवे चायने तथा ।
दर्शके चाथ पूर्णायां संक्रांतौ पातिके परे ॥४२॥
याममात्रं व्रती भूत्वा जपेदालोक्य भास्करम् ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति मंत्री नूनं वरानने ॥४३॥
यस्मान्नराद्धनापेक्षा तं स्मरन् हि जपेदिमाम् ।
किं ते कृण्वन्त्यृचां मंत्री शतोत्तर-सहस्रकम् ॥४४॥
स्वयमेव स संतुष्टः सर्वस्वमपिदो भवेत् ।
तद्धनं सहसा लब्ध्वा सुखी भवति निश्चितम् ॥४५॥
विजने कानने घोरे राज-चौरारि-संकुले ।
अभिव्ययस्वेति ऋचं जपेत्तद्भीति-शांतये ॥४६॥
संग्रामे तुमुले प्राप्ते बलं धेहीत्यृचं जपेत् ।
स क्रंदनबलं प्राप्य सहसा विजयी भवेत् ॥४७॥
संग्रामे च महद्युद्धे शत्रूणां सेनयावृते ।
वयः सुपर्णेति ऋचं शतमष्टोत्तरं जपेत् ॥४८॥
तरसा वैरिणां माया क्षपा-सूर्य-इवोदये ।
जपित्वा स्वप्रभावेण स मंत्री विजयी भवेत् ॥४९॥
निम्नांग-तरणे काले ह्युदगादित्यृचं जपेत् ।
महा-ग्राह-युतां घोरां नदीं तीर्त्वा सुखं व्रजेत् ॥५०॥
विजहीष्वेति सूक्तेन शतवाराभिमर्शनम् ।
तत्तैलं पाययेद्देवि सा नारी सूयते द्रुतम् ॥५१॥
प्रथमे पंचमे मासि तृतीये सप्तमेऽथवा ।
यदा पीतं तदा नारी तत्क्षणादेव सूयते ॥५२॥
व्यतीत-काले संप्राप्ते विपिने निवसेद्यदि ।
तदायमस्मान्नित्यृचं जप्त्वा शायनिवृत्तये ॥५३॥

तत्रैव काननाधीशो रक्षत्यनिशमंबिके ।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन जपेत्सौख्यं लभेत्सदा ।।५४।।
विष्णुरित्यादिसूक्तेन नारीणां पुत्र-सिद्धये ।
सहस्रवारं संमंत्र्य तदाज्यं प्राशयेच्छिवे ।।५५।।
एवं दिनत्रयं कुर्यान्मासात्पुत्रफलं लभेत् ।
तदादि-रक्षा कर्तव्या नारीणां गर्भवृद्धये ।।५६।।
गणानां त्वेत्यृचं मंत्री जपेद्विघ्न-निवृत्तये ।
तस्य विघ्न-भयं नास्ति जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्तिषु ।।५७।।
बृहत्सामेत्यृचं मंत्री रक्षां संमृज्य पार्वति ।
तद्रक्षा-धारणं कुर्यादुत्तमांगे वरानने ।।५८।।
तथाविधं समालोक्य यक्ष-गंधर्व-राक्षसाः ।
बहुशो भीतिमालोक्य संनिकर्षं न यांति ते ।।५९।।
भूत-प्रेत-पिशाचानां किमु सर्वग्रहादिनाम् ।
नराणामितराणां च जंगमानां वरानने ।।६०।।

आलेख्यं तिर्यगूर्ध्वं स्ववसु-महि-तले शूलयुक्तां च रेखाम्
प्रदाक्षिण्येन बाह्या प्रथगृतु-लिखितेन्द्रोतिभिः सूक्तमादौ ।।
शिष्टे-कोष्टेऽरि-नाम त्रिशिख-बहिरपि क्रूरपूर्णाभिलिप्त्वा
स्पृष्ट्वा जप्त्वा स्मृत्वा सह शशि-भवने कल्पयेच्छंसनाय ।।६१।।
संहारेऽस्मिन्प्रयोगे सकल विधिषु चेन्द्रोतिभिः सूक्त-मंत्र
मेकैकं वासमेतं निजगुरुवदनाद्यो न जानाति भूमौ ।।
सोऽविद्यामूल-दृष्टि कलयति कुपितः किं नु षट्पातकर्म
ज्ञातस्तत्साध्य-कीर्त्ति कटुवर लिपितं तापितं निग्रहाय ।।६२।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे आचारविधिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

पंचविंशोऽध्यायः

मायाप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ।।

अथ मायाप्रयोगं च वक्ष्यामि तव पार्वति ।
मंत्र-स्मरण-मात्रेण महामायी भवेच्छिवे ।।१।।
अथास्य माया-मंत्रस्य परब्रह्म ऋषिः स्मृतः ।
त्रिष्टुप्छंदस्तथा देवि परशक्तिस्तु देवता ।।२।।
पुष्करं पावकं माया रामराजं च कीलकम् ।
माया-प्रयोग-सिध्यर्थे विनियोगो वरानने
माययैव षडंगं स्यान्मंत्रमाथर्वणं परम् ।।३।।
तापिच्छ-नीलां शर-चाप-हस्तां सर्वाधिकां श्याम-रथाधिरुढाम् ।
नमामि रुद्रावसनेन लोकान् सर्वान् सलोकामपि मोहयंतीम् ।।४।।
प्रथमं च महामायां व्याहृतेः प्रथमाक्षरम् ।
मायां द्वितीयं मायां च तृतीयं मायया सह ।।५।।
आथर्वणं ततः पश्चादंत्येऽपि प्रणवादिकम् ।
अवरोहानिवृत्तिः स्यादेवं शास्त्र-विनिर्णयः ।।६।।
"ओं ह्रीं भूः ह्रीं भुवः ह्रीं स्वः ह्रीं शिवांघ्रि
युग्मे विनिविष्टचित्तं सर्वेषां दृष्टयो हृदयस्य बालम् ।
रिपूणां निद्रां विवशं करोति महामाये मां परिरक्ष नित्यम्
ह्रीं स्वः ह्रीं भुवः ह्रीं भूः ह्रीं ओं स्वाहा" ।।७।।
त्रिकोणं विलिखेत्पूर्वं तद्बहिर्वृत्तमालिखेत् ।
तद्बहिश्चाथ मन्वस्रं तद्बहिर्भूपुर-द्वयम् ।।८।।
मध्ये तारयुतं माया व्याहृती युक् त्रिकोणके ।
चतुर्दश-दले मंत्रं विलिखेत्पदशः क्रमात् ।।९।।
भूपुरे विलिखेत्साध्यं द्वंद्व द्वयष्टदिशं प्रति ।
कृष्ण-पुष्पैश्च गंधाढ्यैः पराशक्ति यथाविधिः ।।१०।।

आवाह्याभ्यर्च्य संपूज्य जपेत्स्पृष्ट्वायुतं मनुम् ।
तन्मंत्र-धारणादेव माया-निधि-विधिर्भवेत् ॥११॥
धृत्वा यंत्रं ततो मंत्री स्मरेन्मंत्रं यथाविधिः ।
ततस्तत्स्मरणादेव मायालोके विजृंभते ॥१२॥
तस्य मायावशेनैव देव-दानव-राक्षसाः ।
न पश्यंति समाजातं किं पुनः प्राणयो ग्रहाः ॥१३॥
युद्ध-भूमिं समागत्य स्वसेना-मध्य-भूतले ।
कार्ष्णीयवृक्ष-पुष्पोत्थैः समिद्भिः सघृतैस्तिलैः ॥१४॥
पायसैः पिशितं नृणां दक्षिणाभिमुखो हुनेत् ।
प्रत्येकं विधिवद्देवि षष्ट्युत्तर-शत-त्रयम् ॥१५॥
होमांते तु जपेन्मंत्री भानुमालोक्य पंचधा ।
युद्धं प्रति यदागच्छेत्तदा निर्विवशो भवेत् ।१६॥
यथा युद्ध-दिने प्राप्ते तथा होमं तदा हुनेत् ।
प्रत्यहं विजयार्थाय यः कुर्यात्स जयी भवेत् ॥१७॥
समिद्भिः समरेऽन्यैश्च यः सहस्राहुतिं हुनेत् ।
तस्याग्निः पुरतः साक्षात्स्थित्वा दत्तवरो भवेत् ॥१८॥
तद्वरं देवलोकानां संहतिर्नाशनं व्रजेत् ।
तद्वरं ब्राह्मणाभेद्यं तत्तुल्यं न कदाचन् ॥१९॥
विष्णुना च मया चैव नैव तस्याग्रतः स्थितः ॥२०॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे मायाविधिर्नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

पूजाविधिः

श्रीशिव उवाच ॥

आराधनं प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
भोग-मोक्ष-प्रदं-दिव्यं-भुक्ति-मुक्त्यैक-हेतुकम् ॥१॥

विषुवकालेऽयने पुण्ये पूर्णायां दर्शके तथा ।
एकादश्यां च द्वादश्यां शुक्र-सौम्येन्दु-वासरे ॥२॥

जन्मर्क्षे च विपदृक्षे प्रत्यरौ च वधर्क्षके ।
शोभने पातिके ब्राह्मे दंडयोग-विवर्जिते ॥३॥

सिद्धयोगे तथाकाश-पाताल-रहिते दिने ।
विजने मंडपे रम्ये गोमयेनानुलेपिते ॥४॥

वितान लंबि-संयुक्ते धूप-दीप-समाकुले ।
स्नात्वा पवित्र-पाणिः-सन् शुद्धो मौनी दृढ-व्रतः ॥५॥

प्राङ् मुखोदङ् मुखो वाथ सुखासीनः स्वलंकृतः ।
दिव्यगंधेन युक्तेन भस्मना रत्नि-मात्रकम् ॥६॥

चतुरस्रं ततः कृत्वा तस्मिन्भस्मनि बुद्धिमान् ।
त्रिकोणं विलिखेत्पूर्वं तद्बहिर्वृत्तमालिखेत् ॥७॥

तद्बहिश्चाष्टपत्रं तु द्वादशारं ततः परम् ।
षोडशारं ततः पश्चात्ततो भूपुर-युग्मकम् ॥८॥

त्रिकोण-मध्ये देवेशंशरभं सालुवेश्वरम् ।
चिरं ध्यात्वा ततो मंत्री गुरुपादयुगं स्मरन् ॥९॥

मूलेन गंध-पुष्पाद्यैरग्रंथिभिरकंडुभिः ।
आवाहनादि-पुष्पांतमुपचारान्समर्पयेत् ॥१०॥

चंद्रं सूर्यं च वह्निं च त्रिकोणे तु यजेत्क्रमात् ।
भैरवं वाडवाग्निं च दुर्गां कालीं यथाक्रमम् ॥११॥

त्रिकोणे वृत्त-मध्ये तु चतुर्दिक्षु यजेत्क्रमात् ।
इन्द्रमग्निं यमं चैव निर्ऋतिं वरुणं तथा ॥१२॥
वायुं सोमं तथेशानं दलेष्वष्टसु पूजयेत् ।
पार्श्वद्वये यजेद्देवि व्याधि मृत्युमतः परम् ॥१३॥
मदनं रक्तचामुंडीं मोहिनीं द्राविणीं तथा ।
शब्दाकर्षणिकां बाणीं रमां मायां पुलिंदिनीम् ॥१४॥
शास्तारं क्षोभिणीं ज्येष्टां द्वादशारेयजेत्क्रमात् ।
पूजयेन्मूल-मंत्रेण स्व-स्व-यंत्रेण चांबिके ॥१५॥
षोडशारे यजेत्पश्चात्षोडश-स्वर-देवताः ।
गणेश्वरं यमं स्कंदं भैरवं च महादिशि ॥१६॥
प्रागादितो यजेन्मंत्री मूलेनैव पृथक् पृथक् ।
त्वरितां वीरभद्रं च वडवानल-भैरवम् ॥१७॥
महामायां यजेद्देवि वायव्यादि-विदिक्षु सः ।
आरभ्य चाग्रतो मंत्री ब्रह्माण्याद्यष्टमातरः ॥१८॥
परितस्तु यजेद्देवं ककाराद्यर्ण-देवताः ।
मूलेन सालुवं भूयो धूप-दीपादिकं यजेत् ॥१९॥
स्तुतिभिस्तोषयित्वाथ यथोक्तं प्रणिपत्य सः ।
मूलमंत्रं जपेन्मंत्री अष्टोत्तरसहस्रकम् ॥२०॥
आचार्यं पूजयेन्मंत्रं यथाशक्ति यथा-बलम् ।
शरभं हृद्यथोद्वास्य शिवोऽहमिति भावयेत् ॥२१॥
इत्येवं सततं कुर्यात्स्वयमेव शिवो भवेत् ।
तद्भस्मागमनं श्रुत्वा कंपंते विग्रहा ग्रहाः ॥२२॥
किं पुनर्दर्शनादस्य भूत-प्रेतादि-राक्षसाः ॥२३॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे पूजाविधिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

मातृकाप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

अकारं ब्रह्म-दैवत्यं श्वेतं सर्ववशंकरम् ।
सर्वज्ञत्वं मनोज्ञत्वं कामरूपत्वमंबिके ॥१॥

आकारं तु पराशक्ति-श्वेतमाकर्षसिद्धिदम् ।
इच्छासिद्धिर्ज्ञानसिद्धिः स्वात्मसिद्धिर्वरानने ॥२॥

इकारं विष्णु-दैवत्यं श्यामं रक्षाकरं भवेत् ।
रूप-कांति-प्रदं-श्रेष्ठं-वरेण्यं-मोक्ष-सिद्धिदम् ॥३॥

मायादैवतमीकारं श्यामं मोहकरं परम् ।
वीराणां वनितानां च वशीकारं वरानने ॥४॥

उकारं कोल-दैवत्यं श्यामं लोकवशंकरम् ।
मृत्तकोत्थापनं पुण्यं क्रूरं रोगविनाशनम् ॥५॥

ऊकारं पृथिवी बीजं श्यामं रक्षाकरं परम् ।
भूत-प्रेत-पिशाचानां नाशनं रिपु-नाशनम् ॥६॥

ऋकारं विधि दैवत्यं पीतं सर्वार्थ-सिद्धिदम् ।
चिरायुष्यं तपःसिद्धं पराभोगं वरानने ॥७॥

ॠकारं शिव-दैवत्यं रक्तं सर्व-वशंकरम् ।
जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-वर्जितं श्री-जयप्रदम् ॥८॥

अश्विभ्यां ऌ ॡ रक्तं रोग-लोक-वशंकरम् ।
तीव्रसिद्धि भिषक्-सिद्धि मोक्ष-धी-सिद्धिदं भवेत् ॥९॥

एकारं वीरभद्रं स्यात्पीतं सर्वार्थ-सिद्धिदम् ।
निग्रहानुग्रह-करं भीषणं जयवर्धनम् ॥१०॥

ऐकारं भारती विद्यात्स्फटिकं ज्ञानसिद्धिदम् ।
चतुःषष्टि-कला सिद्धिदायकं परमं शिवे ॥११॥

ओकारं शिव-दैवत्यं ज्योतिर्मयमनुग्रहम् ।
मनोवेग-प्रदं श्रेष्ठं शांतं सर्वफलप्रदम् ॥१२॥
औकारं शांकरीविद्या स्फाटिकं सर्वसिद्धिदम् ।
सारस्वतं विशेषेण शत्रूणां कोप-नाशनम् ॥१३॥
अंकारं रुद्र-बीजं स्याद्रक्तं देव-वशंकरम् ।
सर्व-लोक-जयं कार्यसिद्धिदं चित्तशुद्धिदम् ॥१४॥
अःकारं कालरुद्रं स्याद्रक्तं पाशनिकृन्तनम् ।
स्व-प्रपंचोपसंहारं परमात्म-प्रयोजकम् ॥१५॥
ककारं ब्रह्मणो बीजं पीतं वृष्टिकरं परम् ।
संजीवनमशेषाणां लोकानां वृद्धिदायकम् ॥१६॥
खकारं जाह्नवी बीजं स्फटिकं पाप-नाशनम् ।
भोग मोक्ष-प्रदं पुण्यं भुक्ति-मुक्ति-प्रदायकम् ॥१७॥
गकारं तु गणेशं स्यात्पीताभं विघ्न-नाशनम् ।
पूर्वापरस्थितं ज्ञानं भू-लोक-विजयं-शुभम् ॥१८॥
घकारं भैरवं विद्याद्रक्ताभं शत्रुनाशनम् ।
महाघोर-ग्रहहरं-सारूप्यं जयवर्धनम् ॥१९॥
ङकारं कालबीजं स्यात्कृष्णं जीवजयं परम् ।
महाभीमं जगत्क्षोभ्यं मरणापत्ति-भंजनम् ॥२०॥
चकारं भद्रकालीयं रक्तांगं स्तोभनं भवेत् ।
स्वेच्छाकर्षण-सिद्धिस्तत्स्वस्थावेशमयत्नतः ॥२१॥
छकारं भीम-कालीयं रक्ताभं वैरिनाशनम् ।
संक्रामणं त्रिलोकेऽस्मिन्समरे विजय-प्रदम् ॥२२॥
जकारं जातवेदाख्यं तुर्यं सौदामिनी-प्रभम् ।
अभिचारं महाघोरमपमृत्यु भयापहम् ॥२३॥
झकारमर्धनारीशं श्यामं रक्त-समाकुलम् ।
सर्वसौख्यकरं श्रेष्ठं भोग-मोक्ष-फल-प्रदम् ॥२४॥
ञकारं परमात्मीयमवाङ्मनसगोचरं ।
सर्वज्ञानप्रदं ब्रह्मज्ञानदं श्री-जयप्रदम् ॥२५॥
टकारं पृथिवी-बीजं श्वेतं संहार-कारणम् ।
कृत्यादावौषधी वृद्धिः पाताल-निधि-दर्शनम् ॥२६॥

ठकारं चंद्र-बीजं स्यात्स्फटिकं शत्रु-नाशनम् ।
रोग-क्ष्वेडहरं दिव्यं महाज्वर-हरं परम् ॥२७॥
डकारं शुक्रबीजं स्यात्पीताभं विजयं भवेत् ।
मृतसंजीवनं तत्स्यान्महामाया वशं शिवे ॥२८॥
ढकारं वैष्णवं विद्यात्पीतं सर्वार्थ-सिद्धिदम् ।
बलप्रदं जल-स्तंभं पातालस्यापि दर्शनम् ॥२९॥
णकारं बलभद्रीयं श्वेतं बल-विवर्धनम् ।
नित्यत्वं बुद्धि-वीर्यत्वं रिपु-दर्प विनाशनम् ॥३०॥
तकारं धनदं विद्यात्पीतमैश्वर्य-वर्धनम् ।
यक्ष-किन्नर-सिद्धानां वशीकारं जगद्वशम् ॥३१॥
थकारं तु पराशक्ति-रक्तं काल-जयं भवेत् ।
शांतिकं पौष्टिकं चैव भोग्यमायुष्य-वर्धनम् ॥३२॥
दकारं दौर्ग-बीजं स्याच्छ्यामं सर्वार्थ-साधनम् ।
निग्रहानुग्रह-करं भोग-मोक्षैकसाधनम् ॥३३॥
धकारं धर्मबीजं स्याच्छ्वेतं पुण्यविवर्धनम् ।
सदादेवमयं दिव्यं सर्वदर्शनदर्शकम् ॥३४॥
नकारं निर्विकल्पं स्यादप्रमेयाभमक्षरम् ।
वायुवेग-मनोवेगमिच्छा-रूपं भवेद् ध्रुवम् ॥३५॥
पकारमग्निबीजं स्याद्रक्तं सर्पहरं क्षणात् ।
स्त्री-पुं-नपुंसकादीनां भवेदाकर्षणं शिवे ॥३६॥
फकारं भैरवं विद्याद्रक्ताभं विजयं ततः ।
महाग्रह-हरं सर्व-ज्वर-रोग-विनाशनम् ॥३७॥
बकारमश्विनी-बीजं पीतं रोगहरं परम् ।
औषधस्य महावीर्यवृद्धिदं जयवर्धनम् ॥३८॥
भकारं भार्गवं ज्ञेयं ज्योतिष्प्रभमनामयम् ।
आयुरारोग्यदं श्रेष्ठंमशेष-स्त्री-विवर्धनम् ॥३९॥
मकारमीश्वरं विद्याज्ज्योती रक्तं सुखावहम् ।
वश्याकर्षण-संतान-सिद्धिदानैक-तत्परम् ॥४०॥
यकारं वायु-बीजं स्यात्कृष्णं बलविवर्धनम् ।
सर्वोच्चाट-करं क्रूरं संग्रामे जयवर्धनम् ॥४१॥

रेफं कृशानुबीजं स्याद्रक्ताभं सर्पनाशनम् ।
जंगमाकर्षणं युद्धे द्विषां सेनाबलं तथा ॥४२॥
लकारं शक्रबीजं स्यात्पीतं सर्वफलप्रदम् ।
अग्निस्तंभं जलस्तंभं स्वेच्छास्तंभं विशेषतः ॥४३॥
वकारं वारुणं विद्याच्छ्वेतं स्वेच्छाभिवृष्टिदम् ।
आकर्षणं जलस्थानामशेषज्वरनाशनम् ॥४४॥
शकारं शंकरं विद्यात्तेजः सौभाग्य-सिद्धिदम् ।
अन्योऽन्यकलहादेव वैरिणां नाशनं भवेत् ॥४५॥
षकारं द्वादशादित्यं ज्योतिरारोग्यवर्धनम् ।
शमनं सर्वरोगाणामायुर्विद्याभिवर्धितम् ॥४६॥
सकारं भारतीबीजं श्वेतं सारस्वतप्रदम् ।
प्रतिविद्वज्जनजयं वराणां योषितावशम् ॥४७॥
सदाशिवं हकारं स्याद्धूम्रं ज्ञानार्थसिद्धिदम् ।
अणिमाद्यष्टसिद्धिः स्याच्चतुःषष्टिः कला अपि ॥४८॥
लकारं पृथिवीबीजं श्यामं सिद्धिकरं परम् ।
स भवेदोषधीवृद्धिः रिपु-भू-द्रव्यदर्शनम् ॥४६॥
क्षकारं श्रीनृसिंहं स्यात्स्फाटिकं मोक्षसिद्धिदम् ।
रिपुवर्गहरं सर्वलोकक्षोभहरं परम् ॥५०॥

इति सुमतिरहर्यो मातृका देवतान्या
द्युति-बल-महिमादीन्यादितःस्वामिवक्त्रात् ।
सकलमपि च लब्ध्वा सालुवाराधनांते
जयतु विविधसिद्ध्यै हेतुबीजेन मंत्रम् ॥५१॥

दशशतमभिमंत्री सावधानः प्रहृष्टः
प्रवणित-दृढ-भावः प्राकृतारंभशून्यः ।
जपमिति विधिपूर्वं मातृकायाश्च वर्णान्
प्रथममभिनियोज्य त्वेकमेकं च कुर्यात् ॥५२॥

पंचाशद्वर्णान् प्रथमं प्रयोक्त्वा जपेत्सहस्रं शरभेशमंत्रम् ।
स मानुषः सर्वकलाप्रवीणः प्रयाति तूर्णं पदमीश्वरस्य ॥५३॥

आदाय लब्धं य-श-हेः पंचाशद्भिरतः परम् ।
पृथग्वर्णैः तपः पश्चाज्जपेत्सौभाग्यसिद्धये ॥५४॥

साध्य-नाम विलोमार्णान्मंत्राणां चारुसिध्य तत् ।
त्रिसहस्त्रं जपेनैव जंतुः कालपुरं व्रजेत् ॥५५॥
यदि मंत्री नरस्तस्य देवतामंत्रवर्णकम् ।
अनुविध्य विलोमेन संजपेदयुतं मनुम् ॥५६॥
दिग्देवताश्च लीयंते पराजेतुं महाबले ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जपेदेवं वरानने ॥५७॥
मंत्रांते योजयित्वाथ क्रियासाध्यं सपल्लवम् ।
विविधेषु प्रयोगेषु निजपेत्सर्वसिद्धये ॥५८॥
यंत्रं तंत्रं विना वापि यो जपेन्मंत्रवित्तमः ।
सर्वसिद्धि जपेनैव सहसा नाव्रजेच्छिवे ॥५९॥

श्रीदेव्युवाच ॥

ननु न्वत्र कथं शंभो नैव स्याद्यंत्रतंत्रकम् ।
यदि स्याद्यंत्रतंत्राभ्यां किं प्रयोजनमाविभो ॥६०॥

श्रीशिव उवाच ॥

शृणु साधु शिवे वच्म्यहं पुरश्चर्ययैकया ।
यंत्र-तंत्र-क्रियापूर्वं यदि कुर्याल्लभेत्तदा ॥६१॥
चिरकालं जपैः क्रूरैर्यः करोत्यंगशोषणैः ।
सिद्धि सोऽथ न वाऽप्नोति यंत्र-तंत्र-विवर्जितात् ॥६२॥
पुरश्चर्याद्वयेनैव स्मरणात्सिद्धिमेति सः ।
यंत्र-तंत्रं विना देवि सकलं जायते जपात् ॥६३॥
सर्वथा मनुजो मंत्री पुरश्चर्याद्वयं चरेत् ।
स्मरणात्तेन सिद्धिः स्यान्नानाकर्मक्रियादिषु ॥६४॥
सर्वेषां मंत्र-जालानां यदि साध्यं युगे युगे ।
तत्सर्वं स्मरणादेव सिद्धिर्भवति तत्वतः ॥६५॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे मातृकावर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

भद्रकालीप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

भद्रकाल्याश्च मंत्रस्य सद्योजात ऋषिः स्मृतः ।
ततस्तु जगती छंदो भद्रकाली च देवता ॥१॥
ह्लींकारं बीजमित्युक्तं स्वाहा शक्तिरतः परम् ।
मोक्षे च विविधे कार्ये विनियोगो वरानने ॥
ह्लामित्यादि षडंगं स्यादथ ध्यानमिहोच्यते ॥२॥

अथ ध्यानम् ॥

नीलाभा हेमवस्त्रा नररुधिर-वसा-मांसनिर्भिष्यवक्त्रा
शूलं-कुंतं-रथांगं-फणि-मुसल-गदा-तोमरं-पट्टिशं च ।
पाशं शक्तिं च शंखं ध्वज-हल-दहनं वज्रखेटं कराब्जै-
र्बिभ्राणा भीमवेषा विजयतु भुवने विद्रुता भद्रकाली ॥३॥

अथ भद्रकाली-मंत्रोद्धारविधिः ॥

मायां मोचय तारकालिपुटितः कंकालि मह्यं सदा
त्वं कल्याणि मनोहरीह कवितां सौभाग्यमव्याहतम् ।
देह्यस्मिन् परमंत्रहारिणि शुभे तद्यंत्रहारिण्यहो
विद्याच्छेदिनि पूर्ववद्धुतभुजस्त्वयंते जगत्क्षोभिणि ॥४॥
सीसे ताम्रे त्रिलोहे रजत-कनकयोः पंच-लोहेऽथ भूर्जे
कृत्वा षट्-सप्त-कोष्ठं हरिहरसहितं भद्रकाल्याश्च मंत्रम् ।
संधौ पंचाशदर्णान्विजय-जययुतं सर्व-रेखाग्रशूलम्
बाह्ये साध्यं सतारं प्रणतरिपुजनप्राणसंहारदक्षम् ॥५॥
संपूज्य यंत्रं विधिवत्स्वगेहे जपेत्सहस्रं प्रयतो मनीषी ।
पश्चात्सहस्रद्वयमादरेण कुर्याज्जपं गौरि विशेषसिद्ध्यै ॥६॥

निंब-वृक्षे स्थितं काकनीडमादाय दर्शके ।
भस्मीकृत्य ततः सर्वं तस्मिन्भस्मनि मंत्रवित् ॥७॥

समालिख्य महायंत्रं सर्वलोकभयंकरम् ।
कृष्णपुष्पैः समभ्यर्च्य विधिवत्पूज्यतां सुधीः ॥८॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु दक्षिणास्यो जपेन्निशि ।
दृढचित्तस्ततो बद्ध्वा कृष्णवस्त्रेण पुत्तलीम् ॥९॥
वैरिक्षेत्रे खनेन्मंत्री मरणं नात्र संशयः ।
पुनस्त्वेवं जपेन्मंत्री तद्रिपुर्बलवान्यदि ॥१०॥
सांत्ववादः कृतस्तेन मंत्रेण साधकोत्तमः ।
पुत्तलीमंभसि क्षिप्यावरोहेण जपेन्मनुम् ॥११॥
भद्रकाली ततः शत्रुमुक्त्वा कोपं च सीदति ।
पुनः संपूज्य तां मंत्री यथावित्तेन देशिकम् ॥१२॥
संतोष्य परया भक्त्या तत्प्रसादं च याचताम् ।
चतुःषष्टिकलास्त्वेवं योजयेन्मंत्रवित्तमः ॥१३॥
सर्वसिद्धिसमोपेतश्चिरं मंत्री महीतले ।
अनुभुज्य महायोगानप्रमेयाननर्गलान् ।
बांधवैः सह देहांते भर्गं सायुज्यमाप्नुयात् ॥१४॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे भद्रकालीविधिर्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

तैलविधिः

श्रीशिव उवाच ॥

अथो वक्ष्यामि देवेशि तैलं सर्वार्थसाधकम् ।
नानाक्षुद्रहरं दिव्यं नानावातनिवारणम् ॥१॥

रक्तापामार्गकं मूलं वचा-लसुन-संयुतम् ।
मधूक-निंब-एरंड-तैल-पाकं यथोचितम् ॥२॥

त्रिधा विभज्य शाकांकं त्र्यहं हृन्मध्ययया क्रमात् ।
वस्ति-लेपादिकं कुर्याच्छंकाक्षुद्र-निवृत्तये ॥३॥

नारिकेलफलं छिद्रं पक्वतैले स्वतैलके ।
पायु-गुह्योद-हृत्क्षुद्रशांतये भक्षयेच्छिवे ॥४॥

कृष्णश्वा-नख-रोमाणि दग्ध्वा कंबल-लोम च ।
हिंगूष्णवारिसंयुक्तं पिबेद्धृत्क्षुद्रमुक्तये ॥६॥

पैशाचभ्रमणीमूलमपामार्गं पुनर्नवम् ।
नक्तं सूरिं च भूधात्रीं लज्जां शिग्रुरसं तथा ॥७॥

वचोलिलसहितं पक्त्वा लिपेदैरंडतैलकैः ।
मूर्धाङ्गनासाहृत्कर्ण-कर-परक्षुद्र-शांतये ॥८॥

धत्तूरकं तथा कोलं पाटलाग्निं प्रतापसम् ।
पातालतिक्तमूलीं च पैशाचभ्रमकं तथा ॥६॥

दुराधर्षादपामार्गभलक्तशतमूलिकां ।
लशुनं तु वचायुक्तं प्रत्येकं पलमात्रकम् ॥१०॥

सांगनारंगजं बीजं नीरं प्रस्थचतुष्टयम् ।
पत्र-सारं चतुःप्रस्थं निर्गुंडैकादलाब्जयोः ॥११॥

पंचतैलं चतुःप्रस्थं प्रत्येकं सुपदे पचेत् ।
केशादिपादपर्यंतमंगसंगं शनैः शनैः ॥१२॥

आलिप्य धूपयेत्संध्यारागे पंचदिनं तथा।
नानाक्षुद्रं च वातं च नश्यत्याशु न संशयः ॥१३॥
मेघनाददलैकाब्जं गुडूचीं शीतलीं तथा।
नोत्पलांकननिर्मुक्ता (म)मूलं मूलीशिफां तथा ॥१४॥
प्रस्थ-द्वयपरिमाणं कृत्वा सर्वं कषायकम्।
....॥१५॥

सहस्रवेधीममृताख्यवल्लीमूलं शिखां कोकनदस्य मूलम्
एलालवंगं मधुकं च कोष्ठं वनाकृषं चंपककुड्मलं च।
मृगस्य शृगं सितचंदनं च पिष्ट्वैकमेकं लकुचप्रमाणम्
घृतं च तैलं च शिवं च धेनोर्द्रोणं पयः पाटलनालिकांबु ॥१६॥
सशर्करं दिव्यपदे तु पक्त्वा लिहेल्लिपेत्प्राणतदुन्मुखः सन्।
क्षुद्रांगतापोल्वणपैत्यनाशं सौंदर्यदं पुष्टिकरं च बाल्यम् ॥१७॥
रेतोरजोवृद्धिकरं समस्त-रोगापहं पावक-वातनाशम्। ॥१८॥

टंकणं सैन्धवं हिंगुं हरिभारं कटुद्वयम्।
रसयुक्तं च पैशाचहिकसारेण पेषितम्।
अंजयेदर्कदुग्धेन कालदष्टोऽपि जीवति ॥१९॥
शंखं च तगरं तुत्थमंजनं च मनःशिलाम्।
कुक्कुटांडं बिसं (षं)व्योषं श्वेतां च गिरिकर्णिकाम् ॥२०॥
नंद्यावर्त-प्रसूनस्य सारेण दशरात्रकम्।
पिष्ट्वा तु गुलिकां कृत्वा नातपेनैव धूसरे ॥२१॥
अंजयेत्तस्य सारेण स्तनदुग्धेन वांबिके ॥२२॥
रुद्रांजनमिति प्रोक्तं महावेगं सुखावहम्।
सर्वभूतहरं क्षुद्र-मोह-ज्वरविनाशनम् ॥२३॥
विषघ्नं चाक्षिवातघ्नं पिल्लकाचस्य पोहनम्।
कुकूणमांस-पटल-पुष्पापहमनुत्तमम् ॥२४॥

इन्दुखंड-फल-लोम च ताली-पत्रपद्म च ससैन्धव-धूमम्।
व्योषयुक्तमथजं फलसारैः पेषितं त्र्यहमनंतरमेतत् ॥२५॥
अंजनेन विषनाशनं पुनः शत्रुभूतनयनोद्घटोल्वणम्।
उग्रवेगजमिदं भ्रमरांजनशिग्रुपुष्पसुरसैर्विमोचनम् ॥२६॥

तालग्रंथिं च पत्रं च तिलमूलं समूलकम्।
भस्मीकृत्य तु तद्भस्म भक्षयेद् गुडमध्यकम् ॥२७॥

पक्षादेवोदरं शल्यं प्रणश्यति न संशयः।
अपामार्गस्य सद्बीजं गोक्षीरेणान्वहं शिवे ॥२८॥
पिष्ट्वा पिबेद्यथासह्यं त्रिमासात्कुष्ठनाशनम्।
मंडलात्कीटलूतादेर्वंशदंश-विषापहम् ॥२९॥
व्योषं धुरीगतुत्थं च पूतना-बीज-बीजकम्।
जम्बीरफलसारेण पिष्ट्वा तत्सप्तरात्रकम् ॥३०॥
नानाभूतहरं क्रूर-नानासर्पविषापहम्
वर्त्तिकासुमसारेण कुर्यात्पुष्पस्य चांजनम् ॥३१॥
इतीदं गुलिका-श्रेष्ठं प्रोक्तं कौमारिकांजनम्।
रसे जंभस्य काशेऽस्य पिल्लस्यास्य जलेन च ॥३२॥
स्तन्येन पित्तकाचस्य कुकूणस्य च गोजलैः।
निर्लोमस्य च तैलेन मालायां शिग्रुजारसैः ॥३३॥
सितचंदनतोयेन ताप-ज्वरविमुक्तये।
लक्ष्मीपुष्पस्य सारेण चातुर्थ-ज्वर-मुक्तये ॥३४॥
तालीदंड-जलेनैव वातपैत्त्यज्वरं हरेत्।
त्रिदोषस्याजमूत्रेण सूति-वातस्य चांबिके ॥३५॥
तांबूल-दल-सारेण मत्स्यबालग्रहस्य च।
आत्मांभसा विघ्नसूत आरोग्यस्यास्रबिंदुना ॥३६॥
अक्षतं तक्रमध्यस्थमपरेह्नि निपेष्य तत्।
स्थले लिहेद् गृहं तस्मिन्वह्नितप्तार्तिशांतये ॥३७॥
कृष्णगुग्गुलुचूर्णेन तिलतैलं पचेत्पदे।
तैलेनार्द्रीकृतं तूलं स्थापयेद् व्रणशांतये ॥३८॥
तत्तैलाघ्राणतो यांति खड्गाद्याःव्रणकोटयः।
कुंदा-श्रवण-संयोगे कटुं संपेष्य मध्यमम् ॥३९॥
तद्व्रणे लिप्य संबद्ध्वा तृतीयाहे विमुच्य तत्।
त्रिविधं बंधनादेवमुच्यते तद्व्रणं नरः ॥४०॥
आम्लिकाकंदमाहृत्य पिष्ट्वा क्षीरेण पाययेत्।
गतार्त्तवानां नारीणां सद्यो रक्तं प्रवर्तते ॥४१॥

तिलाक्षिणीशिफां पिष्ट्वा क्षीरेणोषसि पाययेत् ।
अनार्तवा तु या योषित् सार्तवा भवति ध्रुवम् ॥४२॥
मरीचचूर्णं प्रक्षिप्य जंबीरस्य फलोदरे ।
तस्य खंडादधोभागं स्नानं निर्गुंडिकारसे ॥४३॥
अपरेऽहनि तद्वारे भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ।
तत्फलास्वादनाद्यांति ज्वराश्चातुर्थिका ध्रुवम् ॥४४॥
पैशाचभ्रमणीमूलं उपरागावसानके ॥
गृहीत्वोत्तरभागस्थं कृत्वासक्तांगुलीयकम् ॥४५॥
तेन युक्तकरं दृष्ट्वा धावंत्यखिलदुर्गमाः ।
भूतप्रेतपिचाशानां कुतस्तस्याग्रतः स्थितिः ॥४६॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे औषधविधिर्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

शूलिनीप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

अथो वच्म्यंबिकां दुर्गां सर्वातीतपराक्रमाम् ।
चराचरमयीं देवीं सर्वकामफलप्रदाम् ॥१॥
बहुरूपां महोत्साहां भेदवादिकरां पराम् ।
शब्दब्रह्ममयीं दिव्यां सावधानमनाः शृणु ॥२॥
विभक्ता षड्विधा दुर्गा स्वात्मना करणेच्छया ।
अग्निदुर्गा महादुर्गा जलदुर्गेति नामतः ॥३॥
वनदुर्गा ततः पश्चाच्छूलदुर्गा च शूलिनी ।
तासां तु शूलिनी देवी महाक्रूरेति कीर्तिता ॥४॥
अथातः संप्रवक्ष्यामि शूलिनीं तु विशेषतः ।
समाहितेन मनसा शृणु सर्वं वरानने ॥५॥
ब्रह्मा तु शूलिनीदुर्गामंत्रस्य ऋषिरुच्यते ।
गायत्री छंद इत्युक्तं देवता शूलिनीश्वरी ॥६॥
दुंकारं बीजमित्युक्तं स्वाहाशक्तिस्ततः परम् ।
स्वेच्छाप्रयोगसिध्यर्थे विनियोगो वरानने ॥७॥
ह्रामित्यादि करन्यासः षडंगं तु ततः प्रिये ।
लक्ष्मीबीजं समुच्चार्य बिंदुशूलिनीतत्परम् ॥८॥
देवसिद्धपदं चोक्त्वा पूजितेति पदं वदेत् ।
नंदिनीति पदं मां च रक्ष रक्ष पदं वदेत् ॥९॥
महायोगेश्वरि हुं फट् हृदयादि नमो न्यसेत् ।
नामतो वरदे देवसिद्धादिशिरसे तथा ॥१०॥
युद्धप्रिये शिखायै स्याद्विंध्यवासिनि मां तथा ।
द्विःत्रायस्वेति कवचं तथा महिषमर्दिनि ॥११॥
देवसिद्धादिफट्कारान्नेत्रत्रयमुदाहृतम् ।
बीजादिनामतः पश्चात्सर्वसिद्धिप्रदायिनि ॥१२॥

देवसिद्धादिफट्कारादस्त्राय फडितीरितम् ।१३।।

ओं श्रीं शूलिनि दुर्गे देवसिद्धसुपूजिते नंदिनि मां रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि हुं फट्—हृदयाय नमः ।

श्रीं शूलिनि वरदे देवसिद्धसुपूजिते हुं फट् स्वाहा—शिरसे स्वाहा ।।

श्रीं शूलिनि युद्धप्रिये देवसिद्धपूजिते हुं फट् स्वाहा—शिखायै वषट् ।

ओं श्रीं शूलिनि विंध्यवासिनि मां त्रायस्व त्रायस्व देवसिद्धसुपूजिते हुं फट् स्वाहा—कवचाय हुम् ।

ओं श्रीं शूलिनि महिषासुरमर्दिनि देवसिद्धसुपूजिते हुं फट् स्वाहा—नेत्रत्रयाय वौषट् ।

ओं श्रीं शूलिनि सर्वसिद्धिप्रदायिनि देवसिद्धसुपूजिते हुं फट् स्वाहा—अस्त्रायफट् ।

ओं भूर्भुवः स्वरोमिति दिग्बंधः ।।

ध्यानम् ।

अध्यारूढा मृगेन्द्रं सजलजलधर-श्यामलां हस्तपद्मैः
शूलं बाणं कृपाणं त्वरिजलजगदाचापपाशान्वहंतीं ।
चंद्रोत्तंसां त्रिनेत्रां चतसृभिरसिखेटान्विताभिः परीतां
कन्याभिः सेव्यमानां प्रतिभटभयदां शूलिनीं भावयामि ।।
नमः प्रणवपूर्विके नतजनस्य चिंतामणे
ज्वल ज्वलतु शूलिनी त्वमिह पाहि चास्मान्सदा ।
समस्तरिपु दुष्टग्रह हुं फडित्यक्षरैः शिखि-
स्त्रिशक्तियुङ् मनोहरे जननि तुभ्यमव्याहते ।।१४।।

शूलिनीयं महामंत्रं दुर्वारं सर्वजंतुभिः ।
गुह्याद् गुह्यतरंश्रेष्ठं गोपनीयं प्रयत्नतः ।।१५।।
वश्याकर्षणयो रक्ता श्यामा स्तंभविरोधयोः ।
निग्रहोच्चाटयोः कृष्णा श्वेता मोक्षपरोक्षयोः ।।१६।।
सारस्वतप्रयोगे तु मुक्ताधवलरूपिणी ।
एवं ध्यात्वा जपेद्देवीं शूलिनीं सर्वसिद्धये ।।१७।।
वश्याकर्षणविद्वेषस्तंभनोच्चाटनिग्रहं ।
अन्यानि च प्रयोगाणि सिध्यंति स्मरणादपि ।।१८।।

यस्यैहिकफलं न स्यात्तत्र स्यात्पारलौकिकम् ।
यत्र न स्यात्परं लोकं तत्रैहिकफलं लभेत् ॥१९॥

मंत्राणां तु द्विजातीनां रहस्यं तु युगे युगे ।
शूलिनीं देवतायां तु भोगमोक्षं च विद्यते ॥२०॥

तत्राणिमादिसिद्धिः स्याच्चतुःषष्टिःकलास्तथा ।
जपतर्पणहोमादौ सांगो भूमौ कृते यदि ॥२१॥

मातृकोष्ठे श्मशाने वा प्रोक्तदेशे मनोरमे ।
जपेत्षोडशसाहस्रं विधिपूर्वं जितेन्द्रियः ॥२२॥

दशांशं तर्पणं तस्य शतांशं होमयेत्ततः ।
सहस्रांशमथो देवि ब्राह्मणांस्तर्पयेत्ततः ॥२३॥

त्रिकोणं कल्पयेत्कुंडमथात्माभिमुखाग्रकम् ।
स्वसूत्रोक्तविधानेन कुर्याद्धोमं समाचरेत् ॥२४॥

शुक्रवारे तथा सौम्ये सौम्यहोमं समाचरेत् ।
कुजवारे तथाष्टम्यां क्रूरहोमं समाचरेत् ॥२५॥

पायसं च तिलापूपं घृतं दधि मधु तथा ।
क्षीरं गुडं च तैलं च कदलीं च फलत्रयम् ॥२६॥

मुद्गं सर्षप-यष्टिं च वर्णैकैकविधानतः ।
तत्तद्वर्णादिमंत्रेण कुर्यादेकैकशः क्रमात् ॥२७॥

दक्षिणाभ्यंगपूर्वं तु कारयेद् द्विजभोजनम् ।
देवपूजागृहे रम्ये धूपदीपसमाकुले ॥२८॥

चंदनागरुकर्पूरकुंकुमारोचनैर्युते ।
धातुदारुमये पीठे यजेद्यंत्रं सुशोभनम् ॥२९॥

त्रिकोणं विलिखेत्पूर्वं तद्बहिर्वृत्तमालिखेत् ।
तद्बहिश्चाष्टपत्रं तु पुटीकृत्य च भूपुरम् ॥३०॥

भूपुरं द्वंद्वबाह्ये तु षट्कोणं विलिखेत्ततः ।
कोणाग्रे शूलमालिख्य तद्बाह्ये पृथिवीं लिखेत् ॥३१॥

अनुलोमविलोमाभ्यां बहिः प्रणवमालिखेत् ।
जया च विजया चैव अजिता चापराजिता ॥३२॥

अंतरावरणे पूज्याश्चतस्रो वीरशक्तयः ।
पूर्वे त्वैंकारमालिख्य दक्षिणे मन्मथाक्षरम् ॥३३॥
श्रींकारं पश्चिमे भागे मायाबीजं तथोत्तरे ।
त्रिकोण-मध्ये देवीं तां ज्वालमालां विभावयेत् ॥३४॥
श्रीशक्ति-सहितं मंत्रं मनसा बहुशः स्मरन् ।
आवाहनादि-पुष्पांतमुपचारान्समर्पयेत् ॥३५॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही नारसिंही च इन्द्राणी चंडिका क्रमात् ॥३६॥
श्रीशक्ति-बीजयुक्तेन मंत्रेणानेन पूजयेत् ।
प्रागादितो यजेद्देवि दलेष्वष्टसु मंत्रवित् ॥३७॥
इन्द्राग्नि-यम-रक्षेश-जलेश-पवनादिकान् ।
धनेशेशान-पर्यंतान् लोकपालान् यथाक्रमम् ॥३८॥
स्व-स्व-मंत्रेण युक्तेन मूलमंत्रेण भक्तिमान् ।
पूर्वकोणे तु शुंभं च निशुंभं पश्चिमे तथा ॥३९॥
नैर्ऋते धर्मसिंहं च वायव्ये महिषं तथा ।
आग्नेय्यां वीरभद्रं च ऐशान्यां क्षेत्रपालकम् ॥४०॥
श्रियं शक्ति च षट्कोणे संधावुत्तरदक्षिणे ।
श्रीशक्ति-सहितं बीजं षट्कोणायतनस्थितान् ॥४१॥
महावीरान् यजेन्मर्त्यो महाबल-पराक्रमान् ।
पूर्वद्वारे गणेशं च दक्षिणे रुद्ररूपिणं ॥४२॥
पश्चिमे कालरूपं च द्वारे षण्मुखमुत्तरे ।
रमामायार्णयुक्तेन मूलमंत्रेण भक्तिमान् ॥४३॥
एतानेव द्वारपालान् पृथगाराधयेत्ततः ।
मूलेन शूलिनीदुर्गां धूपदीपादिकं चरेत् ॥४४॥
कृत्वा ततो जपेन्मंत्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अकारादि क्षकारांतं वेष्टयेद्बिन्दु-संयुतम् ॥४५॥
एतद्यंत्रं महावीर्यं सर्वकाम-फल-प्रदम् ।
युद्धे शत्रुभये चैव रोगोत्पन्ने च संकटे ॥४६॥

समाराध्य महादुर्गां सर्व-कर्माणि साधयेत् ।
महादुर्गाप्रसादेन सर्वत्र लभते जयम् ॥४७॥
विशेषात्पुत्रकामश्च सद्यः पुत्रफलं लभेत् ।
वैरिणां मारणे कामः सद्यो नश्यंति वैरिणः ।
तरसा सर्वसिद्धिः स्यात्संहृतिस्तु विशेषतः ॥४८॥

मध्ये शक्तिं वसुदललसच्छूलिनीवर्णयुग्मम्
किंजल्कोद्यन्महिषमथिनी मंत्रवर्णं बहिश्च।
त्रिष्टुब्दुर्गालिपिपरिवृतं भूपुरश्चांतरस्थं
दुर्गाबीजं धर्मसमहितं शूलिनीयंत्रमेतत् ॥४९॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे शूलिनीदुर्गाकल्पनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

पूजाविधिः

श्रीशिव उवाच ।।

(क) अथ सर्वाभीष्टप्रसिद्धयर्थं शूलिनीदुर्गापूजां करिष्ये—

गुरुवंदनादिदेवेशि मातृकांतं समाचरेत् ।
शिरो-ललाट-भ्रूमध्यं मुख-कर्ण-हृदस्तथा ।।१।।
कुक्षि-नाभि-कटिर्गुह्य आधारश्चोरुजानुके ।
जंघ-पादद्वये देवि अक्षराणि क्रमान्न्यसेत् ।।२।।
कुंभशंखौ च संपूज्य प्राकारं नवरत्नकम् ।
यजेत्सहस्रस्तंभं च महाश्रृंगारकं ततः ।।३।।
धर्माद्यष्टकमभ्यर्च्य सत्वं रजस्तमस्ततः ।
पद्मं चैव शिवे नालं धर्मं कंदं तथैव च ।।४।।
ततः शिवे ज्ञाननालं यजेद्वैराग्यकर्णिकाम् ।
मंडलत्रयमभ्यर्च्य आत्मत्रयमतः परम् ।।५।।
ज्ञानात्मानं ततः पश्चादिच्छा-ज्ञाना-क्रिया तथा ।
दुर्गा च वरदा विंध्यवासिन्यसुरमर्दिनी ।।६।।
युद्धप्रिया पञ्चमी च षष्ठी चासुरमर्दिनी ।
सर्वसिद्धिप्रदायिनी देवसिद्धसुपूजिता ।।७।।
नंदिनी चैव नवमी महायोगिनी उच्यते ।
पीठशक्तीः सुसंपूज्याः पीठमभ्यर्च्य देशिकम् ।।८।।

ओं नमो भगवते वज्रनखदंष्ट्रमहासिंहासनाय दुर्गापीठाय नमः ।।९।।

वस्तुशुद्धयादि संस्कार-बलिपात्रांतमेव च ।
शंखमर्घ्यं भोगपूजां बलिपात्रं तथैव च ।।१०।।
आत्मभैरवनामानि सप्तपात्राणि साधयेत् ।
विद्यापद्धतिवद्देवि सर्वं पूर्ववदाचरेत् ।।११।।
अन्तर्यागं पुरा कृत्वा बहिर्यागं समाचरेत् ।
न्यसेद्गुरुं च मूर्धनि मध्ये श्रीशूलिनीं पराम् ।।१२।।

ऋषिच्छंदो देवताश्च षडंगं ध्यानपूर्वकम् ।
आवाह्य देवीं हृत्पद्मे मुद्रास्त्वावाहनादिकाः ॥१३॥
प्रदर्श्य पंचोपचारैरुपचर्य्याथ शूलिनीम् ।
हृत्पंकजात्समुत्थाप्य वामनासाविनिर्गताम् ॥१४॥
ज्योतीरूपां परां दुर्गां परमानन्द-रूपिणीम् ।
त्रिखंडमुद्रयाऽऽवाह्य चक्रेऽभ्यर्च्य यथाविधि ॥१५॥
देवेशि भक्तिरित्याद्या आवाहनमुदीरितम् ।
आवाहनी स्थापनी च संनिधिं संनिरुध्य च ॥१६॥
अवगुंठित-सव्यापस्वागत प्रसीदेति च ।
अष्टमुद्रेति विख्याता देवता भावसिद्धिदा ॥१७॥
षोडशैरुपचर्याथ मूलेनाभ्यर्च्य ह्यष्टधा ।
पश्चादावरणानीष्ट्वा श्रीशक्ति-सहितं यजेत् ॥१८॥
जया च विजया चैव अजिता चापराजिता ।
सरस्वती मन्मथश्च महालक्ष्मीश्च मायया ॥१६॥
इति पूर्वाद्युत्तरांतं मूलैर्देवीं समर्चयेत् ।
ब्रह्मादीः पूजयेत्पत्रे लोकेशानष्टपत्रके ॥२०॥
पूर्वकोणे तु शुंभं च पश्चिमे तु निशुंभकम् ।
राक्षसे धर्मसिंहं च वायव्ये महिषं तथा ॥२१॥
आग्नेय्यां वीरभद्रं च क्षेत्रेशं चेशकोणके ।
महालक्ष्मीं दक्षपार्श्वे मायामुत्तरपार्श्वके ॥२२॥
गणेशरुद्रकालाश्च सुब्रह्मण्यादि च क्रमात् ।
पूर्वद्वाराद्युत्तरांतं पूज्यमूलेन पूजयेत् ॥२३॥
मूलेनाष्टोत्तरशतं देवीं संपूजयेत्सुधीः ।
धूपदीपादिनैवेद्यं तांबूलं छत्रदर्पणे ॥२४॥
चामरं व्यजनं चैते उपचाराष्टकं क्रमात् ।
प्रदक्षिणां नमस्कारं कृत्वा शांतिस्तवं पठेत् ॥२५॥
बलिकर्म तथैशान्ये सर्वावरणसंयुताम् ।
सांगां च शूलिनीं दुर्गां हृच्चुद्वास्य हृदयांबुजे ॥२६॥

(ख) अथ सुमुखीकरणस्तोत्रम् ॥

सर्वकार्याभिविजयं सदारोग्यं शिवे शृणु ।
ओं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं फट् स्वाहा ।
इति मंत्रं त्रिःपठित्वा यथाविधि देव्यै बलिं निवेद्य स्तुवीत—
सुमुखीकरणस्तोत्रमंत्रस्य दीर्घतमा ऋषिः
ककुप्छन्दः शूलिनी देवता तत्प्रसादसिद्धयर्थे जपे विनियोगः

ध्यानम् ॥

ध्यायेद्धेमसहोपलासनपरे कन्याजनालंकृते
पंचब्रह्ममुखामरैर्मुनिगणैः सेव्ये जगन्मंगले ।
आसीनां स्मितभाषणां शिवसखीं कल्याणवेषोज्ज्वलां
भक्ताभीष्टवरप्रदाननिरतां विश्वात्मिकां शूलिनीम् ॥
ओंकारपीठमध्यस्थे ओषधीशमहोज्ज्वले ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥१॥
श्रीपूर्णे श्रीपरे श्रीशे श्रीप्रदे श्रीविवर्धने ।
ऐश्वर्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥२॥
कामेशि कामरसिके कामितार्थफलप्रदे ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥३॥
मायाविलासचतुरे माये मायाधिमायिके ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥४॥
चिंतामणेऽखिलाभीष्टसिद्धिदे विश्वमंगले ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥५॥
सर्वबीजाधिपे सर्वसिद्धिदे सर्वरूपिणि ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥६॥
ज्वलत्तेजस्त्रयानंत-कोटि-कोटिसमद्युते ।
ऐश्वर्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥७॥
लसच्चंद्रार्धमुकुटे लयजन्मविमोचिके ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥८॥
ज्वररोगमुखापत्ति-भंजनैकधुरंधरे ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥९॥

लक्ष्यलक्ष्ये लयातीते लक्ष्मीवर्गधरेक्षणे ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥१०॥

शूरांगनानंतकोटिव्यावृताशेषजालके ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥११॥

पिलीलिंगादि दिक्-स्थाननियताराधनप्रिये ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥१२॥

निर्मले निर्गुणे नित्ये निष्कले निरुपद्रवे ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥१३॥

दुर्गे दुरित-संहारे दुष्टतूलांत्यपावके ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥१४॥

टमामये टमासेव्य-टमावर्धनतत्परे ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥१५॥

ग्रसिताशेषभुवने ग्रंथिसंध्यर्णशोभिते ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥१६॥

हंस-तार्क्ष्य-वृषारूढैराराधित-पद-द्वये ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥१७॥

हुंकार-काल दहन-भस्मीकृत-जगत्त्रये ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥१८॥

फट्कार-चंडपवनोद्वासिताखिलविग्रहे ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥१९॥

स्वाकृते स्वामिपादाब्जभक्तानां स्वाभिवृद्धये ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥२०॥

हालाहलविषाकारे हाटकारुणपीठके ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥२१॥

मूलादिब्रह्मरंध्रांतं मूलज्वालास्वरूपिणि ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥२२॥

वषडादि-क्रियाषट्क-महासिद्धिप्रदे परे ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥२३॥

सर्वविद्वन्मुखांभोज-दिवाकर-समुद्युते ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥२४॥
नानामहीप-हृदय-नवनीतद्रवानले ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥२५॥
अशेषज्वर-सर्पादि-चंद्रोपल-शशिद्युते ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥२६॥
महापापौघ-कलुषक्षालनामृतवाहिनि ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥२७॥
अशेष-काय-संभूत-रोगतूलानलाकृते ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥२८॥
औषधि-कोटि-दावाग्नि-शांतिसंपूर्णवर्षिणि ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥२९॥
तिमिरारातिसंहार-दिवानाथ-शताकृते ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥३०॥
सुधाग्रजिह्वावर्त्यग्र-सुदीपे विश्ववाक्प्रदे ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥३१॥
अरात्यवनिपानीक-तूलोच्चाट-महानिले ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥३२॥
समस्तमृत्यु-तुहिन-सहस्रकिरणोपमे ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥३३॥
जगत्सौभाग्यफलदे जंगम-स्थावरात्मके ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥३४॥
सुभक्तहृदयानंद-सुख-संवित्स्वरूपिणि ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥३५॥
धनधान्याब्धिसंवृद्धिचंद्रकोटिसमोदये ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥३६॥
सर्वजीवात्मधेन्वग्र-समुच्यानिलवत्सके ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥३७॥
तेजःकण-महावीर-समावीतांत्यपावके ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥३८॥

नानाचराचराविष्ट-दाहोपशमनामृते ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥३६॥
सर्व-कल्याण-कल्याणे सर्वसिद्धिविवर्धने ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥४०॥
सर्वेशि सर्वहृदये सर्वाकारे निराकृते ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥४१
अनंतानंतजनके अभूते आत्मनायिके ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥४२॥
रहस्यादि-रहस्यात्म-रहस्यागमपालके ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि म ॥४३॥
आचारकरणातीते आचार्यकरुणामये ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥४४॥
सर्वंरक्षाकरे भद्रे सर्वरक्षाकरेऽतुले ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥४५॥
सर्वलोके सर्वदेशे सर्वकाले सतांबिके ।
ऐश्वर्य्यमायुरारोग्यमिष्टसिद्धिं च देहि मे ॥४६॥

आद्येऽनादिकलाविशेषविवृतेऽनंताखिलात्माकृते ।
आचार्यांघ्रि-सरोजयुग्मशिरसामापूरिताशामृते ॥
संसारार्णवतारणोद्यत-कृपा-संपूर्ण दृष्टयानिशम् ।
दुर्गे शूलिनि शंकरि स्नपय मां त्वं भाव-संसिद्धये ॥४७॥

इति परमशिवाया सुमुखी महाशक्तयः
स्तुतिमतिशय सौख्यप्राप्तये यो नु वाऽत्र ।
स्मरति जपति विद्वत्संवृतो शेषलोकै-
र्निखिल-सुखमवाप्य श्रीशिवाकारमेति ॥४८॥

क्रियाभेदः

श्रीशिव उवाच ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि क्रियाभेदं तु पार्वति ।
अभक्तानामगम्यं तु भक्तानां सुलभोत्तमम् ॥१॥
सवातवृत्तं ऋतुकोणकोणे लक्ष्मीं च मायामथ तारसाध्यम् ।
आराध्य यंत्रं प्रजपेत्सहस्रमाकर्षणं त्वाशु चराचराणाम् ॥२॥

एतद्यंत्रं महावीर्यं सर्वलोकेषु दुर्लभम् ।
सुतरां सर्वजंतूनां स्त्रीणामाकर्षणं भवेत् ॥३॥
यक्ष-गंधर्व-सिद्धादीन् देवान्देवस्त्रियः तथा ।
आकर्षति महाभूतान् किमु भूलोकवासिनः ॥४॥

ओं नमो भगवते दिग्बंधनाय कंकालि कालरात्रि दुं दुर्गे शूं शूलिनि बं बटुकभैरवी अर्धरात्रविलासिनि महानिशि-प्रताप-केलिनि महाज्ञाधारिणि महाशक्ति मम सर्व भूत-प्रेत-पिशाच-सर्वज्वर-शांतिनि मदभीष्टमाकर्षयाकर्षय बटुक-भैरवि भैरवेश्वरि हुं फट् स्वाहा ॥

क्लींकारं वृत्तमध्ये तदनु वसुदले शक्ति-लक्ष्मीं लिखित्वा
बाह्ये भूकोण-युग्मे दिशि दिशि मदनं तद्वहिस्तार-साध्यम् ।
लोहे ताम्रे तु पूज्य-प्रयत-नरवरस्तत्सहस्रं जपित्वा
खन्याद्यंत्रं नलिन्यां मधु-कमलयुतं होमकं कर्म कुर्यात् ॥५॥
ततस्त्वादाय तद्भस्म तस्मिन्यंत्रं विलिख्य तु ।
संपूज्य विधिवद्देवीं सहस्रं प्रजपेत् पुनः ॥६॥
तद्भस्म रोचना गंधं कुंकुमेन ललाटके ।
तिलकं मंत्रवित्कुर्यात्सर्वलोकवशंकरम् ॥७॥

ओं नमो भगवते क्षांक्षां र र र र हुं रं लं बं बटुकाय ऐं ह्रीं क्लीं हर २ महाकालीपति एह्येहि संहर २ महाकालि सर्वाभीष्टसिद्धिप्रदे शं सर्वशत्रून् नाशय २ शोषय २ नर-भूत-प्रेत-पिशाचादिसर्वग्रहान् नाशय २ दह २ पच २ सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि सर्वलोकभुवनेश्वरि तद्वशं भ्रंशय २ मद्वशमानय स्वाहा ॥

त्रिकोण-कोणेश्वथ वह्नि बीजं बाह्येषु वृत्तं परितो धरिण्याः ।
कोणेषु धात्रीमभितोऽथ तारं साध्यावृत्तं स्तंभनयंत्रमेतत् ॥८॥
लोहे तु ताम्रे तु विषद्रुमे वा आलिख्य मंत्रं परिपूज्य जप्त्वा ।
सहस्रवारं प्रजपेत्क्षपायां दृढासनस्थो रिपुदिङ्मुखः सन् ॥९॥
सभाकूटे रिपोश्छत्रे द्वारे तोरणमंदिरे ।
मातृस्थानेऽथवा प्राच्यां दिशि ज्येष्ठागृहेऽथ वा ॥१०॥

जिह्वास्तंभं हनुस्तंभं भुज-पल्लिंग-गुह्ययोः ।
चक्षुर्हृच्छ्रवणस्तंभं सर्वलोकेष्वथ प्रिये ॥११॥

ओं नमो भगवति रुद्रकालि कालकूटमोहिनि ऐं क्लीं ह्रीं इष्ट कामसिद्धिप्रदायिनि सकलाज्ञापिनि संक्रामिणि ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराहि इंद्राणि चामुंडी बटुकभैरवेश्वरि आकर्षय २ आवेशय २ देवदत्तदेहं प्रवेशय २ केलय २ भाषय २ ह्रीं क्लीं ऐं हन २ सप्तमातृके हुं फट् स्वाहा ॥

सबिंदुकं पावकदीर्घबीजं बाह्ये सलग्नाक्षर-राशि-कोष्ठे ।
प्रत्येक-रेखा-त्रिशिखाख्यसाध्यं विद्वेषणं क्षोभकरं तदेतत् १२॥
एतत्समाराध्य जपेत्सहस्रं कृत्वा निशायां रिपुके श्मशाने ।
पुनर्जपेदेवमथो द्विषंतश्चान्योन्ययुद्धान्मरणं प्रयांति ॥१३॥
दशाहमेवं प्रजपेद्रिपूणां कुलक्षयाय प्रलयाय मंत्री ।
ततस्तथा शत्रु कुलोद्भवानां भवेद्यमाख्या नगरी प्रसन्ना ॥१४॥
पंचास्त्रमालिख्य तदग्रशूलं मध्ये तु वृत्तं पवनं च कोणे ।
माया फडर्णं त्रिशिखाग्रसाध्यं तारं तदोच्चाटनयंत्रमेतत् ॥१५॥
संपूज्य जप्त्वा विधिवत्सहस्रं खनेत् श्मशाने रिपु-गेह-कोष्टे ।
शत्रुः सबंधुः सगणः सवर्गः प्रयाति देशांतरमाशु गेहात् ॥१६॥
भवेद् विनाशो गृहमध्यगानां भूतादिचेष्टा बहुशो भवंति ।
स्वप्नार्भटि क्रूरगणोल्वणं च पाषाणवृष्टिः पतनं च पक्षात् ॥१७॥

त्रिकोणं विलिखेत्पूर्वं पंचकोणं ततः परम् ।
वसुकोणं ततः पश्चादृतुकोणं बहिस्ततः ॥१८॥
भूकोण-त्रितयं बाह्ये लिखेद्यंत्रं महोज्ज्वलम् ।
तारसाध्यं त्रिकोणांतर्वह्नि-बीजेन योजयेत् ॥१९॥
पंचारेषु ठकारांतं विलिखेत्साध्य-मारुतम् ।
बहिरष्टसु कोणेषु साध्यं चिंतामणिं लिखेत् ॥२०॥
ततः षट्कोण-कोणेषु झिंटीशं साध्यसंयुतम् ।
चतुष्कोणे देवदत्तं मारयेति पृथक् पृथक् ॥२१॥
लोहे संलिख्य तत्कृष्णपुष्पेणाभ्यर्च्य पूजयेत् ।
अष्टोत्तर सहस्रं तु स्पृष्ट्वा जप्त्वा जितेंद्रियः ॥२२॥

पर्वमारभ्य पर्वान्ते निशायां दक्षिणांदिशि ।
दक्षिणाभिमुखो मंत्री खनित्वा बलिपूर्वकम् ॥२३॥
पुनः स्नात्वा जपेन्मंत्रमष्टोतरसहस्रकम् ।
तत्पश्चाद्रिपवः सर्वे प्रयांत्यव्याजमारणम् ॥२४॥
अथवा साध्यवृक्षस्य समिन्मधुघृतैर्युतम् ।
तिल-सर्षप-संयुक्तम् कुर्याद्धोमं यथाविधि ॥२५॥
कृष्णवर्णां ज्वलत्केशां शूलहस्तां कपालिनीम् ।
खड्ग-चर्मधरां बाण-धनुर्हस्तां महाभुजाम् ॥२६॥
अग्निज्वालामयीं दुर्गां संभाव्य शरभः स्वयम् ।
मंत्रांते साध्यमारोप्य मारयेति हुनेच्छिवे ॥२७॥
सप्ताहान्मरणं याति स शत्रु नैव-संशयः ।
स्वर्ग-भूतल-पातालवासिनोऽमर्त्य-मर्त्यकाः ॥२८॥
शूलिनी-दर्शनादेव मरणं यांति निश्चयम् ।
एतदेव महाबीजं स्मरणात्पापनाशनम् ॥२९॥
जपतः सर्वसिद्धिः स्याद् भूयोभूयो युगे युगे ।
संभावनात्क्रियासिद्धिः पूजनाद्भाषणाद् भवेत् ॥३०॥
नास्तिकाय कृतघ्नाय नाभक्ताय कदाचन ।
विटाय कुलहीनाय न देयं चंडिकामनुम् ॥३१॥
त्रि-पंच-कोष्ठेषु विलिख्य शूलिनीं ससाध्य-नामांकित-मध्यबीजम् ।
रेखाशिरः कल्पित-शूल-युक्तं यंत्रं महाभूत-पिशाचहारि ॥३२॥
त्रयोदश-ग्रहेनथे दिनकर-त्रिशूलांकिते
नवानल गृहोल्लसच्छरभ-मूलवर्णाब्जयोः ।
चतुर्ग्रह ऋगर्णथाशिखि समन्विता........
....॥३३॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे शूलिनीविधिर्नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

वीरभद्रकल्पः

अथ ध्यानम् ॥

अध्यारूढां मृगेन्द्रं सजल-जलधर-श्यामलां हस्त-पद्मैः
शूलं-बाणं-कृपाणं-त्वरिजलज-गदा-चाप-पाशान्वहंतीम् ।
चन्द्राचूडां त्रिनेत्रां चतसृभिरसिना खेटकं बिभ्रतीभिः
कन्याभिः सेव्यमानां प्रति-भट-भयदां शूलिनीं भावयामि ॥१॥

एवं ध्यात्वा—

जपेन्मंत्रं विलोमेन रिपुनाम-विमिश्रितम् ।
अष्टोत्तरशतमेवं भवेद्वैरि पराजितः ॥२॥

आलिख्य शांतत्रितयावृतांतर्बहिः शिरोधस्त्रिशिखं दलादौ ।
स्वकीयकार्योचितवाचकांते दुर्गेति तत्पूज्य तु मात्रशत्रोः ? ॥३॥
द्वारेऽथवा रोगिकलेवरे वा नयेल्लभेदिष्टफलार्थसिद्धिम् ।
भूतामयघ्नं च द्विपाच्चतुश्पाच्चराचराणामचरं च नूनम् ॥४॥

सृंकारं वेदमूलं जितरिपु-बहु (लं) श्यामलं वीरभद्रं
फट्कारं व्योमकेशं घृणि घृणि निनदं खड्ग-खेटोग्रहस्तम् ।
हुंकारं भीमनादं हुतवह-नयनो दग्धमानाखिलाशं
फट्कारं वज्रदंष्ट्रं प्रणत-रिपुजन-प्राणसंहारमीडे ॥५॥

सृंखं विद्वेष-हननाय वीरभद्राय खड्गहं ह्रीं दक्षध्वंसनाय द्रां ह्लां र र र र हुं फट् स्वाहा ।

एतं मंत्रं महावीर्यं वीरभद्रं महोज्ज्वलम् ।
सहस्रं प्रजपेच्छक्त्या निग्रहेऽनुग्रहे तथा ॥६॥
मूलमंत्रावसाने तु ब्रह्मण्याद्यष्टमातृकाः ।
दिक्पालांश्च श्रियं मायां मत्त शुंभ-निशुंभकम् ॥७॥

महिषं धर्म सिंहं च वीरेशं क्षेत्रपालकम् ।
विघ्नेश्वरं च रुद्रं च कालं स्कंदं पृथक् पृथक् ॥८॥
स्व स्व बीजेन मंत्रेण योजयित्वाऽथ साध्यकम् ।
सहस्रं प्रजपेन्मंत्री तत्तत्काम्यार्थसिद्धये ॥६॥
शत वारं जपेन्नित्यं पंचाशद्वर्ण पूर्वकम् ।
सर्वसिद्धि समाश्रित्य स मंत्री सुखमेधते ॥१०॥
भानुमालोकयन्मंत्री भानु-बीज-युतं मनुम् ।
भानुवारे जपेत्सद्यो भानुवद्भाति भूतले ॥११॥
ठं वं व्रं भं चं जूं सं च योजयित्वाऽथ पूर्ववत् ।
भानुमालोकयन्मंत्री प्रजपेत्सोमवासरे ॥१२॥
निविध्याग्निलतापुष्प-फल-पूर्णमुखादयः ।
तद्भानुदर्शनादेव सफलं जायते ध्रुवम् ॥१३॥
विशेषदिवसे भानुं येन बीजेन योजयेत् ।
तत्सिद्धि लभते तस्य संशयो नास्ति तत्त्वतः ॥१४॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे वीरभद्रकल्पं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

जगत्क्षोभणप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ।।

अथ शृणु कथयामः प्रार्थ्यमानं मुनीन्द्रै-
रधिगतरिपुलोकानावृतानाधृतास्त्रान् ।
हरि-विधि-मुख-वीरानप्रमेयानसह्या-
नपि विषु-मृतयोधान् यत्करोति द्रुतं तत् ।।१।।
जगत्क्षोभण-मंत्रस्य ऋषिस्तत्पुरुषेश्वरः ।
तथातिजगती छंदो देवता शरभेश्वरः ।।२।।
खं बीजं फट् ततः शक्तिर्विनियोगस्तु निग्रहे ।
खामित्यादि षडंगंस्यान्मूलन्यासं समाचरेत् ।।३।।
ध्यात्वा जपेन्महामंत्रं सहस्रं सर्वसिद्धये ।

अथ ध्यानम् ।।

दूर्वाश्यामं महोग्रं स्फुट चलदधरं सूर्यचंद्राग्निनेत्रम्
चक्रं वज्रं त्रिशूलं शर मुसल-गदा-शक्त्यभीतिर्विहंतम् ।
शंखं खेटां कपालं सधनु-हल-फणि-त्रोट-दानानि हस्तैः
सिंहारिं सालुवेशं नमत रिपुजन-प्राणसंहार-दक्षम् ।।४।।

ओं नमो भगवते विश्वशरीराय पंचमुखभंजनाय प्रणतार्ति-विनाशनाय उग्राय उग्रदंष्ट्राय उरग-मणि-भूषणाय उद्दंड-कोलाहलाय सर्वलोकप्रियाय सकल-भूतनिवारणाय शतधृतिकपालमालालंकृताय शार्दूल-चर्मवसनाय शरभ-सालुवाय सूर्यसोमाग्निलोचनाय-दुर्निवारण-वारणाय दूर्वादलश्यामलाय दुरितहराय ओं श्रीं ह्रीं प्रीं सर्वभूतानाकर्षयाकर्षय सर्वग्रहाण्याकर्षयाकर्षय श्लां भ्रां ह्लां भूतग्रह पिशाचग्रह यक्षग्रह राक्षसग्रह सर्पग्रह दर्पग्रह अपस्मारग्रह भीमग्रह ब्रह्मराक्षसग्रह पातालग्रह कौमारग्रहापातालग्रह खेचरग्रह भूचरग्रह कूष्मांडग्रह ज्वालास्यग्रह तामसग्रह तमोहारग्रह स्त्रीग्रह पर्वतग्रह पापग्रह पापविक्रमग्रह बालग्रह

निशाचरग्रह अहोरात्रग्रह सप्तरात्रग्रह पक्षग्रह मासग्रह मंडलग्रह त्रिमासग्रह षण्मासग्रह वत्सरग्रहानुभोगग्रहानुसारग्रहाभिचारग्रहाभिमुक्तग्रह जीवग्रह दावग्रह वातग्रह पातकग्रह ज्वरग्रह रोगग्रह चेतनग्रहाचेतनग्रह स्फोटकग्रह दंशग्रह वांतिग्रह भ्रांतिग्रह हिक्वारग्रह धिक्वारग्रह संघातिकग्रह सन्निपातग्रह शोषणग्रह पोषणग्रह अविद्याग्रह विज्ञानग्रह लौकिकग्रह वैदिकग्रह रणग्रह राजग्रह कीटग्रह लूटग्रह सात्विकग्रह सार्वत्रिकग्रहाण्यावेशयावेशय प्रवेशय शीघ्रं प्रवेशय २ क्षोभय २ कंपय २ सकल-शैलं चालय २ सकल-सालं घातय २ सकलदिशां शोधय २ सकल-पदवीं भ्रंशय २ सकलदोषान् नाशय २ सकलसेनां ध्वंसय २ श्रीं ह्रीं क्लीं ह्रूं मोहय २ भ्रामय २ भाषय २ सर्वशूलग्रहं भाषय २ सर्वपिशाच ग्रहं भाषय २ सर्वयक्षग्रहं भाषय २ सर्वराक्षसग्रहं भाषय २ सर्वसर्पग्रहं भाषय २ सर्वदर्पग्रहं भाषय २ सर्वापस्मारग्रहं भाषय २ सर्व भीमग्रहं भाषय २ सर्व ब्रह्मराक्षसग्रहं भाषय २ सर्ववेतालग्रहं भाषय २ सर्वकौमार-ग्रहं भाषय २ सर्वपातालग्रहं भाषय २ सर्वखेचरग्रहं भाषय २ सर्वभूचर ग्रहं भाषय २ सर्वकूष्मांडग्रहं भाषय २ सर्वज्वालास्यग्रहं भाषय २ सर्वतामसग्रहं भाषय २ सर्वतमोहारग्रहं भाषय २ सर्वस्त्रीग्रहं भाषय २ सर्वपर्वग्रहं भाषय २ सर्वपापग्रहं भाषय २ सर्वपापविक्रमग्रहं भाषय २ सर्व बालग्रहं भाषय २ सर्वचातुर्थग्रहं भाषय २ सर्वमिथ्याग्रहं भाषय २ सर्वमिथ्या-पिशाचग्रहं भाषय २ सर्वघटिकाग्रहं भाषय २ सर्वयामग्रहं भाषय २ सर्वदिवाचरग्रहं भाषय २ सर्वनिशाचरग्रहं भाषय २ सर्वाहोरात्रग्रहं भाषय २ सर्वसप्तरात्रग्रहं भाषय २ सर्वपक्षग्रहं भाषय २ सर्वमासग्रहं भाषय २ सर्वमंडलग्रहं भाषय २ सर्वद्विमासग्रहं भाषय २ सर्वत्रिमासग्रहं भाषय २ सर्वषाण्मासग्रहं भाषय २ सर्ववत्सरग्रहं भाषय २ सर्वानुभोगग्रहं भाषय २ सर्वानुसारग्रहं भाषय २ सर्वाभिचारग्रहं भाषय२ सर्वाभिमुक्तग्रहं भाषय२ सर्वजीवग्रहं भाषय२ सर्वदावग्रहं भाषय२ सर्ववातग्रहं भाषय२ सर्व-पावकग्रहं भाषय २ सर्वज्वरग्रहं भाषय २ सर्वरोगग्रहं भाषय २ सर्वचेतनग्रहं भाषय२ सर्वाचेतनग्रहं भाषय२ सर्वस्फोटकग्रहं भाषय२ सर्वदंशग्रहं भाषय२ सर्ववांतिकग्रहं भाषय२ सर्वभ्रांतिकग्रहं भाषय२ सर्वहिक्वाग्रहं भाषय२ सर्व-धिक्वाग्रहं भाषय२ सर्वसंघातग्रहं भाषय२ सर्वसान्निपातकग्रहं भाषय२ सर्व-शोषणग्रहं भाषय२ सर्वपोषणग्रहं भाषय२ सर्वविद्याग्रहं भाषय२ सर्वविज्ञान

ग्रहं भाषय२सर्वलौकिकग्रहं भाषय२सर्ववैदिकग्रहं भाषय२सर्वरणग्रहं भाषय२ सर्वराजग्रहं भाषय२ सर्वकीटग्रहं भाषय२ सर्वमोटग्रहं भाषय२ सर्वसात्विक ग्रहं भाषय २ सर्वसार्वत्रिकग्रहं भाषय २ श्रां ह्रीं ह्रां बंधय २ खं खं रुंधय २ ताटय २ पाटय २ क्रोशय २ कुर्दय २ रोदय २ खादय २ स्त्रौं ह्लौं अंधय २ भद्रकालि-दुर्गाकलित-पक्षद्वयाय तिट्टवरि ग्लौ त्रां स्तंभय २ त्रों क्रौं त्रोटय २ रं रं ह्रूं प्रां दाहय २ त्रं ह्रीं ठं वं जुं सं पालय २ सर्वसंहार कारणाय सालुवपक्षिराजाय चंडवातातिवेगाय प्रें प्रीं यं यं संक्रामय २ खं खं रुंधय २ ताटय २ पाटय २ क्रोशय २ कुर्दय २ रोदय२ खादय २ स्त्रौं ह्लौं अंधय २ भद्रकालि दुर्गा कलित पक्षद्वयाय प्रं खं ह्रं श्रौं उच्चाटय २ म्रैं परमंत्रभेदनाय जहय २ स्फोटय २ प्रैं परमंत्र प्रमोटनाय छिदय २ र र र र भैं परतंत्रविच्छेदनाय भिदय २ ठं ठं छें परविद्याविध्वंसनाय कालानल भैरवाय श्रितोदरोनुरुस्थलाय नाशय नाशयं २ सर्वग्रहं नाशय सर्वभूतग्रहं नाशय सर्वपिशाचग्रहं नाशय २ सर्वसात्विकग्रहं नाशय २ प्रें परयंत्रतंत्र भेदनाय व्याधिकालो-रुद्रद्वयाय सर्वशत्रून् मारय २ भक्षय २ ह्रीं हुं फट् श्रीं ह्रीं क्लीं शरणागतवत्सलाय सामगानप्रियाय शंकराय चंद्रशेखराय अथर्वणपारायणाय अमृतोद्भाषणाय क्लीं श्रीं ह्रीं संतान-सिद्ध-प्रदाय श्रीं क्लीं श्रीं सर्वसंपत्समृद्धिदाय जं रं सर्वसम्मोहनाय सर्वमायां मोचय २ एं ऐं सोः कालाय भाषां ज्ञापय लृं लृं सर्वरोगहराय रूपं जनय २ विज्ञानं दापय २ हं हं वामदेवाय आत्मानं दर्शय २ ओं खं श्रीं ह्रीं क्लीं अभिवृद्धि देहि मे स्वाहा ।

आलेख्य वृत्तं बहिरष्टशूलं मध्ये च मायां त्रिशिखांतराले ।
साध्यावृतं सर्वजयोपयोगं संक्षोभणं चक्रममोघमेतत् ॥५॥

एतन्मंत्रं महावीर्यं सर्वलोकेषु दुर्लभम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण तरसा विजयी भवेत् ॥६॥

य इमं प्रजपेद्भक्त्या नासाध्यं तत्र विद्यते ।
मंत्राणां राजराजोऽयं तस्मात्त्वं जप सर्वदा ॥७॥

शत्रुमृत्यु जयं वांछन् सततं मंत्रवित्तमः ।
सकृद्वा प्रत्यहं कुर्याज्जपेदेकाग्रमानसः ॥८॥

जयैषी मनसा स्मृत्वा वैरिणां नाम पूर्वकम् ।
तत्स्थानाभिमुखो मंत्री रात्रावष्टादशं जपेत् ॥९॥
देवतानां यमीनां च मानिनां च नृणां तथा ।
यदसाध्यं युगे सर्वे सर्वरोगे वरानने १०॥
मंत्रिणां जातरोषाणां मानिनां स्थानवासिनां ।
तत्सर्वं सहसा मंत्र-स्मरणात्साध्यमाप्नुयात् ॥११॥
यो जपेन्मनसा सोऽहमिति यावत्पदे पदे ।
सर्वलोकाश्च कंपंते किं पुनः शत्रुभाविनाम् ॥१२॥
किमत्र बहुनोक्तेन वक्ष्याम्यार्ये यथा तथम् ।
मंत्रस्मरणमात्रेण शरभेशो भवेद् ध्रुवम् ॥१३॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे जगत्क्षोभणमालामंत्रंनाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

भैरवप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

अथ वच्मि महामंत्रं भैरवं लोकभैरवम् ।
किमत्र बहुनोक्तेन वक्ष्याम्यार्ये यथातथम् ॥१॥
सर्वसिद्धिप्रदं श्रेष्ठं सर्वविघ्ननिवारणम् ।
सर्वशत्रुंजयं दिव्यं सर्वरोगहरं शुभम् ॥२॥
सर्वार्थ-साधकं नृणां भोग-मोक्षैकसाधनम् ।
प्रत्यंगदेवतां चैतच्छृणु सम्यग्वरानने ॥३॥
भैरवस्यास्यमंत्रस्य अघोरो ऋषिरुच्यते ।
विराट्छंदस्तथा देवो भैरवः सर्वजिद्वरः ॥४॥
भंकारं बीजमित्युक्तं फट्कारं शक्तिरुच्यते ।
स्वेच्छा-संहार-सिध्यर्थे विनियोगस्तथांबिके ।
भामित्यादि करन्यासं षडंगं च ततस्तथा ॥५॥
कालांबुद-श्यामलमायतास्यं करालमव्याहतमप्रमेयम् ॥
लोलालकं लोकविनाशहेतुं लुठद्रिपुं नौमि धृताट्टहासम् ॥६॥

"ओं नमो भगवते उग्रभैरवाय सर्वविघ्ननाशाय ठ ठ स्वाहा" ।
(वर्ण २४)

चतुर्विंशतिसाहस्रं जपेन्मंत्रं यथाविधि ।
जप-तर्पण-होमानि द्विजानां भोजनस्य च ॥७॥
तद्दशांश-क्रमेणैव कुर्यात्पूर्ववदंबिके ।
कृसरं पायसं चाज्यमपूपं नवनीतकम् ॥८॥
महामुद्गं च सक्तुं च कुर्यात्सौम्यं पृथक् पृथक् ।
अष्टचूर्णं च तैलं च सर्षपं क्रूरमुच्यते ॥९॥
अनल-भवन-मध्ये शक्तिबीजं फडर्णं
हरि-हर-जय हुं फट् साष्ट कोणे-ससाध्यम् ।

बहिरथ वसुपत्रे मूलमंत्रान् त्रिवर्णान्
सकलरिपुविनाशं भैरवं वैरिवज्रम् ॥१०॥
एतच्चक्रं तस्य पूज्यं जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
भैरवं वह्निकोणे च वसुकोणेऽग्निमादितम् ॥११॥
भैरवीमप्यघोरं च गणेशं शिखिवाहनम् ।
विष्णुं च दक्षिणामूर्ति चंडोद्दंडगणेश्वरम् ॥१२॥
आपदुद्धारणं पश्चाद्यजेन्मंत्री यथाक्रमम् ।
तत्तन्मंत्रैः पृथक् पश्चान्मूलेनाप्यग्निदिङ् मुखः ॥१३॥

ह्रीं भैरवी देवि देवदत्त-कोपशमनं कुरु कुरु स्वाहा ।
ह्रीं रीं अघोर-भैरवाय देवदत्तं मोहय २ हुं फट् स्वाहा ॥
हुं ह्रां गं विघ्नराजाय देवदत्तकर्मविघ्नं कुरु कुरु स्वाहा ।
ओं ह्रां सुँ रं सुब्रह्मण्याय वैरिधैर्यं चलय २ स्वाहा ।
श्रीं हीं ओं जं सुदर्शनकराय रिपुचित्तं भ्रामय २ स्वाहा ।
ह्रीं ज्त्रं दक्षिणामूर्तये सुरसाध्य-मेधां समुत्कर्षय स्वाहा ।
ओं ह्ॅं चंडोद्दंडाय शत्रून् घातय घातय स्वाहा ।
ओं ह्रः षः स्वं क्षं लं आपदुद्धारणाय देवदत्तचक्षुः-श्रोत्र-जिह्वा घ्राण मनः-प्राण-हनुस्तंभं कुरु कुरु लं क्षं स्वं षः ह्रः ओं स्वाहा

दलांते केचित्प्राच्यादि मातृकाः पूजयेत्क्रमात् । ॥१४॥
नरांतकं महाभीमं विजयं रक्तभैरवम् ।
पश्चिमादि यजेद् भूमौ तत्तन्मंत्रैः पृथक् पृथक् ॥१५॥

ओं नमो भगवते नरमृगशरीराय सकलनरांतकाय रिपु-शरीरं नाशय २ हुं फट् स्वाहा ।

ह्रीं नमो महाभीमभैरवाय सर्वलोकभयंकराय सर्वश-शत्रून् संहार-कारणाय ह्ॅं ह्ॅं देवदत्तं ध्वंसय २ स्वाहा ।

वीरं ह्रूं ओं नमो भगवते विजयभैरवाय सर्वशत्रून् विनाशनाय विधुरिताधराय नररुधिरमांसभक्षणाय देवदत्तमुच्चाटयोच्चाटय ताडय २ संहर २ भस्मीकुरु कुरु स्वाहा ।

ओं ह्रीं स्फ्रं रक्तभैरवाय नवशवकपालमालालंकृताय नवांबुद-श्यामलाय एहि एहि शीघ्रमेहि मां पाहि एं ऐं आगामिकार्यं वद वद अखिलोपाधि हर हर सौभाग्यं देहि मे स्वाहा।

भैरवं पुनरिष्ट्वाऽथ मूलमंत्रं शतं जपेत्।
तथा तथा भवेन्नूनं तद्दिनादेव वैरिणाम्॥१६॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे भैरवमंत्रविधिर्नाम चतुस्त्रिंशोध्यायः॥३४॥

पंचत्रिंशोऽध्यायः

सिद्धभैरवप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

रहस्यं वच्मि ते देवि सर्वकाम्यार्थसिद्धिदम्।
मंत्रस्य स्मरणादेव मुह्यंत्यखिलजंतवः ॥१॥
सिद्धभैरवमंत्रस्य ऋषिः शंकर उच्यते।
संकृतिश्छंद इत्युक्तं देवता सिद्धभैरवः ॥२॥
भं वीजं तु ततः शक्तिर्विनियोगस्तु मोहने।
भां ह्लामित्यादिना पाणिन्यासं सर्वस्य चांबिके ॥३॥

अथ ध्यानम् ॥

जलद पटलनीलं दीप्यमानोर्ध्वकेशं
त्रिशिख-डमरु-हस्तं चद्रंरेखावतंसम्।
विमल वृषभरुढं चित्रशार्दूलवासं
विजयमनिशमीडे विक्रमोद्दंडचण्डम् ॥४॥

ओं नमो भगवते विजय-भैरवाय प्रलयांतकाय महाभैरव्यै महाभैरवाय सर्वविघ्ननिवारणाय शक्तिधराय चक्रपाणये बटमूलनिषण्णाय अखिलगणनायकाय आपदुद्धारणाय आकर्षय २ आवेशय २ मोहय २ भ्रामय २ भाषय २ शीघ्रं भाषय शीघ्रं भाषय ह्लां ह्लीं त्रिपुरताण्डवाय अष्टभैरवाय भाषय स्वाहा ॥

आवेशम्

शांतं त्रिमुखमालिख्य तेन संवेष्ट्य सर्वतः।
अधोशूला-द्विपार्श्वे च यंत्रं विजयमद्भुतम् ॥५॥
एतद्यंत्रं लिखित्वाऽथ मंत्रेणानेन मंत्र्य तत्।
भस्मदर्शनमात्रेण क्षणादावेशमाप्नुयात् ॥६॥
त्रिभांडकं विनादाय प्रत्येकं प्रस्थषट्ककम्।
उद्धृत्यमागताद्भांडादन्नमादाय कृत्तिकम् ॥७॥

कृत्वालंकृत्य पूर्वोक्तं स्थानदीपं प्रकल्प्य च ।
अन्य भांडद्वयं चापि नियवत्कल्प्य तत्वतः ॥८॥
रक्तपुष्पोपाहारैस्तानलंकृत्य विशेषतः ।
घटिका कृष्णजभस्मानां विपिनं सस्यरूपकम् ॥९॥
झष-सस्यं च शाकं च सर्वं संमिश्रितं तथा ।
शालिपिष्ट्चे न्यसेत्पीठे त्ववृतं षट्शतं क्रमात् ॥१०॥
मोदकं नारिकेलं च कदलीं च गुलं तथा ।
लाज-मुद्गं-तिलं-सक्तु-लोकसस्यं यथोचितम् ॥११॥
सर्वाण्येकानि विन्यस्य कृत्तिकाग्र भुवन्यसेत् ।
भांडद्वयं तु तत्पार्श्वे नयेदात्ताभिधं मुखम् ॥१२॥
उलूखले समासीनं वेत्र-छत्रोत्तमांगकम् ।
आर्द्रवासोपस्थवीत पश्येत्युक्त्वा तु तत्क्षणात् ॥१३॥
निर्धूमं निर्ज्वलंतं च किरेदुपरि पावकम् ।
आहूय साधकान्धीरानलंकृत्याभिनीयवत् ॥१४॥
दत्वा तैरुद्धृतेकाले अट्टहास-युतं-बलिम् ।
साधकैः सेवकैर्युक्तोवाद्य-घोष-युतोनरम् ॥१५॥
संवृतास्ते निशामध्ये नयेद्रुद्रभुवं ततः ।
दत्वा रुद्रबलिं तत्र त्रिवारं जप्यतं मनुम् ॥१६॥
ततस्तद्ग्रामसीमांतमाग्नेयीं ककुभं नयेत् ।
संजपन्भैरवं मंत्रं दशवारं दृढस्तथा ॥१७॥
तत्र रक्तं बलिं दद्यात्स पुर्नानियतः स्वयम् ।
स्नात्वा तीर्थेऽथ संपृक्तानयेयुक्ते क्षपां शनैः ॥१८॥
अथ बलिगमनादुलूखलस्थं दृढतरमनघो जपेन पश्चात् ।
परिग्रहमथवा कणांतरं वा शुभयुत भवने नयेयुरन्ये ॥१९॥
तमभिनिहितदीपं तत्क्षणादेव शांतम्
पथ भुवि धृत सर्वानन्वकृत्वापि कुर्युः ।
तदनु सतल भूमिं गोमयेनानुलिप्य
प्रसव-कुसुम-धूपैरंगबल्यादि कुर्यात् ॥२०॥
तदनु दिनमुहूर्ते भोजनैर्होममन्यै-
र्विधियुतमथ मंत्री कारयेद्दत्तमेव ।

सकलशमनवेक्ता विद्यया पार्श्वया वा
सरिविरि-विनिशातान्तस्यात्प्रतापेन सिध्यै ॥२१॥
एष रुद्रबलिर्नाम प्रशस्तं बलिकर्मणाम्।
नंद्युर्देवासुरगणा-यक्ष गंधर्व-राक्षसाः।
सर्वभूतपिशाचाद्याः सर्वरोगाश्च दारुणाः।
स्वयमेव हि संयांति होमेनापि विशेषतः ॥२२॥
अधीरोऽपण्डितो मंत्री बलि कर्म न कारयेत्।
कारयेद्यदि तस्यैव कालः स्निग्धो भवेच्छिवे। ॥२३॥

ओं ह्रीं श्रीं हालाहल-भैरव अखिल-लोक भैरव आं भैरव देवदत्तेऽस्मिस्तस्य साध्यस्य वाङ्मनस्त्वक्-चक्षुः-श्रोत्र-जिह्वा-घ्राण-प्राणानाकर्षयाकर्षय तोषय २ गर्जय २ साधय२ बोधय२ नादय२ सीदय२ ह्लः उच्चाटय२ शीघ्रमुच्चाटय एह्येहि मां रक्ष २ ममैतद्बलिं भक्ष २ ओंकार-भैरव भक्ष२ उन्मत्तभैरव भक्ष २ नीलभैरव भक्ष २ त्वरितं भक्ष २ ओं ह्रां ह्रीं स्वाहा।

कुकुटस्यपलं मीनमन्नं लाजं गुलं तथा।
नालिकेरं श्मशाने तु रुद्रस्य बलिमाहरेत् ॥२४॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे बलिविधिर्नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

ब्रह्मा-ऋषिश्चगायत्री-छंदो दैवतमुच्यते ।
क्षेत्रपाल-भैरवश्च क्षीं बीजं वह्निजायया ॥१॥
शक्तिः सर्वार्थसिध्यर्थे विनियोगो वरानने ।
क्षामित्यादि करन्यासमंगन्यासं च कारयेत् ॥२॥
शिरोमुखे तथा कर्णे-हृन्नाभ्याधार-जानुके ।
पादयोर्मंत्रवर्णांस्तु विन्यसेन्मंत्रवित्तमः ॥३॥

अथ ध्यानम् ॥

नीलांजनाद्रिनिभमूर्ध्वपिशंगकेश
वृत्ताग्निलोचनमुपात्त-गदा-कपालम् ।
आशां-वरं-भुजगभूषणमुग्रद्रंष्ट्रं
क्षेत्रेशमद्भुत-तनुं प्रणमामि देवम् ॥४॥

रक्तज्वाल-जटाधरं शशिधरं रक्तांग तेजोनिधिं
हस्तैः शूल-कपाल-पाश-डमरु लोकस्य रक्षाकरम् ।
निर्बाणं शुनवाहनं भुजहरमानंद कोलाहलम्
बंदे भूत-पिशाच नाथमनिशं क्षेत्रस्यपालं शिवे ॥५॥

क्षां बीजं पूर्वमुच्चार्य क्षेत्रपालाय वै पुनः ।
नम इत्युच्यते देवि अष्टाक्षरमिहोच्यते ॥६॥
लक्षमेकं जपेन्मंत्रं जुहुयात्तद्दशांशकम् ।
चरुणाघृत सिक्तेन ततः क्षेत्रेशमर्चयेत् ॥७॥
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय ध्यायेन्नाथपदांबुजम् ।
देहशुद्धादिकं कृत्वा स्नानं संध्यां समाप्य च ॥८॥
यागभूमिं ततोगत्वा अर्चयेन्मंडपं पुनः ।
"क्षां क्षेत्रपाल-अर्चनमंडपाय नमः"—इत्यभ्यर्च्य ।
"पृथिव्यै नमः"—इति भूमिमभ्यर्च्य ।
आसनं परिकल्प्याऽथ स्थित्वा तच्छोषणादिकम् ।
मातृकान्तं सुविन्यस्य ततः संकल्प्य पूजयेत् ॥९॥

संवित्सेवां ततः कृत्वा कलशं पूजयेत्सुधीः ।
शंख-पूजां समारभ्य प्रोक्ष्य पीठार्चनं चरेत् ॥१०॥
आधार-शक्तिमारभ्य दिग्गजांतं समर्चयेत् ।
अष्ट-कुल-पर्वतं च रत्नभूमिं ततः परम् ।
श्वेतच्छत्र चामरे च धर्माद्यष्टकमेव च ।
गुणत्रयं च पद्मं च कंद-नालसपद्मकम् ॥१२॥
शिव-धर्मकंदमर्च्य तच्छिव-ज्ञाननालकम् ।
वैराग्यकर्णिकां चैव निध्यष्टकमतःपरम् ॥१३॥
इच्छा-ज्ञानक्रियामेतच्चैव-पीठंततोऽर्चयेत् ।
षट्कोणाष्टदलं लिख्य चतुर्द्वार-युतं प्रिये ॥१४॥
भूपुरं विलिखेद्देवि क्षेत्रपालमनुक्रमात् ।
मूलमध्ये सुसंपूज्य उपचारैस्तु षोडशैः ॥१५॥
षट्कोणायनमभ्यर्च्य सर्वज्ञादि षडंग-षट् ।
क्षं पूर्वमनुलिख्याऽथ भैरवाय नमस्ततः ॥१६॥
अग्निकेशं करालं च घंटारवमतः परम् ।
महाकोपमतः पश्चात्पिशिताशनमेवच ॥१७॥
पिंगलाक्षं चोर्ध्वकेशं अष्टपत्रे समर्चयेत् ।
चतुर्द्वारसमायुक्त चतुरस्रं ततोऽर्चयेत् ॥१८॥
बीजं स्वबीज-युक्तं च ऐंद्रादीशांतकं यजेत् ।
भूपुरद्वयमध्ये तु वज्राद्यष्टकमर्चयेत् ॥१९॥
तत्तदावरणांते तु मूलं मध्ये त्रिरर्चयेत् ।
षोडशैरुपचर्याऽथ सर्वं मूलेन पूजयेत् ॥२०॥
गंधं पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ।
तांबूलं बलिदानं च क्षेत्रेशोद्वासनं क्रमात् ॥२१॥

ओं क्षां भित्ति २ तुष्ट २ कुरु २ कुल २ भंजय २ नर्तय २ विश २ महाभैरव क्षेत्रपाल बलिं गृह्ण २ हुं फट् स्वाहा ।

क्षेत्रपालं समुद्वास्य शिवोऽहमिति भावयेत ।
शृणु वक्ष्यामि ते देवि रहस्यं सावधानतः ।
गृहे ग्रामांतरे चैव देशे देशांतरेषु च ॥१॥

मंत्री प्रवेशकाले तु शुद्धोऽशुद्धोऽथवापि स :
त्रिवारं प्रजपेद्भक्त्या क्षेत्रपालस्य सूक्तकम् ।।२।।
जप्तमंत्रस्तु यो गच्छेद्विदेशे यत्र कुत्रचित् ।
तत्राप्यपजयं नास्ति स्वप्नेऽपि च नसंशयः ।।३।।

सूक्तेन संमंत्र्य सहस्रवारं तत्कुक्कुटांडं लवणांबु मध्ये ।
संस्थाप्य शत्रोर्द्विमलं च रात्रौ खनेत् श्मशाने रिपुमारणाय ।।४।।
आदाय नीरं त्वभिमंत्र्य मंत्री सहस्रमेकैक-दिनं त्रिरात्रम् ।
सन्तानदं तापहरं-समस्तदोषापहं पुष्टिकरं च वश्यम् ।।५।।

अभयाष्टकमादाय सवर्णं सप्रमाणकम् ।
"क्षेत्रस्यपतिना वयं हितेनेव यजामसि
गामश्वं पोषयित्वा सनो मृडातीदृशे"[1] ।
संस्थाप्याभ्यर्च्य कट्वाद्यैर्नवपात्रे तु मृण्मये ।।६।।
चौरेणापि हृतं वस्तु तरसादापयेत्स्वयम् ।
उक्तेति साध्यमाकर्ष पल्लवं तदनंतरम् ।।७।।
मंत्रावसाने संयोज्य जपेत्सूक्तं सहस्रकम् ।
पंचांगं प्रजपेद्देवं पश्चिमाभिमुखं स्पृशन् ।।८।।
स चौरः पीड़ितोऽनेन स्वयं दास्यति निश्चयम् ।
न दत्तश्चेत्पुनः कुर्याज्जपेदेकाग्रमानसः ।।९।।
सचौरस्तद्दिनादेव ज्वरग्रस्तो भवेद् ध्रुवम् ।
प्लोष्यते द्विदिनाच्चोरस्त्रिदिनान्म्रियते ध्रुवम् ।।१०।।
तत्पालनं च पंचाहात्तद्भ्राताष्टदिनात्पिता ।
दशाहात्तस्य वंशस्य मरणं याति सुंदरि ।।११।।
तस्मादेवं प्रयत्नेन जपेत्सूक्तमिति क्रमात् ।
यस्तस्य सर्वसिद्धिः स्यात् सर्वदेशे च सर्वदा ।।१२।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे क्षेत्रपालविधिर्नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।।३६।।

---

१ ऋक् ३-८-९ ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अथ वडवानलभैरव प्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

वडवानल मंत्रस्य रहस्यं वच्मि तेऽम्बिके ।
मंत्रस्मरणमात्रेण वह्निरुज्जृंभते ध्रुवम् ॥१॥
जयेकृतेऽखिलान् लोकान्दहत्येव हि निश्चयः ।
तादृशं दुःसहं मंत्रं सावधानमनाः शृणु ॥२॥
वडवानल-मंत्रस्य भास्करो ऋषिरुच्यते ।
पंक्तिःछंदस्तथा देवो भगवान्वडवानलः
रं वीजमाहुतिः शक्तिर्विनियोगस्त्वभीष्टके ।
रामित्यादि करन्यासं षडंगं च तथाम्बिके ॥४॥

अथ ध्यानम् ॥

त्रिनयनमरुणंत्वाबद्धमौलिं सुशुक्लां
शुकमरुणमनेका-कल्पमंभोजसंस्थम् ॥
अभिमत वर शक्ति स्वस्तिकाभीतिहस्तं
नमत कनकमालालंकृतांसं कृशानुम् ॥५॥

ओं [1]त्वमग्नेद्युभिस्त्वमाशुशुक्षणि०—ऋक् ॥

पंचाष्टकोष्टेषु यथाक्रमेण वैश्वानरं मंत्रमथो लिखित्वा ।
रेखाग्रशूलं च तदग्र-साध्यं तारावृतं तद्वडवाग्नि-चक्रम् ॥६॥

एतद्यंत्रं समालिख्य लोहे ताम्रेऽथ सीसके ।
आवाह्य पूजयेद्वह्निं आग्नेयाभिमुखांबिके ॥७॥
शत्रूवसून्संहराग्ने तद्देहं दह सत्वरम् ।
फट् स्वाहेत्यग्नि-मंत्रस्य पल्लवं समुदीरितम् ॥८॥
सपल्लवं जपेन्नूनमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
दग्धयोगे खनेद्रात्रौ श्मशाने बलिपूर्वकम् ॥९॥

---

१ ऋक् २-५-१७

ततः स्नात्वा जपेत् मंत्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
तत्क्षणाद्वैरि-वेश्मानि निर्दग्धानि भवंति हि ॥१०॥
तत्पश्चादुपसंहारः कर्तव्यश्च वरानने ।
उपसंहार-मंत्रस्य सविता-ऋषिरुच्यते ॥११॥
छंदोऽत्यष्टि ततो देवोभगवान्-हव्यवाहनः ।
ऋकारं बीजमित्युक्तं शक्तिर्वैश्वानरी-जया ॥१२॥
अनलास्त्रोपसंहारे विनियोगस्ततः प्रिये ।
पादैरर्धैः करन्यासं षडंगन्यासकं तथा ॥१३॥
सशराय सशार्ङ्गाय शक्तिहस्ताय वन्हये ।
कपालिने नमस्तुभ्यं मत्पापं दह मुंच तम् ॥१४॥

"ओं भूर्भुवः स्वः [1]अग्निरस्मि जन्मना जातवेदाः० —ऋक् ॥
भूर्भुवः स्वरों मत्पापं दह मुंच तं स्वाहा" ।

जपेदष्टोत्तरशतं ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।
आग्नेयास्त्रस्य मंत्रस्य परब्रह्म ऋषिः स्मृतः ।
छंदस्तु देवी गायत्री देवता पावकोऽबिके ॥१५॥
ओंकारं बीजमित्युक्तं शक्तिर्व्याहृतिरुच्यते ।
स्वेच्छा-संहार-सिध्यर्थे विनियोगस्ततः परम् ॥१६॥
स तार व्याहृतिवर्णैरनुलोम विलोमकैः ।
षट्भिरेतैः करन्यासं षडंगं च यथाविधि ॥१७॥

वाणाग्रकोणस्थितमेध्मानं परान्दहंतं स्वमरीचकोणैः ।
शोणाबरं चन्द्रकलावतंसं नमामि देवं वडवामुखाग्निम् ॥१८॥
"शोचिष्केशाय विद्महे वैश्वानराय धीमहि तन्नः शुक्रः प्रचोदयात्" ॥१९॥

त्रिकोणे वह्नि बीजं च वसुकोणेऽस्त्र मंत्रकम् ।
पदशोवाह्यके साध्यः प्राणनावाह्य पावकम् ॥२०॥
मनसा तरसा साध्य पश्चादस्त्र-मनुं जपेत् ।
मंत्र स्मरण-मात्रेण वैरिणां मरणं भवेत् ॥२१॥
एतदेवं महाघोरं अव्याहत-मनुत्तमम् ।
अतंत्रितोरिदुष्टाना ममोघं जयवर्धनम् ॥२२॥

---

१ ऋक् ३-१-२७

यः सकृत्प्रजपेत्तस्य सर्वं सिध्यति निश्चयः ।
पर्वते विपिने घोरे विजने दुर्गमे तथा ॥२३॥
आग्नेयास्त्रं जपेन्मंत्री तस्य नैवास्ति तद्भयम् ।
जाज्वल्यमानैस्तु बहिर्भटैस्तु संजातवेदाभिवृतस्तदानीम् ।
सर्वत्ररक्षेदथ सोऽपि पश्चात् कुर्याद्दिने ब्राह्मणभोजनं च ॥२४॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वर सम्वादे बडवानल-भैरव-विधिर्नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

दिक्पालप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

वक्ष्यामीन्द्रादि-दिक्पालान्महाबल-पराक्रमान् ।
सर्वलोकेश्वरान्वीरान् साधकाभीष्टदायकान् ॥१॥
मंत्रस्य लोकपालानां घोररुद्र ऋषिः स्मृतः ।
अनुष्टुबुष्णिक् त्रिष्टुप्-प्रकृतिर्गायत्रमेव च ॥२॥
जगती-वृहती-पंक्तिः क्रमाच्छंदोऽभिधीयते ।
देवतास्त्वथ दिक्पालास्तथा वीजानि शांभवि ॥३॥
स्व-स्व-वाहन-संरूढान् स्व-स्वायुध समन्वितान् ।
स्व-स्वालंकार संयुक्तान् स्तौम्यहं लोकनायकान् ॥४॥

"ओं नमो भगवते लां इन्द्राय वज्रहस्ताय सुराधिपतये एरावत-वाहनाय सशक्तिकाय सपरिवाराय हुं फट् स्वाहा" ॥१॥

"ओं नमो भगवते रामग्नये शक्ति-हस्ताय तेजोऽधिपतये मेषवाहनाय सशक्तिकाय सपरिवाराय हुं फट स्वाहा" ॥२॥

"ओं नमो भगवते हां (टां) यमाय दंडहस्ताय प्रेताधिपतये महिषवाहनाय सशक्ति० हुं फट् स्वाहा" ॥३॥

"ओं नमो भगवते षां (क्षां) निर्ऋतये खड्गहस्ताय रक्षोऽधिपतये नरवाहनाय सशक्ति० हुं फट् स्वाहा" ॥४॥

"ओं नमो भगवते वां वरुणाय पाशहस्ताय पयोऽधिपतये मकरवाहनाय सशक्ति० हुं फट् स्वाहा" ॥५॥

"ओं नमो भगवते यां वायवे ध्वजहस्ताय प्राणाधिपतये रुरू-वाहनाय सशक्ति० हुं फट् स्वाहा" ॥६॥

"ओं नमो भगवते सां सोमाय गदा-हस्ताय नक्षत्राधिपतये अश्ववाहनाय सशक्ति० हुं फट् स्वाहा" ॥७॥

"ओं नमो भगवते शं (हां) ईशानाय त्रिशूलहस्ताय बिद्याऽधिपतये वृषभवाहनाय सशक्तिकाय सपरिवाराय० हुं फट् स्वाहा" ॥८॥

एतानि दिव्यमंत्राणि स्वेष्ट-मंत्रावसानके ।
योज्य मंत्री जपेदेवं प्रयोगाष्टक-सिद्धये ।
आदौ बीजानि संयोज्य जपेन्मंत्रं यथाविधि ।
तत्रैवाष्ट-महाकर्म-सिद्धयः सिध्यंति ध्रुवम् ।।६।।
स्तंभनाकर्ष-संहार-विद्वेष-प्लावनानिच ।
उच्चाट-मोह-दंडानि वासवादि शिवांतकम् ।।७।।
मूलं विनानेन दिशापतीनां मंत्रप्रयोगेण सपल्लेवन ।
कुर्यान्मनीषी सततं वरेण्ये कर्मस्वशेषेषु यथाक्रमेण ।।८।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे दिक्पालविधिर्नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।।३८।।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ व्याधिप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ।।

अथ वक्ष्यामि गुह्यं ते दारुणं व्याधिकारणम् ।
सर्ववैरिहरं देवि सर्वजंतुविनाशनम् ।।१।।
अतोऽस्य व्याधिमंत्रस्य वीरभद्रोऋषिः स्मृतः ।
छंदोऽनुष्टप् तथा देवो महाव्याधिकरः शिवः ।।२।।
व्यांकारं वीजमित्युक्तं हुं शक्तिस्तदनंतरम् ।
विनियोगोऽनिशं भक्त-शत्रुनाशाय-पीडने ।।३।।
व्यामित्यादि करन्यासं षडंगं तदनंतरम् ।
त्रिपादं त्रिभुजं भीमं त्रिमूर्धानं त्रिलोचनम् ।।४।।
त्रिशूलासि-कपालाढयं ज्वालास्यं वक्त्रदंष्ट्रकम् ।
सप्तशृंगं वसा-मांस-श्वचर्माम्बरधारिणम् ।।५।।
अशेषांग-व्रणोद्भूत-कृमिजाल-समाकुलम् ।
वक्रनासं वृहत्स्कन्धं क्षुधया पीडितोदरम् ।।६।।
वैरिणां देहमालिंग्यमक्षयंतं-विकर्णकम् ।
कषाय कुसुमानीलं महाव्याधिकरं शुभे ।।
चिरं ध्यात्वा जपेन्मंत्रं सहस्रं शत्रुदिङ्मुखः ।।७।।

"ओं नमो भगवते रुद्राय महाव्याधिकराय देवदत्तं पीडय हुं फट् स्वाहा" ।

तिर्यगूर्ध्वं चतुर्दश रेखा मध्यतोविलिखेदथ मंत्रम् ।
बाह्य शूल तदग्रक साध्यं रोग चक्रमिदं रिपु नाशम् ।।८।।
यंत्रमालिख्य सीसे वा साध्यवृक्षेऽथवांबिके ।
आराध्य चाष्टचूर्णेन लिप्त्वा जप्त्वा खनेन्निशि ।
श्मशाने बलिपूर्वंतु पुनः स्नात्वा जपेत्तथा ।।१०।।

जपमेवं त्र्यहं कुर्याच्छत्रूणां रोगवृद्धये ।
अहेतुकं महारोगं रिपुः संप्राप्य नश्यति ॥११
यत्साध्यं लिख्यतं व्याधेस्तत्तद् व्यधिर्भविष्यति ।
तद्रोगं रिपुराश्रित्य सुभगोऽनुभवेद् ध्रुवम् ॥१२॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे व्याधिकल्पनं-नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

अथ मृत्युप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

अथ मृत्यु-प्रयोगस्य रहस्यं वच्मि तेऽम्बिके ।
स्मरणादस्य मंत्रस्य मृत्युराविर्भवेद् ध्रुवम् ॥१॥
अतोऽस्य मृत्युमंत्रस्य ऋषिर्नारायणः स्मृतः ।
उष्णिक्छंदस्तथा देवो मृत्युर्जीवांतकोयमः ॥२॥
हुं कारं बीजमित्युक्तं ह्रैं कारं शक्तिरीरितम् ।
नियोगो जीवसंहारे डामित्यादि करांगकम् ॥३॥

रक्ताक्षं भीमदंष्ट्रं प्रकटितवदनं वक्रनासं कराब्जैः
शूलं-पाशं-कपालं-फणि-मुसल-हल-वज्र-खेटं वहंतम् ।
भीमं कालाभ्रनीलं भृकुटितनयनं सैरिभोत्स्कंधरूढं
नाना-भूतैः-करालैः-परिवृतमखिल-प्राणकालं भजामि ॥४॥

"ओं नमो भगवते ङा मृत्यवे यमाय सर्वजीवहरणाय उग्राय दण्डहस्ताय ज्ञं ह्रैं देवदत्तं गृह्ण २ सर्वलोक भयंकराय नाशय २ ह्रैं ह्रुं फट् स्वाहा"।

य इदं कालमंत्रं तु निशामध्ये युतं पुनः ।
जप्त्वा ततो जपेन्मंत्रं सहस्रं नामपूर्वकम् ।
तज्जपस्यावसाने तु स रिपुर्मरणं व्रजेत् ।
कृते पंचायुते मंत्रे रिपोः पंचशतान्मृतिः ।
लक्षे कृते शतादेव तद्द्वये स्मरणाद्भवेत् ॥६॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे मृत्युविधिर्नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

श्री देव्युवाच ॥

सर्वज्ञ सर्वमंत्रस्य सर्वाचार्य शिव प्रभो ।
शारभं कवचं दिव्यं सर्वरक्षाकरं परम् ॥१॥
वज्रपंजर नामाख्यं वद मे करुणाकर ।

श्रीशिव उवाच ॥

वक्ष्यामि शृणु देवेशि सर्वं लक्षणमद्भुतम् ।
शारभं कवचं नाम्ना चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥२॥
शरभ-सालुव-पक्षिराजाख्य कवचस्य तु ।
सदाशिव ऋषिश्छंदो वृहती शरभेश्वरः ॥३॥
देवता प्रणवं वीजं प्रकृतिः शक्तिरुच्यते ।
कीलकं पक्षिराजाय सर्वरक्षाकरोविभुः ॥४॥
पर-प्रयोग-शांत्यर्थं सर्वशत्रुनिवृत्तये ।
चतुर्वर्गार्थ-सिध्यर्थे विनियोगोऽथ भावना ॥५॥

ध्यानम् ॥

रक्ताभं सुप्रसन्नं त्रिनयनममृतोन्मत्त-भाषाभिरामम्
कारुण्यांभोधिमीशं वरदमभयदं चन्द्ररेखावतंसम् ।
शंख-ध्माताखिलाशा प्रतिहतविधिना भासमानात्म-भावम्
सर्वेशं सालुवेशं प्रणतभयहरं पक्षिराजं नमामि ॥६॥

ओं श्री शिवः पुरतः पातु मायाधीशस्तु पृष्टतः ।
पिनाकी दक्षिणं पातु वामपार्श्वं महेश्वरः ॥१॥
शिखाग्रं पातु मे शंभुर्निटिलं पातु शंकरः ।
ईश्वरो वदनं पातु भ्रवोर्मध्यं पुरांतकः ॥२॥
भ्रुवौ पातु मम स्थाणुः कपर्दी पातु लोचने ।
शर्वो मे श्रोत्रयोः पातु वागीशः पातु लंबिकाम् ॥३॥

नासयोर्मे वृषारूढो नासाग्रं वृषभध्वजः ।
स्मरारिः पातु मे ताल्वेरोष्टयोर्भक्तवत्सलः ॥४॥
जिह्वां मम सदा पातु सर्वविद्या प्रदायकः ।
पातु मृत्युंजयोदन्तान् चिबुकं पातु भूतराट् ॥५॥
परमेशः कपोलौ मे त्रिकं पातु कपाल भृत् ।
कंठं पशुपतिः पातु शूली पातु हनू मम ॥६॥
स्कंधद्वयं हरः पातु धूर्जटि पातु मे भुजौ ।
भुजसंधि महादेव ईशानो मे प्रकूपरे ॥७॥
मध्यसंधी जगन्नाथः प्रकोष्ठे चन्द्रशेखरः ।
मणिबन्धौ त्रिनेत्रो मे भीमः पातु करस्थले ॥८॥
करपृष्ठे मृडः पातु रुद्रोंऽगुष्टद्वये मम ।
उमासहायस्तर्जन्यौ भर्गो मे पातु मध्यमे ॥९॥
अनामिके करालास्यः कालकंठः कनिष्ठिके ।
गंगाधरोऽङ्गुलीपर्वाण्यप्रमेयोनखानि मे ॥१०॥
वक्षस्तत्पुरुषः पातु कक्षे दक्षाध्वरांतकः ।
अघोरो हृदयं पातु वामदेव स्तनद्वयम् ॥११॥
भालदृक् जठरं पातु नाभिं नारायणप्रियः ।
कुक्षौ प्रजाकरः पातु कुक्षिपार्श्वे महाबलः ॥१२॥
सद्योजातः कटी पातु पृष्टभागं तु भैरवः ।
मोहनोजघनं पातु गुदं मम जितेन्द्रियः ॥१३॥
ऊर्ध्वरेता लिङ्गदेशं वृषणं विश्वमोहनः ।
ऊरुद्वयं भवः पातु जानुयुग्मं भवांतकः ॥१४॥
हुंकारः पातु मे जंघे फट्कारो मम गुल्फके ।
वषट्कारः पादपृष्ठे वौषट्कारोंऽघ्रिणस्तले ॥१५॥
स्वाहाकारोंऽगुलीपार्श्वे स्वधाकारोङ्गुलीर्मम ।
त्वरितः सर्व संधीन्मे रोमकूपाणि सिंहजित् ॥१६॥
त्वचं पातु मनोवेगः कालजिद् रुधिरं मम ।
पुष्टिदः पातु मे मांसं मेदो मे स्वस्तिदोऽवतु ॥१७॥

सर्वात्मास्थिचयं पातु मज्जानं मे जगत्प्रभु ।
शुक्रं वृद्धिकरः पातु बुद्धिं वाचामधीश्वरः ॥१८॥
मूलाधारांबुजं पातु भगवान् शरभेश्वरः ।
स्वाधिष्टानमजः पातु मीणपूरं हरिप्रियः ॥१६॥
अनाहतं सालुवेशोविशुद्धं जीवनायकः ।
सर्वज्ञानप्रदोह्याज्ञां ललाटं मे सदाशिवः ॥२०॥
ब्रह्मरंध्रं महादेवः पक्षिराजोऽखिलात्मवान् ।
सर्वलोकवशीकारः पातु मां परगर्वजित् ॥२१॥
वज्र-मुष्टि-वराभीतिहस्तः कालाभ्रसन्निभः ।
विजया सहितः पातु चैंद्रीं ककुभमग्निजित् ॥२२॥
शक्ति-शूल-कपालासिहस्तः सौदामिनीप्रभः ।
जयायुतो महाभीमः पातु वैश्वानरीं दिशम् ॥२३॥
दंडासि-मुसलं-हाल-पाशांकुश-करांबुजः ।
यमांतकोऽजितायुक्तोयाम्यीं पातु दिशं मम ॥२४॥
खड्ग-खेटासि-परशुहस्त-शत्रुविमर्दनः ।
अपराजितया युक्तः सदाव्यान्नैर्ऋतिं दिशम् ॥२५॥
पाशांकुश-धनुर्बाण-पाणि-घोणियुतोऽग्रकः ।
हरिद्राभोऽनिशं पायाद्वारुणीं दिशमात्मजित् ॥२६॥
ध्वज-चक्रयुतोदारिभुजो दुर्गा युतोऽर्गलः ।
चंडवेगः शिवः पायात्सततं मारुतीं दिशं ॥२७॥
गदास्त्रग्वरदाभीति करांभोज श्रियायुतः ।
कनकाभो महातेजः पातु कौवेरकीदिशम् ॥२८॥
त्रिशूलाहि-कपालाग्निदोस्तलोविद्ययायुतः ।
भस्मोद्धूलितसर्वांग ऐशीं पात्वपराजितः ॥२६॥
जपास्त्रक्-पुस्तकांभोज कमण्डलुं करांबुजः ।
ऊर्ध्वं पातु गिरायुक्तः सर्वभूतहितेरतः ॥३०॥
शंख-चक्र-गदाऽभीति-हस्तः पद्मायुतोऽव्ययः ।
कालांजनसमोनीलः पातालं पात्वनारतम् ॥३१॥

अनुक्ता विदिशः पातु सालुवो नारसिंहजित् ।
शरभः पातु संग्रामे युद्धे वैरिकुलांतकः ३२॥
सर्वसौभाग्यदः पातु जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्तिषु ।
सर्वसंपत्प्रदः पातु धनधान्यादिकं मम ॥३३॥
संतानदः सुतान्पातु दारानायुष्करोऽनिशम् ।
बंधून्वृद्धिकरः पातु गृहं सर्ववशंकरः ॥३४॥
ग्रामं ग्रामेश्वरः पातु राज्यं पातु दिगंबरः ।
राष्ट्रं शांतिकरः पातु राजानं धर्मशासकः ३५॥
मार्गं दुष्टहरः पातु धर्मकर्माणि भैरवः ।
बटुकः पातु मे सर्वं त्र्यवस्थासु भयेषु च ॥३६॥
स्पर्श-वीक्षण-संयुक्तः प्राणरक्षां मनोजवः ।
[1]प्रधानमूर्तिभावश्च प्रासादेष्वाशुसिद्धिकृत् ॥३७॥
साधकः प्रणवं बीजं नमो भगवतेति च ।
प्रतिनाम चतुर्थ्यंतं स्पर्शं इत्यभिधीयते ॥३८॥
द्विर्ज्वल-प्रज्वले साध्यं साधय द्विर्द्वि रक्ष तत् ।
सर्वदुष्टेभ्यो हुं फट् स्वाहान्तं युग् वीक्षणम् ॥३९॥
स्पृशन् पश्यन् जपं कृत्वा प्रतिस्थानं समाहितः ।
प्रार्थयेदखिलं स्वेष्टं हृदिस्थं सालुवेश्वरम् ॥४०॥
ये ग्रामघातकाः क्रूराः कपटा दौष्टिका भटाः ।
तस्कराः शत्रवः क्रुद्धा वधे सक्ताः पलाशनाः ॥४१॥
छद्मचाराः विटाः भ्रष्टास्दिवाचर-निशाचराः ।
ते सर्वे पक्षिराजस्य पक्षवातपराहताः ॥४२॥
स्त्री-बाल-सहिताः क्षिप्रं पितृ-मातृ कुलान्विताः ।
भग्नचित्ता गतस्थाना यांतु देशांतरं स्वयम् ॥४३॥
ये च दुष्टग्रहा रक्षः-पिशाचाः देवयोनयः ।
चतुःषष्टिगणाः सप्तसप्तत्युन्मादका ग्रहाः ॥४४॥
अष्टाशीति महाभूताः सप्तकोटि महाग्रहाः ।
नवति ज्वरभेदाश्च शत-भेदाश्च कृत्तिकाः ॥४५॥

---

१. ओं नमो भगवते श्री शिवाय मम पुरतः ज्वल २ प्रज्वल २ साध्यं साधय २ सर्वदुष्टेभ्यो हुं फट् स्वाहा—श्री शिवः पुरतः पातु ॥ एवं सर्वत्र० ।

पंचाशद् गणनाथाश्च नियुता कृत्रिमा ग्रहाः ।
प्रेतारूढास्त्रयस्त्रिंशत्पिंडदानपरायणाः ॥४६॥
अयुतं क्षुद्र-भेदाश्च चत्वारिंशच्छिवाह्वयाः ।
द्वात्रिंशद्वह्निवक्त्राश्च त्रिंशन्मार्जारवक्त्रकाः ॥४७॥
चतुःषष्ट्याखुरूपाश्च ये चान्ये क्षुद्रयोनयः ।
ते सर्वे सालुवेशस्य शंख-निःस्वन-मोहिताः ॥४८॥
विषण्णाः खिलतःस्वांताः प्राण-त्राण-परायणाः ।
गच्छंतु संप्रयोक्तारो देशांतरमनिच्छया ॥४९॥
ये च मूषक-वैडालाः शुनकोरगवृश्चिकाः ।
आशीविषाः शिवा व्याला व्याघ्र-ऋक्षेभसूकराः ॥५०॥
गृध्राः श्येनाः खगाः कंका दंशका भ्रंशका मृगाः ।
एते शरभहस्ताग्र-नख-क्षतविमोक्षगाः ॥५१॥
स्रवद्रक्ततलासिक्ताः शिलातलनिपीडिताः ।
संभिन्नतनवः शीघ्रं नश्यंत्वखिलदुश्चराः ॥५२॥
न दंशंतूरगाः क्वापि नातिवातोऽपि वीजतु ।
न दहत्वसहो वह्निरायांत्वापो न चाधिकाः ॥५३॥
न वर्षत्वतिवृष्टिश्च न पतत्वशनिः क्वचित् ।
नाक्रामत्वपमृत्युश्च नास्त्युत्पातं कदाचन ॥५४॥
न म्रियंत्वंभसि जना न भवत्वशुभं क्वचित् ।
न वदंत्वसहं वाक्यं जंतवो मम देशके ॥५५॥
नास्ति वैरं तु जंतूनामन्योऽयं राजके मम ।
भवंतु सुखिनः सर्वे नार्यः संतु पतिव्रताः ॥५६॥
सर्वाः सूयंतु सत्पुत्रान् पुत्रीश्च शुभलक्षणाः ।
सर्वे देवाश्च नंदंतु संतु कल्याणकारकाः ॥५७॥
राजन्वती मही चास्तु राजा भवतु धार्मिकः ।
ससंस्रवं-पयोगावः फलंत्वोषधयोऽधिकम् ॥५८॥
भवंतु फलदा वृक्षाः सिद्धिर्भवतु मेऽखिला ।
ममास्तु तरसा नूनमात्मज्ञानमचंचलम् ॥५९॥

महाक्रोध-महालोभाः समदा लोभ मत्सराः ।
न संतु क्वापि मे सर्वे भगवन्करुणानिधे ॥६०॥
शरभेश्वर विश्वेश पक्षिराज दयानिधे ।
देहि मे ह्यचलां भक्तिं प्रणतोऽस्मि पुनः पुनः ॥६१॥
गौरिवल्लभ कामारे कालकूटविषादन ।
मामुद्धरापदंभोधेस्त्रिपुरघ्नांतकांतक ॥६२॥
सालुवेश जगन्नाथ सर्वभूतहिते रत ।
पाहि मां तरसा चौरान् दुष्टान्नाशय नाशय ॥६३॥
कालभैरव विश्वेश विश्वरक्षापरायण ।
रक्ष मूषक-चौरेभ्यो धान्यराशिमिमं प्रभो ॥६४॥
पक्षिराज महादेव प्रणतार्तिविनाशन ।
मदीयानि पदार्थानि नित्यं पालय पालय ॥६५॥
सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वदुष्टविनाशन ।
तस्करेण हृतं वस्तु द्रुतं दापय दापय ॥६६॥
ये मर्मवादिनः क्षुद्राः छिद्रोपद्रवकारकाः ।
सर्वाचार-परिभ्रष्टा मानहीनाश्च रोधकाः ॥६७॥
ते सर्वे सालुवेशस्य मुसलायुधचूर्णिताः ।
नश्यंतु निमिषार्धेन पावकावृततूलवत् ॥६८॥
ये जना द्रोहिणोऽश्लाघ्यास्त्वकालोचितभाषणाः ।
सत्कर्म विघ्नकर्तारः शांत भर्त्सापरायणाः ॥६९॥
ते सालुवेश हस्ताग्र-खड्ग निर्भिन्नदेहिनः ।
पतंतु भूतले याम्यां प्राणास्तेषां प्रयांत्वरम् ॥७०॥
त्वदंघ्रि ध्यान निर्दग्ध पापकोशाय मंत्रिणे ।
मह्यं द्रुह्यंति ये तेषां विभवानि क्षयंत्वरम् ॥७१॥
त्वदाचारं परं भक्तं साधकानां विवेकिनम् ।
य आक्रमंति संग्रामे ते गच्छंतु पराहताः ॥७२॥
त्वदीयेनैव मार्गेण संचरंतं जपातुरम् ।
ये वदंति परीवादं भ्रांताः शीघ्रं भवंतु ते ॥७३॥

त्वद्दासममलं धीरं ये मां तर्जयितुं बलात् ।
मनसा ये न मन्यंते तत्स्वांतं भ्रमतु क्षणात् ॥७४॥
मनसा कर्मणा वाचा ये कुर्वंत्यतिदुःसहम् ।
ते महाशोक रोगाब्धौ पतंत्वाशु शिवाज्ञया ॥७५॥
मदीयानि पदार्थानि गृहीतुं योऽवलोकते ।
तत्क्षणादेव नष्टाक्षो भवत्वाश्वीश्वराज्ञया ॥७६॥
मदीयं द्रव्यमादाय ये गच्छंतीह तस्कराः ।
सिंहारि-पाश-संबद्धास्ते चरंतु प्रदक्षिणम् ॥७६॥
सीमातीताश्च ये चौरा गृहीतद्रव्यसंचयाः ।
अवशावयवास्ते तु आगच्छंतु शिवाज्ञया ॥७८॥
तस्कराः निम्नगातीताः स्वांत-धान्य-धनाधिकाः ।
पक्षिराजांकुशाकृष्टाः समागच्छन्तु मद्गृहम् ॥७९॥
समाहृत-पदार्थाढ्या देशातीताश्च तस्कराः ।
शरभेश-हलाकृष्टास्ते आगच्छंतु वै द्रुतम् ॥८०॥
चौरा ग्रहीतुमुद्युक्ताः समागच्छंति मद्गृहे ।
ते सालुवेशपक्षोत्थवातैर्गच्छंतु सत्वरम् ॥८१॥
शांतं विवेकिनं भक्तं त्वदंघ्रि ध्यानतत्परम् ।
ब्रुवंति ये सहप्राणास्तेषां यांति यमीं पुरीम् ॥८२॥
षट्त्रिंशत्कोष्टके यंत्रे रेखाशूलाग्रसाध्यके ।
स्वेच्छामंत्रं लिखित्वा तु जपेदाराध्य साधकः ॥८३॥
मध्ये पाशांकुशे वह्नि साध्य नाम लिखेत्क्रमात् ।
उदङ्मुखः सहस्रं तु रक्षणाय जपेन्निशि ॥८४॥
नष्टाहरणके पंचरात्रं पश्चिम-दिङ्मुखः ।
मारणे सप्तरात्रं तु दक्षिणाभिमुखो जपेत् ॥८६॥
रोगनिग्रहणे चाष्टरात्रमाग्नेयदिङ्मुखः ।
इति गुह्यं महामंत्रं परमं सर्वसिद्धिदम् ॥८६॥
शरभेशाख्य-कवचं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
प्रत्यहं प्रतिपक्षं वा प्रतिमासमथापि वा ॥८७॥

यो जपेत्प्रतिवर्षं वा वरेण्यः स शिवो भवेत् ।
एवं हि जपतः पुंसां पातकं चोपपातकम् ।।८८।।
तत्सर्वं लयमाप्नोति रविणा तिमिरं यथा ।
दशाब्दं यो जपेन्नित्यं प्रातरुत्थाय साधकः ।।८९।।
सर्वसिद्धिं समाश्लिष्य देहांते स शिवो भवेत् ।
त्रिकालं ध्यानपूर्वं तु जपेद् द्वादश-वार्षिकम् ।।
कायेनानेन सो देवि जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।।९०।।
शतवारं जपेन्नित्यं मंडलं यो वरानने ।
सोऽणिमादिगुणान् प्राप्य विचरेत्स्वेच्छया सदा ।।९१।।
अतलादिधरण्यादि भुवनानि चतुर्दश ।
विचरेत्कामतः सर्वैः पूज्यमानो यथासुखम् ।।९२।।
त्रिमासं यो जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
सहसा शरभेशस्य सारूप्यं लभतेऽम्बिके ।।९३।।
षण्मासं यो जपेद्देवि प्रयतस्तु दृढव्रतः ।
मद्रूपधारको मर्त्यः सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।।९४।।
मम लोके च संपूज्यो विष्णुलोके विशेषतः ।
ब्रह्मलोके च रमते सर्वत्र न निवार्य्यते ।।९५।।
इंद्राग्नियमरक्षेशजलेशपवनैः सह ।
सोमेशैः सह रुद्रेशैर्दिशांपालैः स पूज्यते ।।९६।।
आदित्य-सोम-पृथ्वीज-बुध-श्री-गुरु-भार्गवैः ।
पूज्यते स ग्रहैः सर्वैस्सशनि-राहु-केतुभिः ।।९७।।
भृग्वंगिरः-पुलस्त्यैश्च पुलहात्रि-मरीचिभिः ।
दक्ष-कश्यप-भृग्वाद्यै र्योगिभिश्च स पूज्यते ।।९८।।
भैरवैर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्बालखिल्यकैः ।
दिग्गजैश्च महानागैर्दिव्यास्त्रैर्दिव्यवाहनैः ।।९९।।
माहेश्वरैर्महारत्नैः कामधेनु-सुरद्रुमैः ।
सरिद्भिः सागरैः शैलैर्देवताभिस्तपोधनैः ।।१००।।
दानवै राक्षसैः क्रूरैः सिद्ध-गंधर्व-किन्नरैः ।
यक्ष-विद्याधरैर्नागैरप्सरोभिश्च पूज्यते ।।१०१।।

अपस्मार-ग्रहैर्भीमैरुन्मत्तैर्ब्रह्मराक्षसैः ।
वेतालैः खेचरैर्मर्त्यैः कूष्मांडै राक्षसग्रहैः ॥१०२॥
ज्वालावक्त्रैस्तमोहारैः स्त्रीग्रहैः पावकग्रहैः ।
भूत-प्रेत-पिशाचाद्यैर्ग्रहैः सर्वैः स पूज्यते ॥१०३॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च जातिभिः ।
पशु-पक्षि-मृग-व्यालैः पूज्यते सर्वजंतुभिः ॥१०४॥
किमत्र बहुना देवि तव वक्ष्येऽहं यथातथम् ।
मया च विष्णुना चैव विश्वकर्त्रा च कल्प्यते ॥१०५॥
भवत्या च गिरा लक्ष्म्या ब्रह्माण्याद्यष्टमातृभिः ।
गणेश्वरादियोगीन्द्रैर्योगिनीभिः स पाल्यते ॥१०६॥
य इदं प्रजपेद्भक्त्या तस्यासाध्यं न विद्यते ।
कवचेन्द्रं महामंत्रं जपेत्तस्मादनुत्तमम् ॥१०७॥
उच्चाटने मरुद्वक्त्रो विद्वेषे राक्षसाननः ।
प्रागाननोऽभिवृद्धौ तु सर्वेष्वीशानदिङ्मुखः ॥१०८॥
यो जपेत्कवचं नित्यं त्रिकालं ध्यान-पूर्वकम् ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति सहसा साधकोत्तमः ॥१०९॥

श्रीदेव्युवाच ॥

देवदेव महादेव शिव कारुण्यवारिधे ।
पाहि मां प्रणतं स्वामिन्प्रसीद सततं मम ॥११०॥
सर्वार्थसाधनोपाय सर्वैश्वर्य-प्रदायक ।
समस्तापत्प्रतीकार चंद्रशेखर ते नमः ॥१११॥
यत्कृत्यं यन्न कृत्यं तत्तदाचरितम् ।
उभयोः प्रायश्चित्तं शिव तव नामाक्षर-द्वयोच्चरितम् ॥११२॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे शरभकवचं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

अथ वक्ष्मो वयं देवि कामराजं महामनुं ।
यस्य स्मरण मात्रेण मुह्यंत्यखिल-जंतवः ॥१॥

विशेषतोऽखिला देवा यक्ष-किन्नर-राक्षसाः ।
गणा गण-पिशाचाश्च भूत-प्रेतादयोऽम्बिके ॥२॥

श्रीकामराजमंत्रस्य संमोहन ऋषिः स्मृतः ।
तस्यच्छंदस्तु गायत्री मन्मथोदेवता स्वयम् ॥३॥

क्लंकारं बीजमींकारः शक्तिर्योगस्तु मोहने ।
क्लामित्यादि करन्यासं षडंगं च ततस्तथा ॥४॥

ध्यानम् ॥

अरुणमरुणवासो माल्यदामांगरागं
स्वकर कलितपाशं सांकुशास्त्रेक्षु चापं ।
मणिमय मुकुटाद्यै र्दीप्तमाकल्पजालै-
ररुणनलिनसंस्थैश्चिन्तयेदंगयोनिम् ॥५॥

कामराज-गायत्री ॥

कामदेवाय विद्महे पुष्पवाणाय धीमहि ।
तन्नोऽनंगः प्रचोदयात् ॥६॥

महामंत्रमिमं दिव्यं तन्नोऽनंगः प्रचोदयात् ।
चतुर्विंशतिसाहस्रं जपेन्मंत्रं दृढव्रतः ॥७॥

ततः सिद्धिमवाप्नोति साधकेन्द्रोऽखिलां शिवे ॥

आलेख्यं कर्णिकायामनलपुरपुटे मारबीजं ससाध्यं
तद्वंध्रेष्वंग-षट्कं बहिरथ गुणशो मारगायत्रि-वर्णान् ।
मालामंत्रं दलाग्रेष्वथ गुह-मुखशः पार्थिवाश्रिष्वनंगं
कुर्याद्यंत्रं तदेतद्भुवनमपि वशेत्का कथा मानुषेषु ॥८॥

[१]क्लींकारं पूर्वमुच्चार्य कामदेवाय तत्परम् ।
रतिवल्लभाय सर्वजनसंमोहनाय च ॥९॥
ज्वल ज्वल प्रज्वलेति स्यात्सर्वजनदृष्टि च ।
तत्पश्चान्मुखं हृदयं पश्चान्मम वशं कुरु ॥१०॥
कुरु स्वाहेति मंत्र एकोनपंचाशदक्षरः
विविधेषु प्रयोगेषु साध्यनामसु पल्लवम् ॥११॥
एतद्यंत्रं समालिख्य जपेत्स्पृष्ट्वाऽर्थसिद्धये
वह्नेर्गेहपुरांतरस्थमदनं मायालिखेद्वाग्भवम्
षट्कोणेष्वथ संधिषु प्रविलिखेत् ब्लूंकारमावेष्टयेत् ।
स्त्रीबीजेन समीरितं त्रिभुवनं क्षोभाकरं श्रीप्रदम्
यंत्रं पंचमनोभवात्मकमिदं सौंदर्यसंपत्प्रदम् ॥१२॥
यंत्रमेतद्वरं श्रेष्ठं सर्वसौभाग्यदायकम्—
तस्य धारणमात्रेण सर्वलोकजयं लभेत् ॥१३॥
एकारौकारयुक्ता हरि-हरज-हराः पंचबाणाः स्मरस्य
ख्याता लक्ष्म्याण्यमीषा हृदय-कुच-दृशोर्मूर्ध्नि गुह्यक्रमेण ।
मर्मस्वेतेषु भूयो निजनयनधनुःप्रेरितस्तैश्चतुर्भिः
स्पंदंते सुंदरीणां मदनपरिवशाद्वह्नि-वक्त्राद्यथाऽज्यम् ॥१४॥
हृदयं कमलं चैव स्तनौ चूतस्तथैव च ।
नेत्रमशोकपुष्पं च शिरसि मल्लिकास्तथा ॥१५॥
योनिं नीलोत्पलं चैव इत्येते पंचबाणयोः ।
कामैकाक्षरविद्या तु त्रैलोक्यक्षोभकारणम् ॥१६॥
लक्षत्रयं जपेन्मंत्री मधुरत्रयसंयुतैः ।
फुल्लैः किंशुकजैः पुष्पैर्जुहुयात्तद्दशांशकम् ॥१७॥
आधार-शक्तिमारभ्य पीठमंत्रान्तमंबिके ।
मोहिनी क्षोभिणी चैव त्रासिनी जंभिनी तथा ॥१८॥
आकर्षिणी द्राविणी च ह्लादिनी च ततः परम् ।
क्लिन्ना च क्लेदिनी चैव पीठशक्तय ईरिताः ॥१९॥

---

१. मंत्रोद्धार :—क्लीं कामदेवाय रतिवल्लभाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल सर्वजनदृष्टि-मुख-हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा ।

"ओं नमो भगवते जगन्मोहनरूपाय कामपीठाय नमः" ।
इष्ट्वांगावरणं पूर्वं मध्ये दिक्ष्वर्चयेच्छरान् ।
शोषणं मोहनं चैव संदीपनमतः परम् ।।२०।।
संतापनोन्मादनं च पंचबीजयुतं क्रमात् ।
प्रणामबाणहस्ताब्जा ध्येयास्ता बाणदेवताः ।।२१।।
संपूज्याः पत्रमध्ये तु शक्तयोऽष्टौयथाक्रमम् ।
प्रथमाऽनंगरूपा च द्वितीयाऽनंगमन्मथा ।।२२।।
अनंगकुसुमानंगशीर्षाह्यनंगवेगिनी ।
अनंगांकुशा चानंग मेखलाऽनंगदीपिका ।।२३।।
लीलाकमलधारिण्यःस्मेर-वक्त्राः सुभूषिताः ।
बहिः षोडशपत्रेषु पूज्याः षोडश शक्तयः ।।२४।।
युवती विप्रलंभान्या ज्योत्स्ना सुभ्रू र्मदद्रवा ।
सुरता गुरणी लोल्या कांतिः सौदामिनी पुनः ।।२५।।
कामच्छत्रा चन्द्रलेखा शुकी स्यान्मदना पुनः ।
योनिर्मायावती ताः स्युः कल्हार-विलसत्कराः ।।२६।।
स्मेर-वक्त्रा युवतयो मदविह्वलमंथराः ।
दलाग्रेषु पुनः पूज्याः स्मेरस्य परिचारिकाः ।।२७।।
शोको मोहो विलास्यन्यो विभ्रमो मदनातुरः ।
अपत्रपो युवा कामी चूतपुष्पो रतिप्रियः ।।२८।।
ग्रीष्मस्तपांतनुर्जोऽन्यो हेमंतः शिशिरोमदः
इक्षु-कार्मुक-पुष्पेषु धरासक्ता सुभूषितः ।।२९।।
अपरा अंगनांगस्था वनितासक्त-मानसाः
रतिप्रियानष्टदिक्षु यजेदष्टौ विशिष्टधीः ।।३०।।
परभृत्सारसौ पश्चाच्छुकमेका स्वयौ पुनः ।
अनंगभ्रूविलासौ द्वौ भाषाभावौ प्रकीर्तितौ ।।३१।।
चतुरस्रस्य कोणेषु पूज्यास्तत्परिचारिकाः ।
माधवीमावृती पश्चाद् धरणी-क्ष्मा-मदोत्कटा ।।३२।।
सित चामरधारिण्यः सर्वाभरणभूषिताः ।
बाह्ये लोकेश्वरान् पश्चात्तदस्त्राण्यर्चयेत्ततः ।।३३।।

इत्थं यो भजते देवं सुगंध-कुसुमादिभिः ।
सभवेल्लब्धसौभाग्यो लक्ष्म्यादित-धरेश्वरः ॥३४॥

नेत्रघ्राणमुखेषु पाणिपदयोः साग्रेषु संधिष्वथो
मूलाधारसलिंगनाभ्युदर-हृत्पार्श्वा परांग-स्तने ।
कर्णांसत्रिकवक्त्रओष्ठरसनाघ्राणाक्षिकर्णाब्जिके
एतान्विन्यसतु क्रमेण दशधा बाणान् जगन्मोहनान् ॥३५॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे मन्मथप्रयोगो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

वक्ष्यामि रक्तचामुंडीं महासिद्धिप्रदायिनीम् ।
निग्रहानुग्रहाकर्षदक्षामद्भुतमोहिनीम् ॥१॥
मंत्रस्य रक्तचामुंड्या ऋषिः शंकर ईरितः ।
छंदोऽनुष्टुप् तथा रक्तचामुंडी देवताऽम्बिके ॥२॥
[1]लक्ष्मीं बीजं ततः शक्ति (ह्रीं) र्महामायेष्टसिद्धये ।
विनियोगः करांगस्य न्यासं ताभ्यां यथाविधि ॥३॥

ध्यानम् ॥

रक्ताभां पीतवस्त्रां स्मित-मुख-कमलामिन्दुरेखावतंसां
दिव्यैर्माणिक्य-मुक्ता-मणिगण-खचितैर्भूषणैर्दीप्यमानाम् ।
पुष्पेष्विक्ष्वास-बाणानरिजलजभुजां फुल्लपद्मायताक्षीं
चामुंडासृङ्नृमुंडीं रिपु-कुल-मथनां शाकिनीं[2] भावयामि ॥
[3]लक्ष्मीं मायां समुच्चार्य वर्जितापकरं ततः ।
रक्तचामुंडीश्वरीति शत्रु जीवविनाशिनी ॥४॥
एह्येहि च ततः शीघ्रमिष्टानाकर्षयाथ तु ।
आकर्षय ततः स्वाहा चतुस्त्रिंशल्लिपिः क्रमात् ॥५॥
वृत्तं च सप्तच्छदमष्टपत्रं ततः पदं सप्तदशास्त्रकं च
मध्ये द्विबीजं क्रमशस्तु मंत्रं दलेषु साध्यं परतो द्विबीजम् ॥६॥
एतत्तु रक्तचामुंडी-यंत्रमाकर्ष-मोहयोः ।
महावीर्यमयत्नारि-जय-वश्य-करं परम् ॥७॥
आकर्षं सर्वजंतूनां वनितानां विशेषतः ।
चतुस्त्रिंशत्सहस्रेण मंत्रसिद्धिर्जपेन्मनुम् ॥८॥

---

१. श्रीं

२. शांकरीं

३. मंत्रोद्धार :—श्रीं ह्रीं कट् रक्तचामुण्डीश्वरी शत्रुजीवविनाशिनी एह्येहि शीघ्रं इष्टानाकर्षयाकर्षय स्वाहा ।

तर्पणं च तथा कुर्यादंते भौमदिनेऽम्बिके ।
मध्याह्ने च बलिं दत्वा मातृ-कोष्ठे तु साधकः ॥९॥
तद्वारिवस्त्रसूत्राग्र-पलालात्यग्रमध्यतः ।
वंधनेन तु मंत्रेणाबध्द्वान्यस्योपरि स्थले ॥१०॥
निराहारान् द्विजान्वृत्वा संपूज्य च चतुष्टयान् ।
तस्मिन्कोष्ठे स्पृशन्हेतुं निशां वा संगवात्परम् ॥११॥
सहस्रं प्रजपेद्देवि दृढचित्तो निर्मीलितः ।
ततो देवी समागत्य हठात्कारासिताथ मम ॥१२॥
आहूयसे भवानत्र किमर्थं वद सत्वरम् ।
इति ब्रूयात्ततो मंत्री निर्भयस्तिष्ठ तिष्ठ सः ॥१३॥
त्वयि कार्यं ममास्तीहेत्युक्त्वा गृह्णेति तत्वतः ।
दद्यात्स शकलं हेतुं सा चांगीकृत्य तं प्रति ॥१४॥
तुष्टाहं तु किमिष्टं ते वद सत्वं ददामि तत् ।
इति वक्ष्ये ततो मंत्री गुरुसान्निध्यमन्वहम् ॥१५॥
समादानानुदानं च मोहाकर्षवशानि मे ।
श्रुत्वा देवी ततः सर्वं तथैवाहं करोमि च ॥१६॥
देहि मे च बलिं हेतुं प्रति संततिमित्यथो
तथा भवतु चामुंडी सततं त्वं प्रसीद मे ॥१७॥
इति दृष्ट्वा ततो देवी दत्वा वरं करांबुजम् ।
अंगुलीयं च गृह्णीयात्तस्यहस्ताब्जसंस्थितम् ।
ततः स्वेच्छाक्रियां कुर्यान्नित्यालंकृतविग्रहः ॥१८॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे चामुण्डी-विधिर्नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥
मंत्रस्य मोहिनी देव्या ऋषिरीशान उच्यते
छंदस्तु जगती-देवी मोहिनी देवतांबिके ॥१॥
ऐं बीजं ह्लीमथोशक्तिर्मदनं कीलकं ततः
विनियोगस्तु लोकानां चित्तसंमोहने तथा ॥२॥
ऐंकारसहितैर्मायाभेदवर्णैः षडंगकम् ।
ध्यानम्
भुवन-विजयदक्षा पुष्प-बाणक्षु-चापा,
जगति विविधरूपान् दर्शयंती जनानाम्,
तरुणतरणिशोभाश्वेतवासो वसाना,
जयति निखिललोकाञ्जीविनी मोहिनीयम् ॥३॥
[1]बीजं-शक्ति समुच्चार्य कीलकं-हृत्ततः परम् ।
श्रों नमो भगवति महामोहिन्यतः परम् ॥४॥
महामाये ततः पश्चात्सर्वलोक वशंकरि ।
देवदत्तस्य वाक्-चक्षुश्चित्तं मोहय मोहय ॥५॥
नानारूपाकृतिं शीघ्रं पश्चाद्दर्शय दर्शय ।
ह्लीं स्वाहेति महामंत्रं पंचाशद्वर्ण रूपकम् (षष्ठि वर्णात्मकं परम्) ॥६॥
प्रजपेत्पंचसाहस्रं सिद्धये तर्पणं तथा ।
पंचकोणे लिखित्वा तन्मध्यबीजेन वेष्टयेत् ॥७॥
पंचकोणे लिखेच्छक्ति बाह्ये साध्यं समन्मथम् ।
देवदत्ते मुखे यंत्रं दर्शयन्प्रजपेन्मनुम् ॥८॥
जंगमाजंगमानां च देवभूतादिरक्षसाम् ।
पुरतो विविधं रूपं दर्शनं विस्मयं भवेत् ।
कौतूहलं महामंत्रं स्वेच्छादर्शनसिद्धिदम् ।
सर्वसंमोहनं श्रेष्ठं साध्यभेदैरदर्शनम् ॥१०॥
सर्वलोक-वशीकारं सर्व-विद्वेष-कारणम् ।
सर्वशत्रुजयं दिव्यं सर्वाकर्षण-सिद्धिदम् ॥११॥
सहस्रं प्रजपेन्नित्यं योऽम्बिके सावधानतः ।
सर्वलोक-जयं तस्य लभते नात्र संशयः ॥१२॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे मोहिनीविधिर्नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

---

१. मंत्रोद्धार :—ऐं ह्लीं क्लीं श्रों नमो भगवति महामोहिनि महामाये सर्वलोक वशंकरि देवदत्तस्य वाक् चक्षुश्चित्तं मोहय२ नानारूपाकृतीः शीघ्रं दर्शय२ ह्लीं स्वाहा।

पंचचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ द्राविणीप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

मंत्रस्य द्राविणीदेव्या वरुणो ऋषिरुच्यते ।
बृहती छंद इत्युक्तो द्राविणी देवता ततः ॥१॥
द्रांकारं बीजमित्युक्तं स्वाहा शक्तिरतः परम् ।
स्वेच्छा-द्रावक-सिध्यर्थे विनियोगो वरानने ॥२॥
द्रामित्यादि षडंगं स्यात्करन्यासपुरःसरम् ।

ध्यानम्

चंद्रार्धचूडां शतपत्रनेत्रां शरासपुष्पेषुकरां नराणाम् ।
दृगास्य-चित्त-श्रवणांडलक्ष्म्यां श्रीद्राविणीं नौमि सुधार्द्र-वाणीम् ॥३॥

[1]भ्रीं ठं प्रथममुच्चार्य द्रां नमो भगवत्यथ ।
जगन्मोहिनि तत्पश्चात्सोमेश्वरि ततः परम् ॥४॥
सर्वलोकाक्षि-हृच्छ्रोत्रं द्रावय द्वितयं द्वि ठः ।
प्रोक्तोर्णानां चतुस्त्रिंशद् द्राविणीमंत्रमव्ययम् ॥५॥
जपेदक्षरसाहस्रं तर्पणाहुति भोजनात् ।
तद्दशांश-क्रमेणैव कुर्यात्सर्वसमर्पकम् ॥६॥
शिखि-ऋतु-मणि-कोणं षोडशारं क्रमेण
प्रतिगृहमथ मंत्रं वर्णमेकं लिखित्वा ।
बहिरपि व्रतसाध्यं कामराजं च चंद्रं
सकल-मनुज-चित्त-द्रावकं यंत्रमेतत् ॥७॥
वदने हृदये गुह्ये दर्शयित्वाऽथ यंत्रकम् ।
त्रिवारं प्रजपेन्मंत्रं द्रावकस्य वरानने ॥८॥
नराश्च विविधा योगा महामोहवशाः वशाः ।
स्वयमेव सदा देवी क्षिप्रं तद्वशमाप्नुयात् ॥९॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे द्राविणी-प्रयोग-विधिर्नामपंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

---

१. मंत्रोद्धार :—भ्रीं ठं द्रां नमो भगवति जगन्मोहिनि सोमेश्वरि सर्वलोकाक्षि-हृच्छ्रोत्रं द्रावय द्रावय स्वाहा ।

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

अथ शब्दार्कर्षिणी प्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

शब्दाकर्षणिकायास्तु बल-प्रमथनो ऋषिः ।
जगती छंद इत्युक्तं देवता सैव सुंदरी ॥१॥
पंकारं बीजमित्युक्तं स्वाहाशक्तिरतः परम् ।
शब्दाकर्षणसिध्यर्थे विनियोगस्ततोऽम्बिके ॥२॥
पामित्यादि षडंगं स्यात्करन्यासं कृशानुना ।
पाशांकुश-धनुर्बाणपाणिमेणांक-संनिभाम् ॥३॥
चंडवातादिगमनां शब्दाकर्षण-तत्पराम् ।
महामायां विशेषज्ञां मंद-स्मित-मुखांबुजाम् ॥४॥
भक्तेष्टदाननिरतां प्रणमामि जगन्मयीम् ।
[1]पामों नमो भगवति शब्दार्कर्षिणि चेश्वरि ॥५॥
अभीष्ट-वरदे सर्वलोकमोहिन्यनंतरम् ।
ततः पश्चात्सर्वमये शब्दानाकर्षयाथ तु ॥६॥
स्वाहेति मंत्ररूपं तु चत्वारिंशन्महार्णकम् ।
आलिख्य नव-षट्-तिर्यगूर्ध्वमंत्रं यथाक्रमम् ॥७॥
बाह्ये तु साध्यमालिख्य रेखाग्रेषु रं तथा ।
मायावृतं महायंत्रं शब्दाकर्षणमद्भुतम् ॥८॥
चत्वारिंशत्सहस्रं तु साधकः सिद्धये जपेत् ।
पश्चाद्यंत्रं भुवौ लिख्य शतवारं जपेन्मनुम् ॥९॥
अतीतानागता स्वस्था स्वस्थानि श्रुतितोऽम्बिके ।
यमुद्दिश्य जपेद्देवं तद्वाक्य-श्रवणं भवेत् ॥१०॥
यः पूज्यानुदिनं मंत्री शतवारं जपेन्मनुम् ।
इति गुह्यं महामंत्रं सर्वज्ञानप्रदं परम् ॥११॥
सर्वदा सर्वकार्येषु जपेन्मंत्री वरानने ॥१२॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे शब्दार्कर्षिणीप्रयोगोनाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

---

१. मंत्रोद्धार :—पामों नमो भगवति शब्दार्कर्षिणि देवि अभीष्ट वरदे सर्वलोक मोहिनि सर्वमये शब्दानाकर्षय स्वाहा ।

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ भाषाप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

वदामि शृणु ते गुह्यं भाषामंत्रमनुत्तमम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण सुप्रसन्ना सरस्वती ॥१॥
ऋषिर्मंत्रस्य भारत्या ब्रह्मा गायत्रमुच्यते ।
छंदो देवी महावाणी देवता यां तमद्भुतम् ॥२॥
बीजं शक्तिस्तथा स्वाहा विनियोगो विशेषतः ।
सर्वशब्दार्थविज्ञानसिध्य-सारस्वताप्तये ।
समित्यादि करन्यासमंगन्यास-विधानतः ॥३॥

ध्यानम्

नव-नलिन-निरूढा वल्लभा पद्मजस्य
द्युतिविहसित-चंद्रोद्दाम-कांतिप्रसन्ना ।
विहरतु मम चित्ते सर्वबोधप्रदात्री
वितरतु सुकवित्वं सर्वलोके प्रसिद्धम् ॥४॥
ओं सं प्रथममुच्चार्य ततः पश्चात्सरस्वति ।
वह्निजाया युतं मंत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम्[1] ॥५॥
सिद्धये सप्त सहस्रं जपं कुर्याद्विचक्षणः ।
तद्दशांशक्रमेणैव तर्पणाहुतिभोजनात् ॥६॥

बिन्दौ बीजं षडस्रे मनुमथ परितो मातृका-वर्णजालं
कृत्वा यंत्रं हिरण्ये सकल-विधियुतं भारतीं सम्यगिष्ट्वा ।
बिन्दौ पद्मादि देवी ऋतु-दल-विवरे सावधानः स्वनाथं
ध्यायन् शीतांशुपीठे जपतु नरवरः सर्वसिध्द्यै समृद्ध्यै ॥७॥

पश्चादपि शतं नित्यं यो जपेत्स तु भूतले ।
कविताचक्रवर्ती स्यात्तस्य साम्यं न विद्यते ॥८॥
सभासंवेशने काले प्रतिवादिसमाकुले ।
मनसा संजपेन्मंत्री विजयाय गुरुं स्मरन् ॥९॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे भाषा-सरस्वती-प्रयोगो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

---

१. ओं सं सरस्वति स्वाहा ।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ लक्ष्मीप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ।।

लक्ष्मीमंत्रं प्रवक्ष्यामि सर्व-सौभाग्य-वर्धनम् ।
आयुष्करं महावश्यममोघ-जयवर्धनम् ।।१।।
लक्ष्मी-मंत्रस्य वामेशो ऋषिः छंदस्तु बार्हती ।
महालक्ष्म्याः प्रसादस्य सिद्ध्यै सर्वसमृद्धये ।।२।।
सर्वलोक-वशीकारे विनियोगस्तथाम्बिके ।
लक्ष्मीबीजस्य भेदेन करांगन्यासमाचरेत् ।।३।।

ध्यानम्—

या सा पद्मासनस्था विपुल-कटि तटी पद्मपत्रायताक्षी
गंभीरावर्त-नाभि-स्तनभर-नमित शुभ्रवस्त्रोत्तरीया ।
लक्ष्मीर्दिव्यैर्गजेन्द्रैर्मणिगण-खचितैः स्नापिता हेमकुंभै-
र्नित्यं सा पद्महस्ता मम वसतु गृहे सर्वमांगल्ययुक्ता ।।४।।
[1]प्रणवं च रमां मारं महालक्ष्मी-पद-द्वयम् ।
एह्येहि सर्व-सौभाग्यं देहि मे तु ततः परम् ।।५।।
स्वाहेति मंत्ररूपं च चतुर्विंशति वर्णकम् ।
चतुर्विंशति-साहस्रं जपेत्सर्व-समृद्धये ।।६।।
दशांशं क्रमशः कुर्यादंगत्रयमतः परम् ।
त्रिकोणे तु त्रिबीजं स्याद्वसुकोणे परं लिखेत् ।।७।।
त्रयोदशदले शेषं बाह्ये पंचाशदर्णकम् ।
लक्ष्मीं बीजावृतं यंत्रं सर्वसौभाग्यदायकम् ।।८।।
सर्व-संपत्समृद्धिं च सर्वलोकवशंकरम् ।
यो जपेदन्वहं प्रातरष्टोत्तरशतं सुधीः ।
तस्य सर्वसमृद्धिः स्यात्संशयो नास्ति सुन्दरी ।।९।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे महालक्ष्मी-प्रयोगो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४८।।

---

१. ओं श्रीं क्लीं महालक्ष्मी महालक्ष्मी एह्येहि सर्वसौभाग्यं देहि मे स्वाहा ।।

एकोनपंचाशोऽध्यायः

अथ मायाप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

ऋषिस्तु मायामंत्रस्य भगवान्मंकणः स्मृतः।
उष्णिक् छंदस्ततो देवो महामाया तु देवता ॥१॥
मायाबीजं च मायैव शक्तिः स्यात्तदनंतरम्।
सर्वाकर्षणसिद्ध्यर्थे विनियोगोऽथ पार्वति।
माययैव षडंगं स्याद्ध्यान-भेद इहोच्यते ॥२॥

माया पुटेन जगतां विवशं च मोहम्
माया कुतूहल-मनोरथमाकरोति।
नारायणप्रियतमा सुतमालनीला
शूलायुधा विजयते तुरगाधिरूढा ॥३॥

[1]ह्रीं कारं च महामाये जगन्मोहिनि तत्परम्।
ततः परं सर्वजन-वाङ्-मनः-काय-चक्षुः च ॥४॥
श्रोत्र-घ्राण पदं पश्चात्प्राणान्मोहय मोहय।
स्वेच्छा-कुतूहलं शीघ्रं दर्शयेति द्वयं ततः ॥५॥
ह्रींकारं स्वाहया युक्तं मंत्रः पंचाशदक्षरः।
श्री पंचाशत्सहस्रं तु सिद्ध्यै मंत्रं जपेद् बुधः ॥६॥
कुर्यात्तर्पण-होमे च ब्राह्मणाराधनं ततः।
ततः स्वेच्छाक्रियां कुर्यान्माया चास्य क्रियादिषु ॥७॥
दर्शनादर्शनं चैव तथादर्शन-दर्शनम्।
मंत्र-स्मरण-मात्रेण भवेद्देवि न संशयः ॥८॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे मायाविधिर्नाम एकोनपंचाशोऽध्यायः ॥४९॥

---

[1] मंत्रोद्धारः—ह्रीं महामाये जगन्मोहिनी सर्व-जन-वाङ्-मनः-काय-चक्षुः-श्रोत्र-घ्राण-प्राणान्मोहय मोहय स्वेच्छा-कुतूहलं शीघ्रं दर्शय दर्शय ह्रीं स्वाहा।

पंचाशोऽध्यायः

अथ पुलिंदिनी प्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

पुलिंदिन्याश्च मंत्रस्य शंकरो ऋषिरीरितः ।
छंदस्तु जगती देवी देवता सा पुलिंदिनी ॥१॥
ईङ्कारं बीजमित्युक्तं स्वाहा शक्तिरनंतरम् ।
पुलिंदिन्याः प्रसादस्य सिद्ध्यर्थे विनियोगकम् ॥२॥
ओमित्यादि करं न्यासं षडंगं तदनंतरम् ।

बर्हापीड कचाभिरामचिकुरां बिंबोज्ज्वलच्चंद्रिकाम्
गुंजाहार-लतांशु-जालविलसद् ग्रीवामधीरेक्षणाम् ।
माकंद-द्रुमपल्लवारुणपटां मंदेन्दु-बिंबाननाम्
देवीं सर्वमयीं प्रसन्नहृदयां ध्यायेत्किरातामृताम् ॥३॥

[1]ईं ओं नमो भगवति श्री बीजमथ मंडि च ।
शारदादेवि तत्पश्चात्त्यक्त-कौतूल-भोज्यकम्[2] ॥४॥
देहि देहि ततस्त्वेहि त्वागच्छागच्छ तत्परः ।
आगंतुकं हृदयस्थं कार्यं सत्यमनंतरम् ॥५॥
ब्रूहि सत्यं ततो ब्रूहि ततः पश्चात्पुलिंदिनीम् ।
ईं स्वाहेति महामंत्रं पंचाशद्वर्ण-मिश्रितम् ॥६॥
पंचाशच्छतमात्रं तु जपेन्मंत्रस्य सिद्धये ।
शिष्टांगं पूर्ववत्कुर्याद्विधिपूर्वं दृढव्रतः ॥७॥
कार्याकार्य-विवेकार्थं रात्रावष्टोत्तरं शतम् ।
जप्त्वा शयीत यस्तस्य स्वप्ने वदति सांबिके ॥८॥
साधकस्तद्वचः श्रुत्वा तथैवान्वहमाचरेत् ।
तस्य नास्ति भयं क्वापि सर्वकालं सुखी भवेत् ॥९॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे पुलिंदिनी-विधिर्नाम पंचाशोऽध्यायः ॥५०॥

---

१. मंत्रोद्धार :—ईं ओं नमो भगवति श्रीं ह्रीं शारदा देवि क्रीं (अनन्तातुल भोज्यं) देहि देहि एह्यागच्छागच्छागन्तुकं हृदयस्थं कार्यं सत्यं ब्रूहि सत्यं ब्रूहि पुलिन्दिनि ईं स्वाहा ।

२. त्यक्त-कौन्तुला बीजकम् । (वा पाठः)

एकपंचाशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

शृणु गुह्यं महामंत्रं महाशास्तुर्वदाम्यहम् ।
भोग-मोक्ष-प्रदं दिव्यं पुत्रसंपत्प्रदं परम् ॥१॥

अष्ट-कर्म-क्रियादक्षममोघं पुण्यवर्धनम् ।
आयुरारोग्यदं सौम्यमपमृत्युभयापहम् ॥२॥
ऋषिरस्यार्धनारीशः छंदोऽनुष्टुप् ततः परम् ।
देवता तु महाशास्ता देवो हरिहरात्मजः ॥३॥
मायावर्णं तु बीजं स्यान्नमः शक्तिरतः परम् ।
मम सर्वार्थ-सिद्ध्यर्थे विनियोगो वरानने ॥४॥
मूलेन तु करन्यासं षडंगं पदशः क्रमात् ।
अश्याम कोमल विशाल तनुं विचित्र
वासोवसानमरुणोत्पलदानहस्तम् ।
उत्तुंगरत्नमुकुटं कुटिलालकेशम्
शास्तारमिष्टवरदं शरणं प्रपद्ये ॥५॥
शांतं शारद-चंद्र-कांति-धवलं चंद्राभिरामाननम्
चंद्रार्कोपल-कांति-कुंडलधरं चंद्राभिरामाननम् ।
वीणा-पुस्तकमक्ष-सूत्रवलय-व्याख्यानमुद्राः करै-
र्बिभ्राणं कलये सदा हृदि महाशास्तं हि वाक्सिद्धये ॥६॥
तेजो मंडलमध्यगं त्रिनयनं दिव्यांबरालंकृतम्
देवं पुष्प-शरेक्षु-कार्मुक-लसन्माणिक्यपात्राभयान् ।
बिभ्राणं करपकजैर्मदगज-स्कंधाधिरुढं महा-
शास्तारं सततं भजामि वरदं त्रैलोक्यसंमोहनम् ॥७॥
कल्हारोज्ज्वल नीलकुण्डलधरं कालांबुद-श्यामलम्
कर्पूराकलिताभिरामतिलकं कांतेन्दु-बिंबाननम् ।
श्रीदंडांकुश-पाश-शूलविलसत्पाणिं मदोद्धद्-द्विपा-
रुढं शत्रुविमर्दनं हृदि महाशास्तेशमाद्यं भजे ॥८॥

जंबूमूलतले सुमेरुशिखरे माणिक्यसिंहासने
रुढं विश्वविमोहनं निरुपमं बंधूकपुष्पारुणम् ।
बाणेष्वास-गदासि-पाश फणिदाभीतीः-करांभोरुहै-
बिभ्राणं नततापहं हृदि महाशास्तारमाद्यं भजे ॥९॥
नौमि वक्रमधिष्ठित-कुंडलं, श्याममुत्पलदक्षकरांबुजम् ।
योगपट्टित-पद्मसुखासनं, वाम दक्षिण-पुष्कल-पूर्णयोः ॥१०॥
पुष्करं शुचिसंयुक्तं चतुर्थस्वरभूषितम् ।
सबिंदुं पूर्वमुद्धृत्य हरि हरेति तत्परम् ॥११॥
पुत्राय पुत्रलाभाय शत्रुनाशाय तत्परम् ।
मदाथ गज तत्पश्चाद्वाहनाय ततः परम् ॥१२॥
महाशास्ताय तत्पश्चान्नमोऽन्त-मंत्रमुत्तमम् ।
एतदेव परं गुह्यं त्रयस्त्रिंशन्महार्णकम् ॥१३॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्त्रं तु चतुरंगयुतं जपेत् ।
बीजं विना त्रिंशदर्णान् परं साध्यं नियोजयेत् ॥१४॥
सपल्लवं सहस्त्रं तु जपेत्तत्काम्यसिद्धये ।
षट्कोण-मिश्र-रि पुटं परितो द्विवृत्तम्
कर्णे च मन्मथमथांसयुगे मुखे माम् ।
कक्षद्वये च पवनं हृदयेऽजमायाम्
नाभौ च तारमनुतारमथो द्विकुक्षौ ॥१५॥
कट्योश्च पार्श्वयुगले मणिबीजवर्णं
गुह्येऽमृतं हरिहरेति युगं द्विकोणे ।
साध्यं द्विबिंदुयुगले मनुमंतराले
हंसेति पार्श्वयुगले विवृतद्विवृत्ते ॥१६॥
ऊर्ध्वाध-सादिश-सहादितमंतराले
चत्वार वह्नि भवने कमलां च मायाम् ।
पंचाशदर्ण सहितं परमं च शास्तु-
यंत्रं समस्त सुखदं वश-मोक्ष दक्षम् ॥१७॥
एतद्यंत्रं महावीर्यं पुरुषार्थप्रदायकम् ।
करस्थाः सिद्धयः सर्वाः सर्वलोकः युगे युगे ॥१८॥
कुंकुमारोचनाभ्यां तु लिखित्वाग्रपटोऽग्रतः ।
कृत्वा भर्तुर्गृहं गच्छेत्स्मित-भाषण-पूर्वकम् ॥१९॥

क्रुद्धोऽपि वान्यसक्तोऽपि विरक्तोऽपि सनाथकः ।
तस्यास्तु दर्शनात्कामपीडितो मोहितो वशः ॥२०॥
तद्वशं समुदं याति चूतपुष्पमलिर्यथा ।
राजसेनारिनारीणां वश्यं कनकपत्रिके ॥२१॥
भूत-प्रेत-पिशाचानां जंतूनामुरगादिनाम् ।
सिंहादीनां मृगाणां च ग्राहादि-जलजन्मनाम् ॥२२॥
कार्ष्णायि-पत्रके यंत्रमालिख्य निवहेद् बुधः ।
संपद्यं च समृद्धि च प्रसादेऽनुग्रहे परे ॥२३॥
तन्मे कुरु कुरु स्वाहेत्यखिलं प्रजपेद् बुधः ॥२४॥
(इति प्रथम खण्डः)

पूजाविधि

अथ पूजाविधिं वक्ष्ये साधकानां हिताय वै ।
बिंबे वा यंत्रमध्ये वा महाशास्तं प्रपूजयेत् ॥१॥
पादप्रक्षालनं कृत्वा देवपूजागृहं विशेत् ।
तत्र प्राङ्मुख आसीनः प्राणनायम्य मूलतः ॥२॥
आसनं कल्पयित्वा तु गुरु-वंदनपूर्वकम् ।
दिग्देवतानमस्कृत्य भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥३॥
भक्त्या च मातृकान्यासं प्राण-न्यास-समन्वितः ।
पश्चान्मंत्रऋषिन्यास छंदसा न्यासमाचरेत् ॥४॥
पादं न्यासं षडंगं च पंचांगं वा सुविन्यसेत् ।
ध्यानयोगोपयुक्तः सन् मुद्रां चैव प्रदर्शयेत् ॥५॥
आत्मानं देवतारूपं ध्यात्वा देविस्वरूपिणी ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु शतमष्टोत्तरं तु वा ॥६॥
अष्टाविंशतिकं वापि यथाशक्ति जपेत्सुधीः ।
पात्रशुद्धिं ततः कुर्याद् द्रव्यसंस्कार-पूर्वकम् ॥७॥
बीजासनं समभ्यर्च्य आसने तान्समर्चयेत् ।
आधारादिपृथिव्यंतमासने तान्समर्चयेत् ॥८॥
भानुबिंबात्समाहूय मूलेनावाहयेच्छिवे ।
सांगावरणमभ्यर्च्य देवं संपूजयेद् बुधः ॥९॥
योगारूढमथो वापि गजारूढमथोऽपि वा ।
भावयेन्मनसा नित्यं ध्यानगम्यं परात्परम् ॥१०॥

साक्षिणं सर्वलोकानामंतर्यामिनमव्ययम् ।
देवस्य दक्षिणे पार्श्वे पुष्कलं च समर्चयेत् ॥११॥
वामे पूर्णार्चनं कृत्वा गजाननमथार्चयेत् ।
सिंहार्चनं प्रकुर्वीत हयार्चन शुनार्चनम् ॥१२॥
गुरुं गणपतिं दुर्गां स्कंदं भैरवमर्चयेत् ।
ऋषि छंदस्तथा भानुमर्चयेद्वह्नि-कोणके ॥१३॥
पश्चादावरणे देवमभीष्ट-परिवारकम् ।
षडंग-देवताद्याश्च गंध-पुष्पाक्षतादिभिः ॥१४॥
षट्कोणे देवताषट्कं हृदयादीन्समर्चयेत् ।
महाशास्ता जगच्छास्ता शत्रुशास्तारमेव च ॥१५॥
अग्निशास्ता बालशास्ता प्रशास्ता च क्रमादमून् ।
अष्टकोणे महादेवि भैरवाष्टकमर्चयेत् ॥१६॥
असितांगो रुरुश्चंडः क्रोध उन्मत्तभैरवः ।
कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्टमः क्रमात् ॥१७॥
पश्चाद् ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः कोणाग्रेषु समर्चयेत् ।
दलेष्वष्टसु देवेशि गायत्रीं च समर्चयेत् ॥१८॥
भूताधिपाय विद्महे हरिहरपुत्राय धीमहि ।
तन्नः शास्ता प्रचोदयात् ॥१९॥
गायत्र्येषा समुद्दिष्टा महाशास्तृ-स्वरूपिणी ।
महादिक्षु दलाग्रेषु भूतादीन्क्रमशोऽर्चयेत् ॥२०॥
भूत-प्रेत-पिशाचानां-गणानां च समर्चयेत् ।
यक्ष-राक्षस-वेताल-सिद्धानां च समर्चयेत् ॥२१॥
षोडशारे पुनर्देवि शक्तिषोडशमर्चयेत् ।
दुर्गा च भैरवी देवी त्वरिता भुवनेश्वरी ॥२२॥
नारायणी भद्रकाली रुद्राणी चंडिकान्विता ।
वाराही सिद्धलक्ष्मीश्च मातंगी च मनोन्मनी ॥२२॥
कालरात्रिर्महामाया महिषासुरमर्दिनी ।
निशाचरी च नामानि नित्या षोडश-शक्तयः ॥२४॥

लोकपालान्पुनर्देवि ह्यष्टदिक्षु समर्चयेत् ।
देवताग्रे महापीठे कल्पयित्वा जलं बुधः ॥२५॥
अग्रपीठ-स्थित-सिद्ध-विद्याधर सकिन्नराः ।
किम्पुरुषाः सर्वसंपन्नः पीठोपरि समर्चयेत् ॥२६॥
लोकपाल-समौ द्वारपालौ सम्यक् समर्चयेत् ।
सर्वं श्रीमायया युक्तं नाममंत्रं समर्चने ॥२७॥
हरिशंभ्वोः सुपुत्रस्य पूजैषा भुवि दुर्लभा ।
सर्वोपचारान्मूलेन कल्पयेन्मंत्रनायिके ॥२८॥
जपं पश्चात्प्रकुर्वीत ध्यानयोग-परायणः ।
प्रदक्षिणं परिक्रम्य देवं सम्यक् प्रणम्य च ॥२९॥
देवस्य चरणौ सम्यक् पूजयेद्भक्ति-पूर्वकम् ।
कामरूपधरः स स्यादणिमादिफलप्रदः ॥३०॥
वेद शास्त्रेषु भरत शास्त्रार्थेषु विचक्षणः ।
सर्वज्ञः सर्वसंपन्नः सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥३१॥
विचरंति महात्मानो महाशास्तृ-प्रसादतः ।
महाशास्तृपदासक्तः सर्वदा प्रीतिमानसः ॥३२॥
भक्तोपकारकाः सर्वे परमानन्द-विग्रहाः ।
सर्वान्कामानवाप्येह यथेष्टं फलमाप्नुयात् ॥३३॥
इहलोके महाशास्ता सर्वशास्त्राणि साध्येत् ।
पुत्र पौत्रवरैश्चान्यैर्मोहनं भुवि मोदते ॥३४॥
(इति द्वितीय खण्डः)

अथ पूजा-प्रकार उच्यते ॥

हस्ते पुस्तकमक्षसूत्रवलयं मुद्रां च सच्चिन्मयीं ।
बिभ्राणं कमल-प्रवाल-रुचिरैः स्वर्णोज्ज्वलां लेखिनीम् ॥
मुक्ताभा-मणि-भूषणैर्विलसितं व्याख्यान-पीठ-स्थितम् ।
व्यासाद्यैर्मुनिपुंगवैः परिवृतं शास्तारमंतर्भजे ॥१॥
महाशास्तर्गजारुढ-गणेशान सुरेश्वर ।
विश्वेश्वर सुरश्रेष्ठ लोकनाथ नमोऽस्तु ते ॥२॥
आवाहनं चासनं च पाद्यार्घ्याचमनं तथा ।
स्नानं वस्त्रं चोत्तरीयमुपवीतं सुगंधतः ॥३॥

अक्षतं पुष्प धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च।
तांबूलं प्रदक्षिणं च नमस्कारं तथैव च ॥४॥
मंत्र-पुष्पं महादेवि क्रमादुपचरेद्विभुम्।
महाशास्तर्गणाधीश ऋषीन्द्र-यमिनां-वर ॥
गृह्यतामासनं देव मया दत्तं सुरेश्वर ॥५॥
महाशास्ताय देवाय नित्याय निधनात्मने।
समस्त-लोक-नाथाय नाथाय प्रभवे नमः ॥६॥
महाशास्ताय शांताय सर्वज्ञाय महात्मने।
योगनिष्ठाय नित्याय नित्यशुद्धाय ते नमः ॥७॥
सर्वात्मन् सर्वदेवेश सर्वव्यापिन्महेश्वर।
गृहाणाचमनं देव महाशास्त्र नमोऽस्तु ते ॥८॥
महाशास्ताय वीराय नित्याय निखिलात्मने।
नरकासुरहंत्रे च श्रीशगर्भाय ते नमः ॥९॥
हरि-शंभु-हृदानंदकराय च महात्मने।
महाराज-वसिष्ठाय महाशास्त्राय ते नमः ॥१०॥
दामोदरेश-पुत्राय नमस्ते भक्त-पालिने।
शुभ्रवस्त्रोत्तरीये च गृहाण पुरुषोत्तमः ॥११॥
हरि-शंभु-हृदानंदकराय च महात्मने।
महाराज-वसिष्ठाय महाशास्ताय ते नमः ॥१२॥
श्रीखंडं रोचनायुक्तं कुंकुमेन समन्वितम्।
विलेपनं महाशास्तः प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥१३॥
अनर्घ्यमक्षतं श्रेष्ठं धनारोग्य-विवर्धनम्।
दास्यामि माधवेशान-सूनो प्रीत्यै तवोपरि ॥१४॥
कल्पवृक्ष-सुपुष्पाणि माल्यानि विविधानि च।
मयार्पितानि पूजार्थं गृहाण सर्वनंदन ॥१५॥
चन्दनागुरु-कर्पूर-घृत-गुग्गुल-संयुतम्।
वह्निना रचितं धूपं गृहाण सुरनायक ॥१६॥
आज्याक्तं वर्ति-संयुक्तं वह्निना योजितं शुभम्।
गृहाण दीपं देवेश श्रीश-गौरीपतेः सुत ॥१७॥

अन्नं चतुर्विधं ज्ञेयं रसैः षड्भिः समन्वितम्।
मया निवेदितं तुभ्यं गृह्यतां दैत्यसूदन ॥१८॥
अपूपानि निवेद्यानि भक्ष्याणि विविधानि च।
मयार्पितानि सर्वाणि गृह्यतां गजवाहन ॥१९॥
पूगीफल-समायुक्तं नाग-वल्लीदलैर्युतम्।
कर्पूर-चूर्ण-संयुक्तं तांबूलं प्रतिगृह्यताम् ॥२०॥
हरिशंभु-स्तुतः पायादपायान्मां सदा पुनः।
हरीशपुत्र विश्वेश जगदानंददायक ॥२१॥
विश्वरूपव्रतस्थाय कारुण्याय नमोऽस्तु ते।
नमोऽस्तु सुप्रसन्नाय पुरुषाय महात्मने ॥२२॥
योगानंद-स्वरूपाय महाशास्ताय ते नमः।
नमो हरीश-पुत्राय नमस्तेऽनंतसाक्षिणे ॥२३॥
आनंदरूपिणे तुभ्यं महाशास्त्रे नमो नमः।
योगारुढाय नित्याय योगगम्याय योगिने ॥२४॥
योगाध्यक्षाय गूढाय महाशास्ताय ते नमः।
उक्तोपचारैः संपूज्य देवेशं पुनरुद्वहेत् ॥२५॥

(इति तृतीय खण्डः)

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे महाशास्तृविधिर्नाम एकपंचाशोऽध्यायः ॥५१॥

मंत्रोद्धार :—प्रथम खण्ड—श्लोक ११-१३—पत्रांक १३३

ह्रीं हरिहर-पुत्राय पुत्र-लाभाय शत्रुनाशाय मद-गज-वाहनाय महाशास्ताय नमः।

द्विपंचाशोऽध्यायः

संक्षोभिणीप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

संक्षोभिण्या महामंत्रं तव वक्ष्यामि पार्वति ।
मंत्रोच्चारणमात्रेण क्षुभ्यंत्यखिलजंतवः ॥१॥
संक्षोभिण्यास्तु मंत्रस्य अगस्त्यो भगवानृषि ।
पंक्तिश्छन्दस्तथा देवी सर्वसंक्षोभिणी शिवा ॥२॥
क्षंकारं बीजमित्युक्तं माया शक्तिरनंतरम् ।
सर्वसंक्षोभणार्थे तु विनियोगो वरानने ॥३॥
क्षामित्यादि षडंगं स्यात्करन्यासं तथा पुनः ।

ध्यानम् ॥

पर्वा पंचमुखारूढा परिघासि करांबुजा ॥४॥
सर्वारि-हृदय-क्षोभ-कारिणी पातु सर्वदा ।
[1]क्षामों नमो भगवति चापवादहरे परे ॥५॥
महाक्रूरेति तत्पश्चात्सर्वशत्रुविमर्दिनि ।
देवदत्तमनःक्षोभं कुरु कुर्वनलप्रियाम् ॥६॥
तदंते तु समुद्धृत्य जपेन्मंत्रं समाहितः ।
दृढव्रतोऽर्णसाहस्रं सांगं ब्राह्मे मुहूर्तके ॥७॥
मंत्रावसानके वैरि-नाम-मिश्रित-पल्लवम् ।
सहस्रं प्रजपेन्मंत्रं भ्रष्टचित्तो भवेद्रिपुः ॥८॥
शताभिमंत्रितं भस्मं निखनेदष्टदिक्षु सः ।
भवनं परितो मंत्री रक्षणाय स्वकीयकम् ॥९॥
तस्कर-शत्रु-पीडा च जंतु-भूतादि-पीडनम् ।
स्वप्नकालेऽपि नैव स्याद्वरेण्यो नात्र संशयः ॥१०॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे संक्षोभिणी-विधिर्नाम द्विपंचाशोऽध्यायः ॥५२॥

---

१. मंत्रोद्धार :—क्षां ओं नमो भगवति अपवाद-हरे परे महा-क्रूरे सर्वशत्रु-विमर्दिनी देवदत्तमनः क्षोभं कुरु कुरु स्वाहा ।

त्रिपंचाशोऽध्यायः

अथ धूमावतीप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ॥

धूमावत्या महादेव्या नारसिंहो ऋषिः स्मृतः ।
पंक्तिश्छंदस्तथा देवि ज्येष्ठादेवी तु देवता ॥१॥
धूंबीजं तु ततः स्वाहा शक्तिर्योगस्तु निग्रहे ।
धामित्यादि करन्यासं षडंगं च तथाऽम्बिके ॥२॥
ध्यायेत्कालाभ्रनीलां विलिखित-वदनां काकनासां विकर्णां
संमार्जन्युल्क-शूर्पैर्युत-मुसलकरां वक्रदंताविषास्याम् ॥
ज्येष्ठां निर्वाणवेषां भ्रुकुटितनयनां मुक्तकेशामुदाराम्
शुष्कोत्तुङ्गातितिर्यक्-स्तनभरयुगलां निष्कृपां शत्रुहंत्रीम् ॥३॥
[1]प्रथमं धूं समुच्चार्य पश्चाद् धूमावती तथा ।
स्वाहेति मंत्ररूपं तु सप्ताक्षरमनुत्तमम् ॥४॥
जपेत्सप्तसहस्रं तु सांगं धूमरमाहुतीः ।
ऋतुकोणस्थ वृत्तांतर्बीजं कोणे मनुं लिखेत् ॥५॥
कोणत्रिशूलके साध्यं ज्येष्ठायंत्रमिहोच्यते ।
संपूज्य विधिवद्यंत्रं जपित्वा तु सहस्रकम् ॥६॥
श्मशाने तु निशामध्ये निखनेद्बलिपूर्वकम् ।
रिपुगेहेऽथवा कुर्यात् खननं बलिवर्जितम् ॥७॥
भूयो जपेत्त्रिरात्रं तु तत्कार्यो रिपुदिङ्मुखः ।
स्तंभनोच्चाटने चैव निग्रहे चित्तविभ्रमे ॥८॥
संपत्क्षये च विद्वेषे प्रकुर्यात्सावधानतः ।
कवचं शरभेशस्य स्वांगे विन्यस्य तत्वतः ।
पश्चाज्जपेदिमां ज्येष्ठामतिक्रूरां दृढव्रतः ।
धूमावत्याश्च मंत्रं तु यो जपेत्कवचं विना ॥१०॥
स्वयं क्रुध्यति सा ज्येष्ठा तस्य भाग्यक्षयंकरी ।
अनात्माऽभिमुखं ध्यात्वा गच्छंतीं वैरिणां प्रति ॥११॥

---

१. मंत्रोद्धार :—धूं धूमावती स्वाहा ।

यो जपेन्निशि साहस्रं तस्य शत्रुर्विनश्यति ।
ताडयंती महावेगाच्छूर्पेण रिपुवक्षसि ॥१२॥
ध्यात्वा जपेत्सहस्रं तु भ्रष्टचित्तो भवेद्रिपुः ।
मार्जयंतीं क्षणाच्छत्रोर्धन-धान्यादिकं चिरम् ॥१३॥
ध्यात्वाष्टोत्तर-साहस्रं जपेद्भाग्यक्षयाय सः ।
दीप्यमानोल्मुकेनैव दहंतीं वाचि वैरिणाम् ॥
ध्यात्वा जपेत्तदा मंत्रं स्तंभनायांबिके बुधः ॥१४॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे धूमावती-विधिर्नाम त्रिपंचाशोऽध्यायः ॥५३॥

चतुःपंचाशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच

वक्ष्येऽहं शृणु ते यंत्रं धूमावत्या विशेषतः ।
विद्वेषे मारणे चैव क्रूरमत्याशुसिद्धिदम् ।।१।।
त्रिकोणं विलिखेत्पूर्वं तन्मध्ये बीजमालिखेत् ।
कोणाग्रे तु लिखेच्छूलं तच्छूलांतर्लिखेन्मनुम् ।।२।।
तदग्रे विलिखेत्साध्यं ज्येष्ठायंत्रं वरानने ।
संपूज्य विधिवद्यंत्रं निशामध्ये श्मशानके ।।३।।
बलिपूर्वं खनित्वा तु पुनः स्नात्वा जपेन्मनुम् ।
अष्टोत्तराष्ट-साहस्रं दृढ़चित्तोऽरिदिङ्मुखः ।।४।।
वैरिणस्तत्क्षणादेव यांति वैवस्वतं पुरम् ।
विद्वेषणे तथा देवि जपेदेकाग्रमानसः ।।५।।
अन्योन्य-कलहं क्षिप्रं शत्रूणां जायते ध्रुवम् ।
विलोमेन जपेनैव निवृत्तिः स्यात्सहस्रधा ।।
नान्यमंत्रैर्निवृत्तिः स्यात्प्रयत्नेन कृतेऽम्बिके ।।६।।

ओं नमो भगवति शत्रु-संहारिणि सर्वरोगप्रशमनि सकलरिपु-धन-धान्य-क्षयं कुरु कुरु धूमावतीश्वरि शरभ सालुवपक्षिराजप्रिये अमृत-कलश वरदाभय-कमल करांबुजे जगत्क्षोभिणि देवदत्तस्य शरीरे वर्तमान वर्तिष्य-माण सकल रोगं मोचय २ समस्त-भूतं नाशय २ सर्वोन्मादशमनं कुरु कुरु स्वाहा ।

मालामंत्रमिमं गुह्यं महारोग-प्रशांतिदम् ।
महाभूतहरं श्रेष्ठं महोन्मादहरं परम् ।।७।।
मंत्रेणानेन संमंत्र्य दशवारं तु संस्पृशन् ।
पाययेदौषधं यत्तत्सर्वव्याधिहरं भवेत् ।।८।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे धूमावती-प्रयोगो नाम चतुःपंचाशोऽध्यायः ।।५४।।

पंचपंचाशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच

अथ देवि प्रवक्ष्यामि मंत्रं तरणसिद्धिदम् ।
रक्षाकरं महासौख्यं शारभं तीव्रमद्भुतम् ॥१॥
भूपुरद्वयमालिख्य मध्ये पार्थिवमक्षरम् ।
चतुष्कोणे तु लंकारं अष्टदिक्षु तदा लिखेत् ॥२॥
परितो वायुबीजं च नैरंतर्य्यन्तु संमुखम् ।
प्रतिष्टाप्यानिलं यंत्रं तोये संतारयेद् बुधः ॥३॥
कृत्वा यंत्रं जले देवि तत्परं निम्नगान्तरे ।
यंत्रोपरि स्वयं स्थित्वा देवदत्तं प्रकल्प्यवान् ॥४॥
त्रिवारं मनसा मंत्रं जपेदेकाग्रमानसः ।
निम्नगांतरसा तीर्त्वा सुखं गच्छति मानवः ॥५॥

ओं नमः शरभ-सालुव-पक्षिराजाय सर्वभूतमयाय सर्वमूर्तये रक्ष २ शीघ्रं तारय २ ओं श्रीं ह्री क्षं लं टं लं यं प्रतरणाय स्वाहा ॥

ओं नमो भगवते महाशरभ-सालुवाय पक्षिराजाय वरवर अष्टमूर्तये अखिलमयाय पालय २ भक्तवत्सलाय प्रणातार्तिविनाशनाय उत्तारय २ शीघ्रमुत्तारय श्रां ह्रां ओं हां देवदेवाय उत्तारणाय स्वाहा ॥

इमं मंत्रं महावीर्यं विचित्रं सर्वसाधकम्
जंतुमंभसि मज्जंतं क्षणादुत्कर्षयेच्छिवे ॥
पंचवारं जपेनैव सालुवेशो जगन्मयः
तस्य केशं समुद्धृत्य तत्क्षणादुद्धरेज्जलात् ॥६॥
एतदेव महागुह्यं जगतोद्भुतदर्शकम् ।
भक्तानां सर्वजंतूनां तोयोत्तरणकं शिवे ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधकेन्द्रो जपेदिदम् ॥७॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे चामुण्डी-विधिर्नाम पंचपंचाशोऽध्यायः ॥५५॥

षट्पंचाशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच

वयं ते शृणु वक्ष्यामश्चित्रविद्यां विशेषतः ।
अत्याश्चर्यकरीं श्रेष्ठामतिगुह्यां वरानने ॥१॥
श्री चित्रविद्या मंत्रस्य ऋषिः संवर्त उच्यते ।
छंदस्तु शक्वरी देवी चित्रविद्या तु देवता ॥२॥
अमृतार्णं च रुंकारं वीजं शक्तिर्यथाक्रमम् ।
घृतस्पृष्टौ शुचिःस्पृष्टौ ज्वरमुक्तौ विपत्क्षये ॥३॥
पैत्योन्माद-प्रशमने कायासिद्धौ निषेकके ।
अग्निप्रवेशने वाऽपि तज्जयार्थे नियोजयेत् ।
ताभ्यां न्यासं करांगस्य ततो मूलेन मातृकाम् ॥४॥

ध्यानम् ॥

अमलकमलमध्ये चंद्रपीठे निषण्णा-
ममृतकलशदानाभीतिमुद्राग्र-हस्ताम् ।
प्रणतशिरसि पूरं सस्रवंतं सुधायाः
शरणमहमुपैमि श्रीशिवां चित्रविद्याम् ॥५॥
[1]वं रुं ध्रूं स च जुं ठं ह्लीं श्रीमों नमो भगवतीति च ।
चित्रविद्ये महामाये अमृतेश्वरि तत्परे ॥६॥
सर्वविषं नाशय द्विः सर्वतापज्वरं ततः ।
हन-द्वयं ततः सर्वपैत्योन्मादमतः परम् ॥७॥
मोचयेति द्वयं पश्चादाज्योष्णं शमय द्वयम् ।
सर्वजनं मोहय द्विर्मां ततः पालय द्वयम् ॥८॥
विलोमेनाष्टबीजं च स्वाहांतो मंत्र उच्यते ।
विद्यामंत्रमिदं गुह्यं साधकस्त्वयुतं जपेत् ॥९॥
सहस्रं वा जपेद्देवि सर्वकार्यार्थसिद्धये ।
वृत्तमालिख्य तन्मध्ये बीजषट्कं लिखेत्ततः ॥१०॥

---

१. सं इति ग्रंथे ।

मायया च श्रियावेष्ट्य मनसा साध्यमूर्धनि ।
तत्सुतासेवितं ध्यात्वा देशिकं मूर्ध्नि चिन्तयेत् ।।११।।
विशेत्स्पृशेद्धरेन्सेचेच्चित्रविद्यामनुस्मरन् ।
कारयेद्वाखिलं चान्यैः पैत्योन्मादे तु सुंदरि ।।१२।।
पिष्ट्वाऽथ सौमदं बीजं द्विमात्रं वाऽथ काचकम् ।
सोऽप्यद्वयं समाहृत्य चैकं संयोज्य पाययेत् ।।१३।।
तूष्णीमेव तयोरन्यं पाययेत्तदनंतरम् ।
अपरेऽह्नि तथा कृत्वा प्रातर्यामादनंतरम् ।।१४।।
पंचगव्यं तथा पंचद्रव्य-युक्तं घटोदकम् ।
मंत्रेणानेन संमंत्र्य चैकवारमुदङ् मुखः ।।१५।।
किंचित्किंचिद्गुणैस्तस्मादन्यैः कुंभोदकैर्द्विजैः ।
दक्षिणाभिमुखं साध्यं सहस्रमभिषेचयेत् ।।१६।।
पानं विना त्र्यहं कुर्यादभिषेकं वरानने ।
पैत्यं च केवलोन्मादं ह्यनिद्रां चांगमर्दनम् ।।१७।।
क्षुद्रोन्मादं तथोन्मत्तग्रहे-हृदयविग्रहम् ।
सर्वांगि-दाह-रोगं च नश्यत्याशु न संशयः ।।१८।।
पथ्यं तु पयसा मिश्रमोदनं नान्यमंबिके ।
दत्ते यदि वृथा स्यात्तद्रोग-वृद्धि च तत्त्वतः ।।१९।।
विसं-यावा पया पिष्ट्वा जंबीराम्बुसमाम्लकम् ।
पाययेद्यदि मूर्छास्ति प्रार्थयेद्बहुधा मिथः ।।२०।।
संमंत्र्यानेन तांबूलमंगनानां समर्पयत् ।
तांबूलभक्षणादेव बहुभारद्रवं भवेत् ।।२१।।
न सहत्यंगना स्थातुं क्षणमात्रं च तं बिना ।
कामार्दिता चलच्चित्ता भवेदुत्तानचित्स्वयम् ।।२२।।
वृत्तद्वयं समालिख्य बहिः शूलाष्टकं लिखेत् ।
वृत्तमध्येऽष्टबीजं च मंत्रं तस्यांतरालके ।।२३।।
शूलाग्रे तु लिखेत्साध्यमष्टबीजं द्विधा ततः ।
स्पृशन्मंत्रं त्रिधा जप्त्वा वाहनाद्युपचारकान् ।।२४।।

कृत्वा तच्छतवारं तु मंत्रस्य चित्रविद्यया।
तत्पत्रं गुडमध्यस्थं खादयित्वा प्रवेशयेत् ॥२५॥
पुष्पवत्संधरेज्जंतुं प्रविष्टं हव्यवाहनम्।
यंत्रं गले करे मूर्ध्नि धत्ते यस्तस्य तत्त्वतः ॥२६॥
नास्ति वह्निभयं क्वापि सर्वज्वरभये तथा।
घृतस्पर्शन-भीतिश्च रोग-भीतिश्च सुन्दरि ॥२७॥
तादृशं पुरुषं दृष्ट्वा मुह्यंत्यखिलयोषितः।
प्राप्तयेयुः स्वयं तास्तत्तथा तादृग्विधा नराः ॥२८॥
महागुह्यं महामंत्रमतिचित्रं मनोहरम्।
त्रिधोषसि जपेन्मंत्रं यः स चित्री भवेच्छिवे ॥२९॥
भानुमालोक्य शीतांशुस्तत्करामृतशीतलम्।
जगत्त्रयं चिरं ध्यात्वा जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥३०॥
सूर्यरश्मियुतायाम……स्तस्यामनः शुचिः।
न बाधतेऽखिलान्भक्तान्स्पृशतः सत्यवादिनः ॥३१॥
मंत्रेण संमंत्रितमौषधं वा तैलं घृतं वा भुवनं पयं वा।
दिनं पिबेत्प्रातरुदङ्मुखो यः स कायसिद्धिं लभते दशाहात् ॥३२॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे चित्रविद्या-विधिर्नाम षट्पंचाशोऽध्यायः ॥५६॥

सप्तपंचाशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

अथ देवि महागुह्यं शृणु सर्वार्थसाधकम् ।
शाँतिकं देशिकं स्तोत्रं सारभूतं वदामि ते ।।१।।
देशिक-स्तोत्रमंत्रस्य परब्रह्म ऋषिः स्मृतः ।
छंदस्तु देवी गायत्री देवता देशिकोत्तमः ।।२।।
प्रणवं बीजमित्युक्तं लक्ष्मी शक्तिस्ततः परम् ।
श्री देशिक-प्रसादार्थे सिद्ध्यर्थे विनियुज्यते ।।३।।
ओमित्यादि करन्यासं तथा गौरी षडंगकम् ।
मायया वा करांगस्य न्यासं कुर्यात्समाहितः ।।४।।
शान्तं सर्वमयं प्रसन्नवदनं सर्वोत्तरं शाश्वतम् ।
सत्यं निश्चलमव्ययं विभुमजं तुर्यं चिदंशं वरम् ।।
एकं निर्मलमिन्दुपीठनिलयं ह्रींकारगम्यं शिवम् ।
कार्यं निर्मलमप्रमेयमकलं वन्देऽनिशं देशिकम् ।।५।।
समस्त-भुवनेशाय सच्चिदानंदतेजसे ।
नमः शरभरूपाय गुरुवे करुणानिधे ।।६।।
अनाद्यायाखिलाद्याय मायिने गतमायिने ।
अरूपाय स्वरूपाय शिवाय गुरवे नमः ।।७।।
सालुवाय महेशाय सर्वजीवनिवासिने ।
व्यवस्थातीतकालाय शिवाय गुरवे नमः ।।८।।
विभवे पक्षिराजाय ब्रह्मणे गणनात्मने ।
प्रकाशानंदरूपाय शिवाय गुरवे नमः ।।९।।
वेदवेद्यांतवेद्याय योगिने ब्रह्मवर्चसे ।
सदसद्दृश्यभावाय शिवाय गुरवे नमः ।।१०।।
संसारवार्धिपोताय शंभवे मृत्युमृत्यवे ।
परात्परतरेशाय शिवाय गुरवे नमः ।।११।।

षट्कोशमध्यसंस्थाय सर्वकारणमूर्तये ।
कारणातीतपीठाय शिवाय गुरवे नमः ॥१२॥
प्रणवार्थप्रबोधाय प्रपंचातीततेजसे ।
शब्दब्रह्मस्वरूपाय शिवाय गुरवे नमः ॥१३॥
अज्ञान-तिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१४॥
अज्ञानपाशसंबद्ध-तिमिरावृत-मानसः ।
कृपया श्वासितो यस्य तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१५॥
देश-काल-स्थलं व्याज-संवृत-ध्वांतमात्मनाम् ।
येनामलीकृतं सद्यः तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१६॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१७॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१८॥
सर्ग-स्थिति-लयादीनामादिकर्तारमीश्वरम् ।
नमामि शिरसा देवि देशिकं शरभेश्वरम् ॥१९॥
नमामि सोमसूर्याग्नि-रूपिणं दिव्यतेजसम् ।
ज्ञानदं जीव-लोकानां गुरुनाथं परात्परम् ॥२०॥
भैरवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते वडवाग्नये ।
नमोऽस्तु दुर्गादेव्यै च भद्रकाल्यै नमो नमः ॥२१॥
नमस्ते लोकपालाय सहस्राक्षाय वह्नये ।
यमाय राक्षसेशाय वरुणाय पवस्वते ॥२२॥
किन्नरेन्द्राय रुद्राय व्याधये मृत्यवे नमः ।
कामाय रक्तचामुण्डयै मोहिन्यै च नमो नमः ॥२३॥
द्राविण्यै च नमः शब्दाकर्षिण्यै च गिरे नमः ।
नमो रमायै मायायै पुलिंदिन्यै नमो नमः ॥२४॥
महाशास्ताय क्षोभिण्यै ज्येष्ठादेव्यै नमो नमः ।
ब्रह्मणे च पराशक्त्यै नमो नारायणाय च ॥२५॥

मायायै घोणिने वाण्यै वेधसे बटुकाय च ।
अश्विनीभ्यां नमो वीरभद्राय च नमो नमः ॥२६॥
भाषायै दक्षिणामूर्त्यै कात्यायन्यै नमो नमः ।
नमस्ते घोररूपाय कालरुद्राय ते नमः ॥२७॥
गणेश्वराय कालाय पार्वतीनंदनाय च ।
भैरवाय नमस्तुभ्यं त्वरितायै नमो नमः ॥२८॥
निर्वाणवीरभद्राय वडवानल-शम्भवे ।
नमोऽस्तु वीरमायायै ब्रह्माण्यै च नमो नमः ॥२९॥
माहेश्वर्यै च कौमार्यै वैष्णव्यै च नमो नमः ।
नमः सूकरमुख्यै च सिंहमुख्यै नमो नमः ॥३०॥
इन्द्राण्यै चंडिकायै च मरीच्यै कश्यपाय च ।
नमोऽस्तु भागीरथ्यै च नमो विघ्नेश्वराय च ॥३१॥
ईशानाय कृतांताय भद्रकाल्यै नमो नमः ।
हुंकाल्यै जातवेदाग्नि-दुर्गादेव्यै नमो नमः ॥३२॥
अर्द्धनारीशरूपाय नमस्ते परमात्मने ।
श्वेतभूम्यै च सोमाय नमः शुक्राय विष्णवे ॥३३॥
नमोऽस्तु बलभद्राय कुबेराय नमो नमः ।
परात्परायै दुर्गायै धर्माय परशंभवे ॥३४॥
नमोऽग्नये भैरवाय चाश्विन्यै भार्गवाय च ।
नायकाय नमस्तेऽस्तु वायवे पावकाय च ॥३५॥
इन्द्राय जलनाथाय रुद्रैकादशमूर्तये ।
द्वादशादित्य-रूपाय भारत्यै तांडवाय च ॥३६॥
श्यामभूम्यै नृसिंहाय भूयोभूयो नमाम्यहम् ।
नमः शरभ-सालुव-पक्षिराजाय शंभवे ॥३७॥
ज्ञानमुद्रा-स्वरूपाय गुरवे करुणानिधे ।
देशिकाय नमः सर्वसिद्ध्यै सर्वान्तरात्मने ॥३८॥
बिन्दुनादस्वरूपाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ।
नमोस्वरूपाय जगन्मयाय जगन्निवासाय हिरण्मयाय ।
भूतावसानाय पुरातनाय नवाय नाथाय नमो नमस्ते ॥३९॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बंधुश्च गुरुस्त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव-देव ॥४०॥

सुमतिरखिल-विद्या कंदली-कंद-कंदम् ।
दिवसमनु निपश्यन् चंद्र-पीठे स्वनाथम् ॥
उषसि शरभ-पूजा-सद्विधानं विधाय ।
जपतु सकल-सिद्ध्यै देशिक-स्तोत्र-मंत्रम् ॥४१॥
यो जपेत्प्रत्यहं तस्य सुप्रसन्नो भवेद् गुरुः ।
स्वात्मज्ञानं च लभते सर्वशत्रुजयं तथा ॥४२॥
मंत्राणां सिद्धिभेदं च भोग-भोग्यं जयं तथा ।
आयुरारोग्यवृद्धिं च सर्वसौख्यं लभेद् ध्रुवम् ॥४३॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे देशिक-स्तोत्रं नाम सप्तपंचाशोऽध्यायः ॥५७॥

अथ अष्टपंचाशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

अथ देवि प्रवक्ष्यामि मंत्रं दुस्वप्ननाशनम् ।
अनुभोगानुसाराख्यं पिशाचानां विशेषतः ।।१।।
दुःस्वप्ननाशमंत्रस्य ऋषिः सिद्धामृतेश्वरः ।
छंदस्तु बृहती देवो वरुणो लांतमक्षरम् ।।२।।
बीजं शक्तिव्याहृती च तथा दुःस्वप्ननाशने ।
विनियोगस्ततः पश्चाद्व्याहृत्या सह मंत्रकम् ।।३।।
पादैरर्धैः करांगस्य न्यासमेकैकशः क्रमात् ।

ध्यानम् ।।

पाशांकुश-धनुर्बाण-वरदाभय-दोस्तलम् ।।४।।
सिचंतममृतैर्लोकान्वन्दे देवं प्रचेतसम् ।
[1]यो मे राजन्समुच्चार्य भूर्भुवः स्वरनन्तरम् ।।५।।
दुःस्वप्न नाशनं मंत्रं पश्चाद् बीजं विलोमतः ।
जपेदक्षर-साहस्रं संपुटीकृत्य बीजयुक् ।।६।।
तत्क्रमादेव शिष्टांगं कुर्यादेकैकशोऽम्बिके ।
पंचाशत्कोष्टके यंत्रे विना तारं शिखिस्त्रियुक् ।।७।।
रेखा-रेखाग्र-शूलेषु साध्यं तारेण-वेष्टितम् ।
सारावर्णां प्रयोगाग्नि-घृत-तैलौषधानि च ।।८।।
पुरस्कृत्वा यथा शास्त्रमभिषेकं ततः परम् ।
कृत्वा ततःपरं रक्षां बंधयेत्स्वप्नमुक्तये ।।९।।
अभिषेकं ततः पश्चाद् गर्भलाभाय योषिताम् ।
गर्भरक्षां च तद्वृद्ध्यै कुर्यात्तैल-घृतं तथा ।।१०।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे दुःस्वप्ननाशन-मंत्रविधिर्नामष्टपंचाशोऽध्यायः ।।५८।।

---

१. ऋक्—२-७-१० ।

नवपंचाशोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

अथान्यं संप्रवक्ष्यामि मंत्रं पाशविमोचकम् ।
पूर्ववदृषि-भावादि मंत्रभेदमिहोच्यते ।।१।।
प्रथमं त्वनुलोमेन व्याहृतीः प्रणवं ततः ।
[1]ध्रुवासु त्वेत्यृचं पश्चात्स्वरादि-व्याहृतीस्तथा ।।२।।
ओं स्वाहेति महामंत्रः सर्वपाशविमोचनः ।
पूर्ववत्तु पुरश्चर्यां मंत्री कुर्याद्यथाविधि ।।३।।
सर्पदष्ट-मृतं जंतुं पुनरुत्थापनाय च ।
तापज्वर-विनाशाय सर्वव्याधि-विमुक्तये ।।४।।
शत्रु-कृति-विनाशाय सर्वोन्माद-विमुक्तये ।
महावर्षाकर्षणाय सर्वसौभाग्यसिद्धये ।।५।।
चतुर्विंशतिधा भद्रे जपेदेकाग्रमानसः ।
तत्क्षणादेव सो देवि तत्तत्सिद्धिमवाप्नुयात् ।।६।।
अविश्वासो न कर्तव्यः कृते सर्वं विनश्यति ।
तस्मात्सर्व-प्रयत्नेन जपेत्सिध्यति निश्चयः ।।७।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे पाशविमोचनं नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ।।५९।।

---

१. ऋक्—५-६-१०।

अथ षष्टितमोऽध्यायः

अथ गणपतिप्रयोगः

श्रीशिव उवाच ।।

श्रृणु देवि महागुह्यं मंत्रं सर्वार्थसाधकम्।
काल-मृत्यु-प्रशमनं चतुर्वर्ग-फलप्रदम् ।।१।।
यस्य स्मरण-मात्रेण क्षुभ्यंत्यखिलमूर्त्तयः।
तादृशं भीषणं शान्तं गाणपत्यं वदामि ते ।।२।।
अथो महागणपति-मंत्रस्य गणको ऋषिः।
छन्दस्तु गायत्रं महागणेशो देवतांबिके ।।३।।
पंच पंच तथा पंच द्वि-त्रि-द्विस्तु यथाक्रमम् ।। (करांग-क्रिया)

ध्यानम् ।।

बीजापूरगदेषुकार्मुकरुजा चक्राब्जपाशोत्पल
व्रीह्यग्रस्व-विषाणरत्नकलशप्रोद्यत्करांभोरुहः ।।
ध्येयो वल्लभया सपद्मकरया श्लिष्टोज्वलद्भूषयः।
विश्वोत्पत्ति-विपत्ति-संस्थिति-करो विघ्नो विशिष्टार्थदः ।।४।।
प्रणवं च महालक्ष्मीं मायां कामं क्षमां स्वयम्।
गणपतये तत्पश्चाद्वर वरद तत्परम् ।।५।।
सर्वजनं मे वशं स्यादानयेति ततः परम्।
स्वाहेति मंत्र-रूपं तु देव्यष्टाविंशदक्षरम् ।।६।।
चतुर्लक्षं जपेन्मंत्रमेकलक्षमथापि वा।
चतुरंग-समोपेतं मंत्री सर्वार्थसिद्धये ।।७।।
तर्पणेऽत्र विशेषोऽस्ति चतुरावृतिरित्यथ।
नारिकेरं तिलं गुंजा मोदकं पृथु सक्तु च ।।८।।
ऐक्षवं कदलीं चैव पृथक् सर्वं वरानने।
नैवेद्यं च तथा होमे नित्यहोममथाद्यकम् ।।९।।
बीजं षट्कोणमध्ये स्फुरदनलपुरे तारकं दिक्षु लक्ष्मी।
माया-कंदर्प-भूमी तदनु रसपुटेष्वालिखेद् बीजषट्कम्।

मंत्रोद्धार :—श्रों श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्व जनं मे वशमानय स्वाहा।

तत्संधिश्वंगमंत्रान्वसुदल-कमले मूलमंत्रस्य वर्णा-
न्छिष्टान्पत्रेषु विद्वान्विलिखितु गुणशश्चांत्यमंत्ये पलाशे ॥१०॥
आवीतं लिपिभिः क्रमोत्क्रम-वशात्पाशांकुशाभ्यामपि।
क्ष्मा-कोण-द्वितयेन संवृतमिदं यंत्रं गणाधीशितुः॥
मध्ये षड्भवनेऽष्ट-पत्रपृथिवी बाह्ये त्रिकोणांतरे।
वश्याकर्षण-मारणं-चलगति-ग्रामांतिकं चेष्टदम् ॥११॥
आलिख्य यंत्रं वरशातपत्रे गणेश्वरं सावरणं प्रसन्नम्।
एकोत्तरंविंशति वासरं यः संपूजयेत्सिद्ध्यति तस्य भोगम् ॥१२॥
आदौ गणेशं शिखि-कोणमध्ये त्वावाह्य सर्वं मनसा निवेद्य।
ध्यात्वा चिरं मूर्धनि भानुवारं संतर्पयित्वा स्वकरद्वयाभ्याम् ॥१३॥
अग्रेऽथ बिल्वमभितश्च रमेरमेशौ तद्दक्षिणे वटजुषौ गिरिजावृषांकौ।
पृष्ठे तु पिप्पलजुषौ रति-पुष्प-वाणौ सव्ये प्रियंगुमभितश्च महीकराहौ॥१४॥
देवीमेकां चतुर्वारं मूलमंत्रं यथा पुरा।
तर्पयेच्चतुरो युग्मानृतु-वह्नि-गृहांतरे ॥१५॥
महालक्ष्मीं गणेशं च बिंदौ वह्नि-गृहे ततः।
कोण-षट्केऽग्रमारभ्य ऋद्ध्यामोदौ तु तर्पयेत् ॥१६॥
श्री समृद्धि-प्रमोदौ च कांति-श्रीसुमुखौ ततः।
तत्पश्चान्महादेवि मदनावति-दुर्मुखौ ॥१७॥
पश्चान्मदद्रवाविघ्नौ द्राविणी विघ्नकारकौ।
षट्कोणाष्टास्त्रयोर्मध्ये वाम-दक्षिण-पार्श्वके ॥१८॥
वसुधारा-शंखनिधिं तर्पयेद् वामपार्श्वके।
वसुमत्या युतं पद्मनिधिं संतर्पयेच्छिवे ॥१९॥
तर्पयेदष्टपत्रे तु ब्राह्मण्याद्यष्टमातरः।
अष्टविंशतिवर्णानां चैकमेकं चतुर्विधम् ॥२०॥
मूलं च तर्पणं कुर्याच्चतुर्वारं यथाक्रमम्।
चतुश्चत्वारिंशदधिकं चतुःशतमथो भवेत् ॥२१॥
चतुश्चत्वारिंशद्वारं कुर्यादेवमतंद्रितः।
तस्य सर्वसमृद्धिः स्याद्विघ्नेशस्य प्रसादतः ॥२२॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे गणपतिविधिर्नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

अथ एकषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

अथान्यं वच्मि ते यंत्रं सर्व-कामफलप्रदम् ।
साध्यर्क्षफलके लोहे तालपत्रेऽथ ताम्रके ।।१।।
लिखेत्सप्तचतुःकोष्ठे रेखा-रेखाग्र-शूलके ।
क्रमान्मंत्रं बहिः साध्यमावाह्यात्र गणेश्वरम् ।।२।।
संपूज्य विधिवच्चक्रं स्पृशन्मंत्रं सहस्रधा ।
जपावसानात्पूर्वं तु स्त्रीणामाकर्षणं भवेत् ।।३।।
राज-मित्र-वधूनां च तथा वश्यं च तादृशम् ।

प्रयोगान्तरम् ।।

श्वेतार्कं चाप्यपामार्गं परेत-पृथिवीरुहम् ।।४।।
सिद्धयोगदिनात्पूर्वं शुक्र-सौम्येन्दुवासरे ।
गंधं-पुष्पं च धूपं च बलिं दत्त्वा प्रणम्य तत् ।।५।।
यदर्थं केन सृष्टाऽसि भूतले सांप्रतं वयं ।
आगतस्त्वत्र त्वत्सिद्ध्यै तिष्ठ तिष्ठ महौषधे ।।६।।
इति सूत्रं त्रिधावेष्ट्य दशवारं जपन्मनुम् ।
सिध्ययोगे समुत्पाट्य तन्मूलं छिद्रमादितः[1] ।।७।।
सक्तांगुलीयकं कृत्वा चेष्टा तस्मिन्गणेश्वरम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु जप्त्वा धृत्वांगुलीयकम् ।।८।।
तेन हस्तेन जंतूनां कराग्रं संस्पृशेद् बुधः ।
तस्य स्पर्शन-मात्रेण महावश्यं भवेद् ध्रुवम् ।।९।।
जंतवस्तद्वशं प्राप्य दाश्यंति प्राणमप्यहो ।
मूलमंगाभसा बीजमिन्द्रियेणास्त्रबिंदुना ।।१०।।
पुष्पमास्यांबुना पत्रे रक्तेनागमनस्पिकम् ।
उत्पाट्य पूर्ववत्स्पृष्ट्वा कृष्णधत्तूरकं शिवे ।।११।।

---

१. अछिद्र मूलमित्यर्थः ।

सर्वं गुंजापरीमाणं कृत्वामचटकं पृथक् ।
संस्पृशत्पूर्ववत्स्पृष्ट्वा खाने पाने प्रदापयेत् ।।१२।।
प्राणिनस्तद्वशं गत्वा सर्वे सर्वस्वदा भवेत् ।
मित्रयोः प्रत्ययुर्दभूत साल-मूलं तथोद्धरेत् ।।१३।।
द्विधा भित्वाऽथ मूलानि विपरीतं तु बंधयेत् ।
स्पृष्ट्वा तु पूर्ववज्जप्त्वा श्मशाने कोष्ट-सीमसु ।।१४।।
खनित्वा बलिपूर्वं तु जपेदष्टोतरंशतम् ।
तत्क्षणादेव देवेशि मित्रयोः शत्रुता भवेत् ।।१५।।
मैत्रं जन्मभयोर्मूलं तथा बद्ध्वा खनेद् गृहे ।
तस्मिन्स्थले जपं कुर्यादाशु-मेलन-सिद्धये ।।१६।।
विपज्जन्माङ्गयोर्मूलं विपत्यैकं (?) श्मशानके ।
जन्मसाध्ययोः साध्याय वधाय वधजन्मनोः ।।१७।।
एकीकरणयोर्मूलं द्वयोः परममैत्रयोः ।
शुभाय सिद्धयोगे च दग्धयोगेऽशुभाय च ।।१८।।
पापवारे शुभाय स्याच्छुभाय पापवासरे ।
पुष्पं पुष्यदिने हार्यं फलं च भरणीदिने ।।१९।।
शाखा विशाखा-दिवसे पत्रं हस्त-दिने तथा ।
मूलं मूले तथा कृष्णधत्तूरस्य यथाक्रमम् ।।२०।।
कर्पूरसहितं पिष्ट्वा समे कुंकुम-रोचने ।
मंत्रं तु पूर्ववज्जप्त्वा तिलकं धारयेद् बुधः ।।२१।।
तिलकात्स्त्री वशं याति यथा साक्षादरुन्धती ।
अथो पुष्पलतां लज्जां श्वेताख्य-गिरिकर्णिकाम् ।।२२।।
यथा सरोचनं पिष्टं तिलकं राजमोहनम् ।
याकपूकाष्टकं कृत्वा बाल्यखिल्योदरस्थितम् ।।२३।।
स्वामृतेनाभिमृश्याथ खादयेद्वश्यसिद्धये ।
समंत्राणि तथा कुर्यादनुक्तान्यौषधानि च ।
यस्तस्य सर्वसिद्धिः स्यात्संशयो नास्ति शोभने ।।२४।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे औषधिमंत्रविधिर्नाम एकषष्टितमोऽध्यायः ।।६१।।

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

अथान्यं वच्मि ते देवि मूलिका-सिद्धि संग्रहम् ।
सर्व-लोक-जयं चैव सर्वकार्यार्थ-साधकम् ॥१॥
गुलिका सिद्धियोगेन पेयं चामृतयोगके ।
द्वेषणं दग्धयोगे च मृत्युयोगे च निग्रहम् ॥२॥
विशेषाद्रोगनाशायामृतयोगेऽथ सिद्धके ।
स्तंभनायापरे पक्षे धृति-योग-समन्विते ॥३॥
पंचम्यां शुक्रवारे वा सोमार्कदिवसेऽथवा ।
एकदेशयुतेनापि धृतियोगेऽथ वज्रके ॥४॥
रक्षाबन्धनपूर्वं तु यथोक्त-दिवसे ततः ।
मूलोत्पाटनमंत्रेण साध्यलग्ने समुद्धरेत् ॥५॥
सिद्धौषधे महावीर्ये जगत्कारण-संभवे ।
नाथाज्ञया हरामि त्वां कार्यसिद्धि प्रयच्छ मे ॥६॥
दशवारमिदं जप्त्वा हरेदच्छिद्रमादितः ।
यथायोगे ततः कृत्वा पूर्ववत्कल्पयेत्सुधीः ॥७॥
अश्वगंधा समूलं-त्वक् पिष्ट्वा कर्पूर-संयुतम् ।
पाने खाने प्रदातव्यं रंभा रामा वशंकरम् ॥८॥
जातीफलयुतं पिष्ट्वा वटकं माषमात्रकम् ।
कृत्वांगुलीयकं मूलहेतावारोप्य मेलने ॥९॥
कुर्यादनुक्षणं भाव (?) निषेकं च शनैः शनैः ।
प्रासेद्यदि तथा मोक्षमवसार्य निधाय च ॥१०॥
भावेदमंगुलीयं यत्तस्य वीर्यं-जयं भवेत् ।
हृच्छ्वास-धारणात्पूर्वं कुर्यात्स्तंभस्य सिद्धये ॥११॥
किं च त्रिकं च मूर्धा च हेतुरित्यभिधीयते ।
कच्छपं मङ्गलेवारे मातृकोष्ठेऽग्रमंडपे ॥१२॥

दत्वा बलिं समादाय तस्य रक्तं पटांतरे ।
योषिद्वाह्यांशुकगं च समं तद्वसनं ततः ॥१३॥
पूर्व-पिष्ट-युतं योज्यं नाराचमभिवर्तनम् ।
कार्पास-सूत्र-निर्बद्धं वीत-नाराचमर्बुदे ॥१४॥
विद्धे संलभते देवि तादृशं गुह्यबंधनम् ।
मोचनामोचनं क्षीरक्षालनं गुह्यवस्त्रयोः ॥१५॥
दिवसे वैधृतियुते पूर्णलक्षणसंयुते ।
उत्पाट्य कुलिशं कृत्वा जिह्वामारोप्य मंत्रितम् ॥१६॥
प्रष्णापयेत्कवाटानि सद्यो मुंचति निश्चयः ।
बद्धउद्धमना देवी नीयते तत्कवाटकम् ॥१७॥
उद्ध-मनिरिति ख्यातं तच्चूर्णं कार्यसिद्धिदम् ।
विषघ्नं पाण्डुरोगघ्नं विशेषात्कुष्ठनाशनम् ॥१८॥

कांगोणी ॥

काकमाचि-शिखां हृत्वा कृत्वा तु कुलिशं ततः ।
संपूज्य पूर्ववज्जप्त्वा सर्पावासबिले न्यसेत् ॥१९॥
सर्पं आगत्य कुलिशमाघ्राणति वरानने ।
आदाय कुलिशं पश्चाद् गच्छेदारोप्य मूर्धनि ॥२०॥
सहैव सर्प आगच्छेद्देश-देशांतरेष्वपि ।
सर्पं निर्वर्तितुं देवि कुलिशं भूतले न्यसेत् ।
सर्पो वसति तत्रैव गंध-तोयाभिषेचनात् ॥२१॥

अवला ॥

व्याघात-योग-सहिते लज्जामूलं यथा पुरा ।
सक्तांगुलीयकं कृत्वा धृत्वानामिकयांबिके ॥२२॥
मेलने पुरुषं योषा स्पृशेद्वक्षसि तेन तु ।
तत्क्षणादेव षण्डत्वं जायते मोचने सुखम् ॥२३॥
दर्शे चैत्ररथं मूलमादायोत्तरगं तथा ।
पाटल-व्रीहि-युक् पक्त्वा कृत्वा तु तुषतण्डुलम् ॥२४॥

संपेष्य पयसा मूलमादद्यात्तुष-तण्डुले ।
स्पृष्ट्वा जप्त्वा यथापूर्वं तुषं तुष्टकुलालयोः ॥२५॥
अथो मृत्तापके वह्नौ युज्पत्रावोद्भवे दलम् ।
धुलु धुलायमानेत्रे (?) योजयेत्तण्डुलं तथा ॥२६॥
सुपक्वान्नं भवेत्क्वापि षण्मासमपि निश्चयम् ।
वर्द्धते केसरी बाभूलु ? कांदा भुरंग मुदानि ? ॥२७॥

कालीशेवरी ॥

श्यामोरगस्य सम्भूता कृष्ण-काष्ठविमोचनम् ।
आहृत्य पूर्ववन्मूलमुपरागावसानके ॥२८॥
धृत्वा तु कुलिशं जप्त्वा धृत्वानामिकयाम्बिके ।
तेनादाय करेणांबु-विषग्रस्त-मुखेऽर्पयेत्
त्रिवारार्पणमात्रेण मृतजीवोऽपि जीवति ॥३०॥

हलद ॥

एरण्ड ॥

एरण्ड-पक्व-सुफलं रक्षापूर्वं यथा पुरा ।
उपरागे तयोर्हृत्वा नग्नवेषस्तु निर्भयः ॥३१॥
तस्य बीजं सुबीजेन पेषतां वरवर्णिनि ।
संमृज्य पूर्ववत्तेनालिप्तस्नातां वधूं पुनः ॥३२॥
पश्येद्यदि पतिस्तस्यां न्यस्तचित्तो भवेद् ध्रुवम्
अवसान कृतेनैव तयोर्विद्वेषणं भवेत् ॥३३॥

मारणम् ॥

विपक्षगार्कयोर्मूलमाहृत्य यमदिग्गतम् ।
समस्तं पूर्ववत्कृत्वा श्मशाने बलिपूर्वकम् ॥३४॥
भूयो जपेत्सहस्रं तु जपाद्याम्यं व्रजेद्रिपुः ।
वेध-वैनाशयोर्मूलं ? शिवार्काग्निशिफां तथा ॥३५॥
आहृत्य पूर्ववत्कृत्वा निशायां दक्षिणामुखः ।
दक्षिणस्यां खनेन्मंत्री नग्नरूपः पुनर्जपेत् ॥३६॥

नामपूर्वं त्रिसाहस्रं देशिकाज्ञामनुस्मरन् ।
त्रिदिनाद्वै रिपुर्याति याम्यं घोरतरं पुरम् ॥३७॥

स्तंभनम् ॥

आदाय पूर्ववन्मूलं विष-प्रत्ययवृक्षयोः ।
जिह्वा-नयन-हृच्छ्रोत्र-हनु-पत्करसाध्ययुक् ॥३८॥
मातृकोष्ठे यथा द्वारे चित्रे-तोरण-मन्दिरे ।
खनित्वा तु जपेद्भूयो मघवास्य सहस्रकम् ॥३९॥
सर्वस्तंभमिति ख्यातं संशयो नास्ति सर्वदा ।
प्राणप्रतिष्ठा पूर्वं तु कुर्यात्सर्वमतंद्रितः ।
यस्तस्य सर्वसिद्धिः स्यान्न चेत्सर्वं न सिद्ध्यति ॥४०॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे मूलिकाविधिर्नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

अस्य श्रीकालमंत्रस्य पुलस्त्यो भगवानृषिः ।
छंदस्तु जगती प्रोक्ता देवता काल उच्यते ॥१॥
द्रां बीजं प्रकृतिः शक्तिर्नियोगः [1]सर्वनाशने ।
द्रामित्यादि करांगस्य न्यासं मूलेन वाम्बिके ॥२॥

ध्यानम् ॥

आरुढं सैरिभेन्द्रं ज्वलदनलशिखं मुंड-मांसास्थिमालाम् ।
प्रासं शूलं च वज्रं मुसलमथ हलं चर्मपात्रं च पाशम् ॥
हस्तैर्बिभ्राणमंसस्थ-नमितमुखं भीमकायं त्रिनेत्रम् ।
कालं घोराट्टहासं रिपुकुलमथनं खर्वगर्वं नमामि ॥३॥

मंत्रः—

ओं नमो भगवते कालाय घोराय वज्रदंष्ट्राय
शत्रुनाशाय सर्वभूतदमनाय हुं फट् स्वाहा ।
एतन्मंत्रं महावीर्यं सर्वभूतारिनाशनम् ।
पंचत्रिंशल्लिपिमयं पशूनां भीतिदायकम् ॥४॥
कवचोक्त-महायंत्रे मंत्रमालिख्य साधकः ।
सम्पूज्य [2]पंचभांतेन जपं कुर्यात्सहस्रकम् ॥५॥
जपावसाने देवेशि कालकृष्टो भवेद्रिपुः ।
शकलं हेतुसंयुक्तं पुनः कालाय वेदयेत् ॥६॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे कालविधिर्नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

---

१. शत्रुनाशने ।

२. पञ्चतिक्तेन-पञ्चतत्त्वेन ।

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

अथ षण्मुख-मन्त्रस्य भगवान्काश्यपो ऋषिः ।
त्रिष्टुप्छंदस्तथा देवः सुब्रह्मण्योऽथ देवता ॥१॥
सुं बीजं सं ततः शक्तिर्नियोगो विजयाय वै ।
सामित्यादि करांगस्य न्यासं मूलयुतं शिवे ॥२॥

ध्यानम् ॥

शक्तिहस्तं विरूपाख्यं शिखिवाहं षडाननम् ।
दारणं रिपुरोगघ्नं भावयेत् कुक्कुटध्वजम् ॥३॥

मंत्रः—

[1]सुंकारं पूर्वमुच्चार्य्य सुब्रह्मण्याय तत्परम् ।
वह्नि जाया-समोपेतं मंत्रमष्टाक्षरं परम् ॥४॥
अष्टाष्ट-कोष्टके यंत्रे रेखा-शूलाग्र साध्यके ।
आदौ सुं वर्जयित्वाऽथ लिखेन्मंत्रं परात्परम् ॥५॥
अंत्यकोष्ठे लिखेत्सुं च बाह्यवीथीं विना ततः ।
मातृका ल-क्षहीना च लिखेत्संधौ यथाक्रमम् ॥६॥
पादि-क्षांतं बहिर्वीथ्यां प्रकृतित्रिशिखां ततः ।
अकारादि नकारान्तं बाह्यरेखान्तरालके ॥७॥
पाशावृतं महायंत्रं परमं सर्वसिद्धिदम् ।
गुहमाराध्य यंत्रे तु जपेत्स्वेष्टार्थसिद्धये ॥८॥
त्रिसहस्रं जपादेव साधकस्याखिलं लभेत् ।
अण्डादि मेरुपर्यन्तं कार्येषु सकलेषु च ।
तत्तत्कार्यार्थ-सिद्ध्यर्थं त्रिसाहस्रं जपेच्छिवे ॥९॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे षण्मुखमंत्रविधिर्नाम चतुषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

---

१. मन्त्रोद्धार :—सुं सुब्रह्मण्याय स्वाहा ।

अथ पंचषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

अथ वक्ष्यामि देवेशि भैरवस्य महात्मनः
रक्षणाय समस्तानां मंत्रं सर्वार्थसिद्धये ॥१॥
महाभैरवमंत्रस्य वामदेव ऋषिः स्मृतः ।
अत्यनुष्टुप् तथा छंदो देवता वटुकः शिवः ॥२॥
वंकारं बीजमित्युक्तं हुंकारं शक्तिरुच्यते ।
सर्व-विघ्न विनाशार्थे विनियोगस्ततः परम् ॥३॥
वां-हामित्यादिना देवि करांगन्यासमाचरेत् ।

ध्यानम् ॥

करकलितकपालः कुंडली दंडपाणि-
स्तरुणतिमिरनीलो व्यालयज्ञोपवीती ।
कृत-समय-सपर्या विघ्नविच्छेदहेतुः
जयतु वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥४॥

मंत्रः—

[1]प्रणवं च महालक्ष्मीं महामायां च मन्मथम् ।
चिंतामणिं च वंकारं वटुकाय द्वयं ततः ॥५॥
आपदुद्धारणाय कुरु कुर्विति ततःपरम् ।
वटुकाय ततः पश्चान्नमोऽन्तं सर्वसिद्धये ॥६॥
द्वात्रिंशदक्षरं मंत्रं नमः स्थाने तु पल्लवे ।
निग्रहोच्चाट-वश्यानां [2]द्विठं शेषं यथातथम् ॥७॥
चतुरंगयुतं कुर्यात्पुरश्चर्यां यथा पुरा ।

---

१. मन्त्रोद्धार :—ओं श्रीं ह्रीं क्लीं र्क्ष्म्रयां वं वटुकाय वटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु वटुकाय ह्रीं नमः ।

२. स्वाहा ।

श्रीर्माया-स्मर-कूटमंत्र विलिखेन्मध्ये दलेष्वष्टसु ।
द्वि प्रोक्तं वटुकाय शब्दमपरान्मंत्रस्य वर्गान्बहिः ॥
अष्ट-द्वंद्व-दलेषु तद्वहिचरस्तत्पत्रसंख्येषु च ।
द्वात्रिंशद्दलकादि-सांत-सहितं यंत्रं लिखेद् भूपुरे ॥८॥
अनुक्तानामथो नाम यंत्रस्योपरि कर्म च ।
साध्यमालिख्य तत्पश्चात्कुर्याद्यंत्रप्रयोगकम् ॥९॥
चतुःषष्टिक्रियास्वेव यो जपेन्मंत्रवित्तमः ॥१०॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे भैरव-विधिर्नाम पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

वदामि शृणु ते देवि त्वरितां क्षिप्रसिद्धिदाम् ।
सप्तत्रिंशल्लिपिमयीं सर्वशत्रूनिवर्हणाम् ।।१।।
त्वरितायाश्च मंत्रस्य सद्योजात ऋषिः स्मृतः ।
अतित्रिष्टुप् तथा छंदो देवता त्वरितेश्वरी ।।२।।
त्वंकारं बीजमित्युक्तं भंकारं शक्तिरुच्यते ।
स्वेच्छाकरणसिद्ध्यर्थे विनियोगस्ततः परम् ।
भामित्यादि करन्यासं त्वामिति स्यात्षडंगकम् ।।३।।

ध्यानम् ।।

पिच्छामंडित-कुंडलांत-विलसच्छीतांशुलेखां पराम् ।
गुंजाहारविभूषणां कुचभरक्लान्तां प्रवालांबराम् ।।
वन्दे तां खचरेश्वरप्रियतमां बाणालसत्कार्मुकाम् ।
नित्यानंदमयीं प्रसन्नवदनां नीलोत्पलश्यामलाम् ।।४।।

मंत्रः—

[1]आदौ हसतु तत्पश्चात्तया सरटु तत्परम् ।
पश्चात्करटु तत्पश्चात्करापयिटु तत्परम् ।।५।।
टभिमयस्तु तत्पश्चादलुटूद्यमुमुक् घ च ।
रभसं विपटु तथा हानपिट्थ तत्परम् ।।६।।
स्वाहेति मंत्ररूपार्णं त्रिंशादुतरसप्तकम् ।
अशेषांगयुता देवि पुरश्चर्या यथापुरा ।।७।।
जपांते सिद्धयोगे तु संपदादि शुभर्क्षके ।
कवचस्थं महायंत्रं हेमपत्रे विलिख्य तु ।।८।।
त्वरितामंत्रवर्णानि लिखेत्तस्मिन्यथाक्रमम् ।
हाकारमर्धसंधौ तु तत्रावाह्य महेश्वरीम् ।।९।।

---

१. मन्त्रोद्धारः—हसतु सरटु करटु करापयिटु टभिमयस्त्वलुटूद्यमुमुक्घरभसं विपटु हान पिट्थ स्वाहा ।

आराध्याथ परैः सम्यक् जपेन्मंत्रं सहस्रधा।
तदा तस्य महेशानि त्वरिता सुप्रसीदति ॥१०॥
उपस्थां त्वरितां धीरः साधको देशिकं स्मरन्।
आगच्छेति त्रिधा ब्रूयात्सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् ॥११॥
चिरं ध्यात्वा महादेवीं कुर्यादावाहनादिकम्।
क्रमशो मूलमंत्रेण धूपदीपावसानके ॥१२॥
निवेद्य तस्याः प्रथमं पुनर्धूपादिकं यजेत्।
त्वरिता तस्य तुष्टाहं किं करोमीति ते वद ॥११॥
संवदे बहुशो देवी दृढचित्तस्तु साधकः।
अभीष्टं प्रार्थयेत्तत्र भक्तिपूर्वं यथोचितम् ॥१४॥
ततो देवी महातुष्टा साधकेन यदीरितम्।
विहिताविहितं वापि ददात्येव न संशयः ॥१५॥
एतद्विधानकं श्रेष्ठं गुह्याद् गुह्यतरं परम्।
सर्वदोषहरं सौम्यं सर्व-सौभाग्य-साधकम् ॥१६॥
सर्वभूत-ग्रहादीनां नाशनं वैरिनाशनम्।
सर्वोत्पातहरं दिव्यं सर्वचित्र-विचित्रदम् ॥१७॥
सर्वरक्षाकरं क्रूरं सर्वोच्चाटकरं तथा।
साधकाभीष्टदं देवि संशयो नास्ति सर्वथा ॥१८॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे त्वरिताविधिर्नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

वक्ष्यामि वीरभद्रस्य मंत्रं सर्वार्थसाधकम् ।
निग्रहानुग्रहकरं साधकानां जयप्रदम् ॥१॥
श्री वीरभद्र मंत्रस्य कालरुद्र ऋषिः स्मृतः ।
जगती छंद इत्युक्तं वीरभद्रस्तु देवता ॥२॥
वीं बीजं हुं ततः शक्ति विनियोगस्तु निग्रहे ।
व्यामित्यादि करांगस्य न्यासं कृत्वाऽथ भावयेत् ॥३॥

ध्यानम्—

मरकतमणिनील किंकिणीजालमालम्
प्रकटितमुखमीशं भानु-सोमाग्नि-नेत्रम् ।
अरिदरमसि-खेटत्यग्रमुंडाग्रहस्तम्
विधुधरमहिभूषं वीरभद्रं नमामि ॥४॥

मंत्रः—

ओं नमः पुर्वमुद्धृत्य वीरभद्राय तत्परम् ।
वैरिवंश-विनाशाय सर्वलोकभयं तथा
कराय भीमवेषाय हुं फट् च विजयद्वयम् ॥५॥
ह्रीं खं फट् च रिपून् फट् च स्वाहांतो मंत्र उच्यते ।
जपेदक्षरसाहस्रमशेषांगयुतं शिवे ॥६॥
ठकारमध्ये परिलिख्य मंत्रं बाह्येषु पत्रेषु च हुंफडर्णम् ।
संवेष्ट्य पाशांकुश-मातृकार्णान्नाराधयेच्छ्यामल-वीरभद्रम् ॥७॥
आराधनावसाने तु मातृकावर्णपूर्वकम् ।
सर्वकार्यार्थसिद्ध्यर्थं जपेत्सिध्यति शोभने ॥८॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे वीरभद्रविधिर्नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

---

१. मंत्रोद्धार :—ओं वीरभद्राय वैरिवंशविनाशाय सर्वलोकभयंकराय भीमवेषाय हुं फट् ह्म्रौं ह्म्रौं ह्रीं खं फट् रिपून् फट् स्वाहा ।

अथ अष्टषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

वदामि ते महेशानि वडवानल-भरवम् ।
सर्वलोकैक-संहारकारणं दारुणं परम् ।।१।।
अस्य देवस्य मंत्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा तदुच्यते ।
छंदस्तु गायत्री देवो वडवानलभैरवः ।।२।।
प्रं बीजं च ततः स्वाहा शक्तिर्योगस्तु दाहने ।
प्रामित्यादिकरांगस्य न्यासं ध्यानमनन्तरम् ।।३।।

ध्यानम् ।।

ज्वालामालाभमंत्य-प्रलय-विभवजा-ज्वलयमानोर्ध्वकेशम् ।
धूमं-शक्ति-कपालं-त्रिशिखमथकरैरुद्वहंतं त्रिनेत्रम् ।।
प्राणाधीशं प्रसन्नं प्रणतभयहरं स्पंदमानाधरोष्ठम् ।
वन्दे सर्वारिलोक-ग्रसनपटुतरं भैरवं वाडवाग्निम् ।।४।।

मंत्रः—

[1]प्रामों नमो भगवते वडवानल तत्परम् ।
भैरवाय ततः पश्चात् ज्वल द्विः प्रज्वलेति च ।।५।।
तत्परं वैरिलोकं च दहद्विर्वह्निर्धर्मिणी ।
श्री चतुस्त्रिंशदर्णं च पुरश्चर्यां यथा पुरा ।।६।।
कवचोक्त यंत्रे परिलिख्य मंत्रं हरकोष्टयुग्मे त्रिशिखाग्र-नाम ।
अभिवेष्ट्य मायामभिमृश्य मंत्रं निखनेत् श्मशाने रिपुमारणाय ।।७।।
यमुद्दिश्य जपेन्मंत्रं त्रिसहस्त्रं यमाननः ।
त्रिरात्रं निशितं देवो दहत्याशु न संशयः ।।८।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे वडवानलभैरवप्रयोगोनाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः ।।६८।।

---

१. मन्त्रोद्धार :—प्रामों नमो भगवते वडवानल-भैरवाय ज्वल ज्वल प्रज्वल वैरि-लोकं दह दह स्वाहा ।

अथ एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

मायाप्रयोगस्तु पंचविंशेऽध्याये लिखितः ।।

अथ ब्राह्मी

श्रीशिव उवाच ।।

अथ ब्राह्म्यास्तु मंत्रस्य ब्रह्मा गायत्रमुच्यते ।
ऋषिः छंदस्तु गायत्री देवता भूस्तु बीजकम् ।।१।।
ततस्तु शक्तिर्गायत्री विनियोगः प्रसादके ।
न्यासद्वयं मंत्रवर्णैर्भागशो भावनोच्यते ।।२।।

ध्यानम् ।।

रक्तां रक्तसुमाल्य-लेप-वसनां भूषादिभिर्भूषिताम्
शुद्धां स्मेरचतुर्मुखीं शुभतरग्रीवां द्विनेत्रांचलाम् ।
देवीं दण्ड-कमंडलुं स्रुव-स्रुचाक्षस्रक्करांभोरुहाम्
ब्राह्मींभक्तजनेष्टदाननिरतां वन्दे सुहंसाननाम् ।।३।।

मंत्रः—

[1]तारं च बीजमुद्धृत्य गायत्रीं तदनंतरम् ।
जपेदक्षरलक्षन्तु तदर्धं वा सहस्रकम् ।।
सर्वांग-सहितं देवि चतुर्वर्गार्थसिद्धये ।।४।।

शक्तेर्बाह्य-कृशानुकोण-विलसद् भूरादिसत्कर्णिकम् ।
वस्वब्ज-स्वरयुग्मकेसर-दलैर्वर्गैस्त्रिवर्णैर्मनोः ।।
चूडामंत्र-तुरीय-वेष्टितमिदं क्ष्माकोण-तारांकितम् ।
गायत्र्याः कथितं महः प्रभृतिभिर्यंत्रं तु दिक्ष्वंकितम् ।।५।।

चक्रमध्ये स्थितां ब्राह्मीं प्रातर्हृदयमध्यगाम् ।
दृढ़चित्तः स्थिरं ध्यात्वा सप्तव्याहृतिपूर्वकम् ।।६।।
सहस्रं यो जपेन्नित्यं ब्रह्मकल्पो भवेत्तु सः ।
चूडामंत्रयुतं मंत्रं योजयेद्देवमंबिके ।।७।।
सर्गादि-पंच-कार्याणां कर्ता भवति निश्चयः ।।८।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे ब्राह्मीविधिर्नामैकोन-सप्ततितमोऽध्यायः ।।६९।।

---

१. मन्त्रोद्धार :—ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

माहेश्वर्य्यास्तु मंत्रस्य तथा रुद्रःऋषिः स्मृतः ।
छंदस्तु देवी गायत्री देवता सा महेश्वरी ।।१।।
भुवो बीजं ततः शक्तिर्गायत्री स्वेष्टयोगकम् ।
न्यासादिकं यथापूर्वं ध्यानभेदमिहोच्यते ।।२।।

ध्यानम् ।।

श्वेताभां श्वेतवस्त्रां कुचभरनमितां श्वेतमाल्याभिरामाम् ।
त्रेधा शूलं-कपालं-कनकमणिजपस्त्रवहंतीं कराब्जैः ।।
वन्देऽनड्वाहरूढां स्मित-विशद-चतुर्वक्त्र-पद्मां त्रिनेत्राम् ।
माहेशीं स्निग्धकेशीं मणिमयवलयां मन्यु-युक्तां प्रसन्नाम् ।।३।।

मंत्रः—

[1]प्रणवं च भुवः पश्चात्ततः पूर्वोक्तमंत्रकम् ।
पुरश्चर्यां च योगं च सर्वं पूर्ववदाचरेत् ।।४।।
मध्ये शक्तिं भुवश्च प्रणवमथ वसोः पत्रके क्षेत्रवर्णम् ।
बाह्ये भूस्वर्महस्तदृतुगृहविवरे षोडशारे स्वरांश्च ।।
बाह्ये चूडाख्यमंत्रं कचटतपयशहं तुर्यं मंत्रं च तारम् ।
सावित्र्या यंत्रमेतत्सकलविजयदं सर्व-सौभाग्य-हेतुः ।।५।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे माहेश्वरी विधिर्नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।।७०।।

---

१. मन्त्रोद्धार :—ओं भुवः ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

अथैकसप्ततिमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

कौमार्यास्त्वथ मंत्रस्य भरद्वाजः ऋषिः स्मृतः ।
पंक्तिश्छंदस्तथा देवी कौमारी देवताम्बिके ।।१।।
कं बीजं चाथ हुंशक्तिः प्रसादार्थे नियोगकम् ।
क्वामित्यादि करांगस्य न्यासं कुर्यात्समाहितः ।।२।।

ध्यानम् ।।

पीताभां शक्ति-खड्गाभय-वरसुभुजां पीतमाल्यां शुकाढ्याम् ।
देवीं बर्हाधिरूढां हिमकरशकला बद्ध-नीलालकांताम् ।।
नानारत्नै-र्विचित्रैरनु खचित महाभूषणैर्भू षितांगाम् ।
ध्यायेत् सर्वार्थसिद्ध्यै प्रणतभवहरां दिव्यहारां कुमारीम् ।।३।।

मंत्रः—

[1]क्वामों नमो भगवति कौमारि शिखिवाहने ।
मां पालय ततः पश्चात्सकलासुरमर्दिनि ।।४।।
एह्येहि च ततः पश्चाद्रिपून्मर्दय मर्दय ।
हुं हुं फट् च ततः स्वाहा चतुश्चत्वारिंशदक्षरम् ।।५।।
यथापूर्वं पुरश्चर्यां कृत्वा शरभ-चक्रके ।
क्रमादालिख्य मंत्रन्तु कुर्यात्स्वेच्छा-क्रियादिषु ।।६।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे कौमारीविधिर्नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।।७१।।

---

१. मंत्रोद्धार:—क्वामों नमो भगवति कौमारि शिखिवाहने मां पालय सकलासुरमर्दिनि एह्येहि रिपून् मर्दय मर्दय हुं हुं फट् स्वाहा ।

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

अथ मन्त्रस्य वैष्णव्या ऋषिर्विष्णुरनंतरम् ।
गायत्रं-छंद इत्युक्तं वैष्णवी देवता ततः ॥१॥
वं बीजं चाथ सं शक्तिर्विनियोगस्त्वभीष्टके ।
वां सामित्यादि हस्तस्य न्यासमंगस्य तत्परम् ॥२॥

ध्यानम् ॥

मरकत-मणि-नीला नीलवासोवसाना ।
विधृत मणि-जपस्रक्-कंबु-चक्राम्बुजाढ्या ॥
चपलगरुडरूढा सर्वतो वक्त्रपद्मा-
दिशतु दिनमघघ्नी जीवनी वैष्णवी नः ॥३॥

मंत्रः—

[1]तारं वं सं समुच्चार्य गायत्रीं तदनंतरम् ।
सप्तविंशति वर्णं तु पुरश्चर्या यथा पुरा ॥४॥
मध्ये तारं वसस्वो हुतवहभवने कोणषट्के नभोक्ता-
मष्टारे मंत्रवर्णं लिपिभिरभिवृते भूपुरे तुर्य-मंत्रम् ।
चूडामंत्रं स्वनाब्जे हनि-हन-सहित-वैष्णवीयंत्रमेतत् ।
भक्ताभीष्टार्थ-दान-प्रचुरतर-महो प्राणिनां भाग्यधेयम् ॥५॥
आराध्य देवीमनुवासरं यो जपेत्सहस्रं प्रयतः प्रदोषे ।
तस्याशुसिद्धिं धनधान्यवृद्धिं सौभाग्यजालं तनुते तु लक्ष्मीः ॥६॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे वैष्णवीमंत्रविधिर्नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

---

१. मन्त्रोद्धारः—ओं वं सं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

अथ मन्त्रस्य वाराह्या ऋषिरत्रिर्जितेन्द्रियः ।
छन्दोऽनुष्टुप् ततो देवी वाराही देवतांबिके ।।१।।
बं बीजमथ हुं शक्तिरभीष्टे विनियोगकम् ।
वामित्यादि करांगस्य न्यासं मूलेन चांबिके ।।२।।

ध्यानम् ।।

वज्रोपलसमां नीलां प्रसन्नां महिषासनाम् ।
सर्वदुःखहरां घोरां स्तब्धलोमाननां नुमः ।।३।।

मंत्रः—

[1]वंकारं पूर्वमुच्चार्य वाराहीति ततः परम् ।
स्वाहेति मंत्ररूपं तु सर्वदुष्टहरं परम् ।।४।।
अक्षरस्य त्रिसाहस्रं जपेत्सांगमथो निशि ।
पंचकोणे लिखेन्मंत्रं मध्ये बीजं तदग्रके ।।५।।
साध्यं मायावृतं यंत्रं सर्वदुष्टनिवारणम् ।
सम्पूज्य विधिवद्देवीं जपेदष्टसहस्रकम् ।
दक्षिणाभिमुखं देवि तत्क्षणाद्रिपुनाशनम् ।।६।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे वाराहीविधिर्नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।।७३।।

---

१. मन्त्रः—वं वाराही स्वाहा ।

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

नारसिंह्याश्च मंत्रस्य ऋषिर्घोरतमाः स्मृतः ।
छंदः पंक्तिस्तथा देवि नारसिंही तु देवता ॥१॥
नं बीजमथ फट् शक्तिः सर्वोच्चाटे नियोगकः ।
नामित्यादि षडंगं स्यात्करन्यास-पुरःसरम् ॥२॥

ध्यानम् ॥

अश्वाधिरूढामतिभीमगात्रीमराति-वर्गानति-घातयंतीम् ।
शिलाविभंगैर्विविधैः कुचाभिर्नमामि घोरां वरदां नृसिंहीम् ॥३॥

मंत्रः—

नमो नमो भगवति नारसिंहि सर्वलोकेश्वरि
सकलासुरमर्दिनि समस्तरिपूनुच्चाटयोच्चाटय स्वाहा ।
शरभेश्वरचक्रे तु कामां मंत्रं विलिख्य तु ।
मध्ये कोष्ठे द्वये वायुं तत्रावाह्य यजेत्ततः ॥४॥
सहस्रं प्रजपेन्नित्यं पंचाशन्निशि साधकः ।
ग्रावाण-पीडितः शत्रुः क्षणभोग्यो मृतप्रजः ॥५॥
दशाहाद्बंधुभिः सार्धं देशांतरगतो भवेत् ॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे नारसिंहीविधिर्नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

अथ पंचसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

मंत्रस्य ऋषिरिंद्राण्यश्छन्दोऽनुष्टुप् पुरंदरः ।
इंद्राणी देवता प्रोक्तां मां माये बीज-शक्तिके ॥१॥
ओंकारः कीलकं योगः स्वेष्टकार्यार्थसिद्धये ।
त्रिभिर्बीजैरथो न्यासं त्वत्तीय्यस्यापि तत् क्रमात् ॥२॥

ध्यानम् ॥

हेमाभां वरमालिकाभिरचितां हेमां प्रसन्नाननाम् ।
नानारत्नविभूषितां नवनवां नाथां हरीशादिनाम् ॥
मायातीतपराक्रमां मदगजस्कंधे-निबद्धासनाम् ।
वंदे नागविनाशिनीं वनकरां वज्रायुधोद्यत्कराम् ॥३॥

[1]बीजादीनि समुच्चार्य इन्द्राणीमास्वृचं ततः ।
इन्द्राणीमासुनारिषु सुपत्नीमहमश्रवम् ॥४॥
न ह्यस्याऽअपरं च न जरसामरते पतिः ।
विलोमानि च बीजानि स्वाहान्तो मंत्र उच्यते ॥५॥
नव सप्तोर्ध्वतिर्यासु रेखासु त्र्यग्रनाम च ।
मंत्रकोष्ठं महायंत्रं सर्वकार्यार्थ-साधकम् ॥६॥
सर्वरोगहरं श्रेष्ठं सर्वकामफलप्रदम् ।
पुरश्चर्या यथा पूर्वं कार्यार्थमयुतं जपेत् ॥७॥
इच्छासिद्धिमवाप्नोति साधको नैव संशयः ॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे इन्द्राणीविधिर्नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

---

१. मन्त्रोद्धार :—ओं भूर्भुवः स्वः इन्द्राणीमासु नारिषु सुपत्नी महमश्रवम् । न ह्यस्याऽअपरं च न जरसामरते पतिः विश्वस्मादिन्द्रऽउत्तरः ॥ स्वः भुवः भूरोम् स्वाहा ॥ ऋग्वेद ०८।०४।०३ ॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ।।

ऋषिर्वसिष्ठश्चामुंडाश्छंदोऽतिजगती तथा ।
देवता सैव ह्लीं बीजं हुं फट् शक्तिस्तु निग्रहे ।।१।।
विनियोगस्तु ह्लामित्यादि करांग-न्यासकं ततः ।

ध्यानम् ।।

ध्यायेत्प्रेतासनस्थां मुसल-शर-गदा-खड्ग-कुतास्यभीतीः ।
गोत्रादानं-शरासं-परिघ-जलधिकं-पाश-खेटं-वरं च ।।
हस्तांभोजैर्वहंतीं शशि-रवि-नयनामक्षवर्णात्मरूपाम् ।
चामुण्डीं मुण्डमालां सकलरिपुहरां श्यामलां कोमलांगीम् ।।२।।

मंत्रः—

ह्लीं नमो भगवति चामुण्डीश्वरि सर्वशत्रुविनाशनि सर्वलोकभयंकरि एह्येहि मां रक्ष रक्ष मम शत्रून्भक्षय भक्षय हुं फट् स्वाहा ।।

एतद्वीर्यं महामंत्रं पंचाशद्वर्ण-संमितम् ।
पूर्ववत्तु पुरश्चर्यां कृत्वा देवीं यजेत्ततः ।।३।।
लेख्यं षण्नवकोष्ठके मनुमथो मध्ये चतुष्के च ह्लीं ।
बाह्ये शूलशिखाग्रके रिपुलिपिः पंचाशदर्णावृतम् ।।
देवीं पूज्य विधानतो निशि बुधो जप्त्वा सहस्रं खने-
द्यंत्रं वैरिकुलांतकं विजयदं चेष्टार्थ-सिद्धिप्रदम् ।।४।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे चामुण्डीविधिर्नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।।७६।।

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

अथ शरभ-भुजंगप्रयात-स्तोत्रम्

श्रीशिव उवाच ॥

नमो विघ्नराजाय वागीश्वराय शिवाय विरञ्चाय नारायणाय ।
नमश्चंद्रचूडाय नाथाय तुभ्यं प्रसीद प्रसीद प्रसीदार्थिनो मे ॥१॥
कुठार-त्रिशूलाभिबाणास्यभीतीन् मृगाब्जाग्नि-घंटा-धनुश्चर्मदानि ।
कराब्जैर्वहंतं निरंतं हर त्वां कदा नाथ पश्याम्यहं सालुवेशम् ॥२॥
[1]लसद्वासवर्णांक वेदास्रमध्ये जपासंनिभे हंसपीठे निषण्णम् ।
जयंतं चिदानंदकंदं प्रसन्नं जगत्कारणं त्वां नमस्यामि शंभो ॥३॥
षडस्रेऽम्बुजे बादिलांतार्ण-युक्ते स्फुरच्चंचलाह्वे वसंतं भवं त्वाम् ।
कृपापूरपूर्णेक्षणंत्याधिनाहं प्रहृष्टोऽस्मि हृष्टोऽस्मि पुष्टोऽस्मि शंभो ॥४॥
दशारेऽम्बुजे दिव्यरत्नप्रभाढ्ये महाहंसपीठे समासीनमाद्यम् ।
जगत्त्राणदक्षं चिदात्मानमेकं शिवं त्वा विनाऽहं न मन्येऽन्यदैवम् ॥५॥
हृदि द्वादशारे हिरण्यप्रभेऽब्जे विराजं महाहंसपीठे प्रतिष्ठम् ।
गुणोपेतमीशं कनत्कादिठांते परं सालुवेशं शरण्यं प्रपद्ये ॥६॥
विशुद्धांबुजे षोडशारे कलाढ्ये निबद्धासनं जीवनाथं वरेण्यम् ।
क्षपाराजचूडं वराभीतिहस्तं पुराणं भजाम्यच्युतं सालुवेशम् ॥७॥
ललाटे हलक्षे दलद्वंद्वपत्रे ज्वलन्मौक्तिकाभे सुहंसासनस्थम् ।
परीतेश-सोमाग्निनेत्रं पवित्रं परं शंभुमीडे पराशक्तिमित्रम् ॥८॥
चतुः-षड्-दश-द्वादशाशास्र-युग्मान्यतीताष्टपत्रे लिखार्णावृतेऽब्जे ।
नमो वाग्भवानी-विसर्गान्तरस्थं नमः सालुवेशं परं मातृकाख्यम् ॥९॥
चतुर्मातृका-पंचपंचाशदर्ण-प्रपूर्णे सहस्रच्छदे स्फाटिकाब्जे ।
प्रणौमि ध्रुवस्थं जगत्साक्षिभूतं प्रकाश-प्रपंच-प्रबोधस्वरूपम् ॥१०॥
नमो दुर्गया भद्रकाल्या च शश्वत्सदासेव्यमानं दयासिंधु-राजम् ।
प्रसन्नं शुभाक्षं शिवं तत्वरूपं परं सालुवेशं नुमः पक्षिराजम् ॥११॥
नमस्त्वालिकाक्षं भयत्राणदक्षं चिताभस्मनोद्धूलिताशेष-कायम् ।
महानागभूषं महेशं गिरीशं मदीयं सदानंदयत्वादि शंभो ॥१२॥

---

१. वादि सान्तांक

महीनीरशुक्रानिलव्योमसोमाहरीशात्ममूर्त्यष्टभेदस्वरूपम् ।
प्रसीदेति रक्षेति वक्तुं भवन्तं वयं के जगन्नाथ शंभो प्रसीद ।।१३।।

सहस्रेष्टकास्रे द्विपत्रे स्वराब्जे लसद् द्वादशारे दशारे षडस्रे ।
चतुष्पत्रमध्ये च मिश्रासनस्थं जगद्रूपिणं नौमि संवित्स्वरूपम् ।।१४।।
समध्यात्मपूर्वाधिदैवाधिभूतं परं पूरुषं योगिनो यं यजंति ।
तमाद्यंतशून्यं जगद्भासयंतं महायोगशीलं सदाहं भजामि ।।१५।।
निवृत्तिः प्रतिष्ठा च विद्येति शांतिस्ततोऽतीतशांतिः कलेति स्वशक्तिम् ।
विभज्य प्रपंच-परिभ्राजयंतं नमः सालुवेशं भजेत्त्वाखिलेशम् ।।१६।।
यदा पुत्रमित्रानुज-भ्रातृवर्गं पिता सद्म माता धनंधान्यजालम् ।
तनुक्ष्मा च पत्नीति सर्वं कृपालो जहत्याशु माँ त्वं त्वमेव प्रसीद ।।१७।।
भव त्राणनाशं पिता सुप्रसादान्यनुस्पूतमीहं तमात्मप्रभावैः ।
शिव त्वाखिलाधारमूर्ते दयाब्धेऽनिशं भावयेऽहं हृदंभोजमध्ये ।।१८।।
नमः कालकालाय रुद्राय तुभ्यं नमः पक्षिराजाय देवेश्वराय ।
नमः सालुवेशाय घोराय तुभ्यं नमो मुण्डमालाय चर्माम्बराय ।।१९।।
इति स्तोत्रमेतद्भुजंगप्रयातं जपंतं पठंतं प्रगायंतमीशम् ।
समस्तापदं प्राक् समुधृद्त्य हस्तैः पुरस्ताच्छिवत्वं ददात्येव सत्यम् ।।२०।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे सालुवभुजंगप्रयातस्तोत्रं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।।७७।।

अथ अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

शरभहृदयम्

श्रीदेव्युवाच ॥

भगवन्देवदेवेश सर्वशास्त्रार्थवादक ।
ब्रूहि मे सर्वपापघ्नं किं मंत्रमिष्टकामदम् ॥१॥
केन पुण्यप्रभावेन शत्रूणां प्राणनाशनम् ।
सर्वपापप्रशमनं धन्यमायुष्यवर्धनम् ।
ब्रूहि मे कृपया शंभो त्वत्पादकमलं नमः ॥२॥

ईश्वर उवाच ॥

शृणु वक्ष्यामि देवेशि सर्वपापहरं परम् ॥३॥
सर्वशत्रुहरं दिव्यं हृदयं शरभस्य च ।
सालुवं सर्वरोगघ्नं हृदयं परमाद्भुतम् ॥४॥
गुह्याद्गुह्यतरं गुह्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ।
पुरा नारायणः श्रीमान् क्षीराब्धौ मथनं ततः ॥५॥
तस्य प्रारंभसमये हृदयं शरभस्य च ।
प्रातः कालेऽजपन्नित्यं विंशदावर्त्तिकं मुदा ॥६॥
एवं मासत्रयं कृत्वा प्रादुर्बभूव सालुवः ।
तस्य सोदंडवद्भूमौ प्रणम्य च पुनः पुनः ॥७॥
तमुत्थाप्य महातेजा मूर्ध्न्युपाघ्राय सालुवः ।
संतुष्टः प्रत्युवाचेदं निर्विघ्नेनामृतं भवेत् ॥८॥
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै रक्षणं सर्वविश्वकम् ।
ततो नारायणो देवः प्रणमानोऽब्रवीद्वचः ॥९॥

नारायण उवाच ॥

देव देव महादेव पक्षिराज महाप्रभो ।
हृदयं तव देवेश तस्य को वा ऋषिर्वद ॥१०॥

श्री शरभेश्वर उवाच ॥

छंदः किं बीजशक्ति च किं फलं वद मे प्रभो ।
शृणु वक्ष्याम्यहं विष्णो हृदयं मम सालुवम् ॥११॥
सर्वपापक्षयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ।
सर्वक्लेशविनाशं च सर्वसंतोषकारणम् ॥१२॥
सर्वसौभाग्यदं शांतं सर्वमंगलवर्धनम् ।
ऋषिः कालाग्निरुद्रस्तु जगती छंद ईरितम् ॥१३॥
खं बीजं च महं देव शक्तिः स्वाहेत्युदीरितम् ।
कीलकं नम इत्याहुरिष्टार्थे विनियोगकम् ॥१४॥
मूल-न्यासादिकं कृत्वा ध्यायेच्छरभ सालुवम् ।
प्रथमं पक्षिराजं च द्वितीयं शरभं तथा ॥१५॥
तृतीयं सालुवं प्रोक्तं चतुर्थं लोकनायकम् ।
पंचमं रेणुकानाथं षष्ठं कालाग्निरुद्रकम् ॥१६॥
सप्तमं नारसिंहारिमष्टमं विश्वमोहनम् ।
श्रीं ह्रीं क्लीं नवमं चैव हुं हुं हुं दशमं तथा ॥१७॥
क्लीं ह्रीं क्लामेकादशं च द्वादशं सर्वमंत्रवित् ।
त्रयोदशं तु यंत्रेशं चतुर्दशं महाबलः ॥१८॥
पंचदशं पापनाशं षोडशं च करालकम् ।
सप्तदशं महारौद्रं भीममष्टादशं तथा ॥१९॥
एकोनविंशं सांबं च विंशं च शंकरं तथा ।
विंशोत्तरैकं सर्वेशं द्वाविंशं पार्वतीपतिम् ॥२०॥
त्रयोविंशं च ह्रूं ह्रूं ह्रूं चतुर्विंशमनन्तकम् ।
पंचविंशं वृषारूढं षड्विंशं विश्वलोचनम् ॥२१॥
त्रिलोचनं सप्तविंशमष्टाविंशं खगेन्द्रकम् ।
पं पं पं नवविंशं च त्रिंशं भुजगभूषणम् ॥२२॥
एकत्रिंशं च लं लं लं द्वात्रिंशं पंचवक्त्रकम् ।
त्रयस्त्रिंशं च आनंदं चतुस्त्रिंशं परात्परम् ॥२३॥
पंचत्रिंशं च भं भं भं षट्त्रिंशं शत्रुनाशनम् ।
सप्तत्रिंशं स्वयंभूजं विभमष्टत्रिगुं ठितम् ॥२४॥

शूलपाणि नवत्रिंशं चत्वारिंशं कलाधरम् ।
एकचत्वारिंशं सं सं (सं) द्विचत्वारिंश हंसकम् ॥२५॥
एतद् हृदयमायुष्यं मंत्रं सर्वार्थसाधकम् ।
अनेकरत्नलंवानी जटा-मुकुटधारिणम् ॥२६॥
अनेकरत्नसंयुक्तं सुवर्णाचितमौलिनम् ।
तक्षकादि-महानाग-कुंडलद्वय-शोभितम् ॥२७॥
त्रि पंचनयनं पंचवक्त्र-तुंडधरं प्रभुम् ।
करालं भृकुटीभीमं शंखतुल्य-कपोलकम् ॥२८॥
कालीकलित-दुर्गा च पक्षद्वय-विराजितम् ।
दशायुधधंरं दीप्तं दशबाहुं त्रिलोचनम् ॥२९॥
नीलकण्ठधरं भोग-सर्पहारोपशोभितम् ।
विशालवक्षः विश्वेशं विश्वमोहनमव्ययम् ॥३०॥
त्रिपुरारिं त्रिशूलादिधारिणं मृगधारणम् ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं वाडवाग्निस्थितोदरम् ॥३१॥
मृत्यु-व्याधिस्थितोरुं च वज्र-जानुप्रदेशकम् ।
पादपंकजयुग्मं च तीक्ष्णवज्र-नखाग्रकम् ॥३२॥
झणि-नूपुर-मंजीरझणत्किंकिणि-जंघकम् ।
वज्रतुण्ड-महादीप्तं कालकालं कृपानिधिम् ॥३३
एवं ध्यात्वा च हृदयं त्रिंशदावृतिकं क्रमात् ।
नित्यं जप्त्वा सालुवेशं हृदयं सर्वकामदम् ॥३४॥
सर्वपुण्यफलश्रेष्ठं सर्वशत्रुविनाशनम् ।
सर्वरोगहरं दिव्यं भजतां पापनाशनम् ॥३५॥
इहैव सकलान्भोगानंते शिवपदं व्रजेत् ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः शरभः पक्षिराजकः ॥३६॥
ततो नारायणो ध्यात्वा श्रुत्वा रूपं च विस्मितः ।
एतत्ते कथितं देवि हृदयं शरभस्य च ।
पठतां शृण्वतां चैव सर्वमंत्रार्थसिद्धिदम् ॥३७॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे शरभहृदयं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

अथ एकोनाशीतितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

अस्य श्रीशरभाष्टोत्तरशतनाम-महामंत्रस्य योगानंद ऋषिः अनुष्टुप्छंदः श्रीमदघोर-वीर-शरभेश्वरो देवता खं बीजं स्वाहाशक्तिः फट्कीलकम् श्रीमच्छरभ-सालुव अष्टोत्तरशतनाम[1] सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ध्यानम् ॥

अष्टांघ्रिश्च सहस्रबाहुरनलच्छाया शिरोयुग्मधृग्-
यस्त्र्यक्षो द्विखु[2]...पुच्छउदितः साक्षान्नृसिंहासनः ॥
अर्धेनापि मृगाकृतिः पुनरथाप्यर्धेन पक्ष्याकृतिः ।
श्री वीरः शलभः स पातु शलभश्चिन्त्यः सदा मां हृदि ॥१॥

सदा शिवोग्ररूपाय पक्षविक्षिप्तभूभृते ।
नमो रुद्राय रौद्राय महोग्रा[3]साय जिष्णवे ॥२॥
नम उग्राय भीमाय नमः क्रुद्धाय मन्यवे ।
नमो भवाय शर्वाय शंकराय शिवाय च ॥३॥
कालाय कालकालाय महाकालाय मृत्यवे ।
वीराय वीरभद्राय क्षयद्वीराय शूलिने ॥४॥
महादेवाय महते पशूनां पतये नमः ।
एकाय नीलकंठाय श्रीकंठाय पिनाकिने ॥५॥
नमोऽनंताय सूक्ष्माय नमस्ते मृत्यु-मृत्यवे ।
पराय परमेशाय तत्पराय परात्मने ॥६॥
परात्पराय विश्वाय नमस्ते विश्वमूर्तये ।
नमो विष्णुकलत्राय विष्णुक्षेत्राय भानवे ॥७॥
वैकर्ताय किराताय महाव्याधाय शाश्वते ।
भैरवाय शरण्याय महाभैरवरूपिणे ॥८॥
नमो नृसिंह-संहर्त्रे काम-काल-पुरारये ।
कर्मपाशौघसंहर्त्रे विष्णुमायांतकारिणे ॥९॥

---

१. प्रसाद
२. द्विखुरप्र
३. महोग्रास्याय

त्र्यंबकाय च त्र्यक्षाय शिपिविष्टाय मीढुषे ।
मृत्युञ्जयाय रुद्राय सर्वज्ञाय मखारये ॥१०॥
खखोल्काय वरेण्याय नमस्ते वाग्भिरेतसे ।
महाप्राणाय देवाय प्राणापानप्रवर्तिने ॥११॥
त्रिगुणाय त्रिशूलाय गुणातीताय योगिने ।
संसारचक्रवाहाय महायंत्रप्रवर्तिने ॥१२॥
तमस्विद्व्योमसूर्याय मुक्तिवैचित्रहेतवे ।
वरदाय विकाराय सर्वकारणहेतवे ॥१३॥
कपालिने करालाय पतये पुण्यकीर्तये ।
अमोघायाग्निनेत्राय नकुलीशाय शंभवे ॥१४॥
भीषांबराय चंडाय दंडिने घोररूपिणे ।
मेघवाहाय देवाय पार्वतीपतये नमः ॥१५॥
अव्यक्तायाप्यशोकाय स्थिराय स्थिरधन्विने ।
स्थाणवे कृत्तिवासाय नमश्चंद्रार्द्ध मौलये ॥१६॥
नमस्तेऽध्वरराजाय वचसां पतये नमः ।
योगीश्वराय नित्याय सत्याय परमात्मने ॥१७॥
सर्वात्मने नमस्तुभ्यं नमः सर्वस्वराय च ।
एक-द्विस्त्रि-चतुः-पंच-सृष्टिकृत्यस्तुते नमः ॥१८॥
दशकृत्वः शतकृत्वः सहस्रकृत्वो नमो नमः ।
नमो परिमिते कृत्वो नमः कृत्वो नमो नमः ॥१९॥
नमो भूयो नमो भूयो पुनर्भूयो नमो नमः ।

सूत उवाच ॥

नाम्नामष्टशतेनैव स्तुत्वामृतमयेन च ॥२०॥
तथा तथा विनीतव्यस्त्वयैव परमेश्वर ।
एवं विज्ञाप्य सव्रीडं शंकरं नरकेसरम् ॥२१॥
ततस्तुत्वा च भगवान् जीवितं सापराधतः ।
तद्वक्त्रशेषं तद्गात्रं कृत्वा शरभ-विग्रहः ॥२२॥
अतीन्द्रियत्वमगमद्वीरभद्रेक्षणात्ततः ।
अद्य ब्रह्मादयः सर्वे वीरभद्रस्य तेजसा ॥२३॥

देवा ऊचुः ॥

जीवितास्स्मो वयं देवाः पर्जन्येनैव पादपाः ।
अस्माद्भीषादहत्यग्निरुदेति च रविः शशी ॥२४॥
वातो वाति च भीषास्य मृत्युर्धावति पंचमः ।
तद्व्यक्तं परमं व्योम कलातीतं सदाशिवः ॥२५॥
भवंतमेव भगवान्वदंति ब्रह्मवादिनः ।
किं वयं तव पादाब्ज-वदने परमेश्वरः ॥२६॥
नांगीकुर्वन्यजात्यंधं रूपलावण्यदर्शने ।
उपसर्गेषु सर्वेषु त्रायस्वास्मान्नराधिप ॥२७॥
एकादशात्मभगवन् दुःखं नः कृपया हर ।
ईदृशान्यवताराणि दृष्ट्वापि बहुशस्तव ॥२८॥
न विद्मस्ते परं भावं वंचितास्तव मायया ।
देव देव महादेव भीतान्नः पाहि सर्वशः ॥२९॥
त्वं पिता सर्वलोकनां नाथस्त्वं त्वं गुरुः सुहृत् ।
विश्वेश्वर विरूपाक्ष भगवन्करुणाकर ॥३०॥
अस्माभिः सह गंतव्यं तत्क्षंतव्यं परात्पर ।
द्वे तनू तव रुद्रस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः ॥३१॥
घोर एका शिवा अन्या ते प्रत्येकमनेकधा ।
घोरा तव तनू ब्रह्मन् सूर्यो विष्णुर्हुताशनः ॥३२॥
शिवा तव तनू ब्रह्मा आपो धर्मश्च चंद्रमाः ।
उभाभ्यां पाहि भगवन्भीतिभ्योऽस्मान्महाबलः ॥३३॥
भवतेदं जगत्सर्वं व्याप्तं स्वेनैव तेजसा ।
ब्रह्माविष्ण्वर्कशक्राग्नि-जलधर्मपुरोगमाः ॥३४॥
सुरासुराः सुप्रभूतास्त्वत्तः सर्वं महेश्वर ।
ब्रह्माणमिद्रं विष्णुं च यान्तु मृत्युं सुरा नराः ॥३५॥
यतो निगृह्य हरसि हर इत्युक्तं वेदवित् ।
इदं परममाख्यानं पुण्यं सर्वाघनाशनम् ॥३६॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे शरभाष्टोत्तरशतनाम एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

अथ अशीतितमोऽध्यायः

श्रीशिव उवाच ॥

अस्य श्री शरभ सहस्रनाम-स्तोत्र-मंत्रस्य कालाग्नि-रुद्रो-वामदेव ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः शरभ-सालुवो देवता ह्स्रां बीजं स्वाहा शक्तिः फट्-कीलकं शरभ-सालुव प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥

ओं ह्स्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः———हृदयाय नमः

ओं ह्स्रीं तर्जनीभ्यां नमः———शिरसे स्वाहा

ओं ह्स्रूं मध्यमाभ्यां नमः———शिखायै वषट्

ओं ह्स्रैं अनामिकाभ्यां नमः———कवचाय हुम्

ओं ह्स्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः———नेत्रत्रयाय वौषट्

ओं ह्स्रः करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः———अस्त्राय फट्

ओं भूर्भुवः स्वरोम् इति दिग्बन्धः ।

ध्यानम् ॥

क्वाकाशः क्व समीरणः क्व दहनः क्वापः क्व विश्वंभरः
क्व ब्रह्मा क्व जनार्दनः क्व तरणिः क्वेन्दुः क्व देवासुराः ।
कल्पांते शरभेश्वरः प्रमुदितः श्रीसिद्धयोगीश्वरः
क्रीडा-नाटक-नायको विजयते देवो महासालुवः ॥१॥

लं पृथिव्यादि पंचोपचारैः संपूज्य—

श्री भैरव उवाच ॥

श्री नाथो रेणुकानाथो जगन्नाथो जगाश्रयः ।
श्रीगुरुर्गुरुगम्यश्च गुरुरूपः कृपानिधिः ॥१॥
हिरण्यबाहुः सेनानी दिक्पतिस्तरुराट्टरः ।
हरिकेशः पशुपतिर्महांसःपिंजरो मृडः ॥२॥
गणेशो गणनाथश्च गणपूज्यो गणाश्रयः ।
विद्याधिर्बभ्लशः श्रेष्ठः परमात्मा सनातनः ॥३॥
पीठेशः पीठरूपश्च पीठपूज्यः सुखावहः ।
सर्वाधिको जगत्कर्ता पुष्टेशो नंदिकेश्वरः ॥४॥
भैरवो भैरव-श्रेष्ठो भैरवायुधधारकः ।
आततायी महारुद्रः संसारार्क-सुरेश्वरः ॥५॥

सिद्धःसिद्धिप्रदः साध्यः सिद्धमंडलपूजितः ।
उपवीती महानात्मा क्षेत्रेशो वननायकः ॥६॥
बहुरूपो बहुस्वामी बहुपालनकारणः ।
रोहितः स्थपतिः सूतो वाणिजो मंत्रिरुन्नतः ॥७॥
पदरूपः पदप्राप्तः पदेशः पदनायकः ।
कक्षेशोऽहुः भूतदेवो भुवं तिर्वारिवस्कृतः ॥८॥
दूतिक्रमो दूतिनाथः शांभवः शंकरः प्रभुः ।
उच्चैर्घोषो घोषरूपः पत्तीशः पापमोचकः ॥९॥
वीरो वीर्यप्रदः शूरो वीरेशो वीरदायकः ।
ओषधीशः पंचवक्त्रः कृत्स्नवीतो भयानकः ॥१०॥
वीरनाथो वीररूपो वीर-आयुधधारकः ।
सहमानः स्वर्णरेतो निर्व्याधि निरुपप्लवः ॥११॥
चतुराश्रमनिष्ठश्च चतुर्मूर्तिश्चतुर्भुजः ।
आव्याधिनीशः ककुभो निषंगी स्तेनरक्षकः ॥१२॥
षष्टीशो घटिकारूपः फलसंकेतवर्धकः ।
मंत्रात्मा तस्कराध्यक्षो वंचकः परिवंचकः ॥१३॥
नवनाथो नवांकस्थो नवचक्रेश्वरो विभुः ।
अरण्येशः परिचरो निचेयुस्तायुरक्षकः ॥१४॥
वीरावलीप्रियः शांतो युद्ध-विक्रम-दर्शकः ।
प्रकृतेशो गिरिचरः कुलिचेशो गुहेष्टदः ॥१५॥
पंचपंचकतत्वस्थस्तत्वातीत स्वरूपकः ।
भवः शर्वो नीलकंठः कपर्दी त्रिपुरांतकः ॥१६॥
श्रीमंत्र श्रीकलानाथः श्रेयदः श्रेयवारिधिः ।
मुक्तकेशो गिरिशयः सहस्राक्षः सहस्रपात् १७॥
मालाधरो मनःश्रेष्ठो मुनिमानसहंसगः ।
शिपिविष्टश्चंद्रमौली हंसो मीढुष्टमोऽनघः ॥१८॥
मंत्रराजो मंत्ररूपो मंत्रपुण्यफलप्रदः ।
उर्व्यः सूर्म्योद्ग्रीयशीभ्यः प्रथम-पावकाकृतिः ॥१९॥

गुरुमंडलरूपस्थो गुरुमंडलकारणः ।
अचरस्तारकस्तारो वस्वन्योऽनंतविग्रहः ॥२०॥
तिथि-मंडल-रूपश्च वृद्धि-क्षयविवर्जितः ।
द्वीप्यः स्रोतस्य ईशानो धुर्यो गव्य-यतोमयः ॥२१॥
प्रथमः प्रथमाकारो द्वितीयः शक्तिसंयुतः ।
गुणत्रय—तृतीयोऽसौ युगरूपश्चतुर्थकः ॥२२॥
पूर्वजो वरजो ज्येष्ठः कनिष्ठो विश्वलोचनः ।
पंचभूतात्मा साक्षीशो ऋतुःषड्गुणभावनः ॥२३॥
अप्रगल्भो मध्यमोर्म्योजघन्योऽजघन्यः शुभः ।
सप्तधातुस्वरूपश्च अष्टमः सिद्धिसिद्धिदः ॥२४॥
प्रतिसर्पोऽनन्तरूपो सोभ्यो याम्य सुराश्रयः ।
नवनाथ-नवम्यस्थो दिशदिग्रूपधारकः ॥२५॥
रुद्र एकादशाकारो द्वादशादित्यरूपकः ।
वन्यो वसान्यः पूतात्मा श्रवः कक्षः प्रतिश्रवाः ॥२६॥
व्यंजनो व्यंजनातीतो विसर्गः स्वरभूषणः ।
आशुषेणो महासेनो महावीरो महारथः ॥२७॥
अनंतो अव्ययो आद्यो आदिशक्ति-वरप्रदः
श्रुतसेन-श्रुतसाक्षी कवची वशकृद्वशः ॥२८॥
आनंदश्चाद्यसंस्थान आद्याकारणलक्षणः ।
आहनन्योऽनन्यनाथो दुंदुम्यो दुष्टनाशनः ॥२९॥
कर्ता कारयिता कार्यः कार्यकारणभावगः ।
धृष्ण-प्रमृश ईड्यात्मा वदान्यो वेदसम्मतः ॥३०॥
कलानाथः कलातीतः काव्य-नाटक-बोधकः ।
तीक्ष्णेषुपाणिः प्रहितः स्वायुधः शस्त्रविक्रमः ॥३१॥
कालहन्ता कालसाध्यः कालचक्रप्रवर्तकः ।
सुधन्वा सुप्रसन्नात्मा प्रविविक्तः सदागतिः ॥३२॥
कालाग्निरुद्र-संदीप्तः कालांतकभयंकरः ।
खड्गीशः खड्गनाथश्च खड्गशक्तिः परायणः ॥३३॥

गर्वघ्नः शत्रुसंहर्ता गमागमविवर्जितः ।
यज्ञकर्मफलाध्यक्षो यज्ञमूर्तिरनातुरः ।।३४।।
घनश्यामो घनानंदी घनाधारप्रवर्तकः ।
घनकर्ता घनत्राता घनबीजसमुत्थितः ।।३५।।
लोप्यो लुप्यः पर्णसद्यः पण्यः पूर्ण पुरातनः ।
डकारसंधि-साध्यानो वेदवर्णनसांगकः ।।३६।।
भूतो भूतपतिर्भूपो भूधरो भूधरायुधः ।
छंदःसारः छंदकर्ता छंद-अन्वयधारकः ।।३७।।
भूतसंगो भूतमूर्तिर्भूतिहा भूतिभूषणः ।
छत्रसिंहासनाधीशो भक्तछत्रसमृद्धिमान् ।।३८।।
मदनो मादको माद्यो मधुहा मधुरप्रियः ।
जपो जपप्रियो जप्यो जपसिद्धिप्रदायकः ।।३९।।
जपसंख्यो जपाकारः सर्वमंत्रजपप्रियः ।
मधुर्मधुकरः शूरो मधुरो मदनांतकः ।।४०।।
झषरूपधरो देवो झषवृद्धिविवर्धकः ।
यमशासनकर्ता च यमपूज्यो यमाधिपः ।।४१।।
निरंजनो निराधारो निर्लिप्तो निरुपाधिकः ।
टंकायुधः शिवप्रीतष्टंकारो लांगलाश्रयः ।।४२।।
निष्प्रपंचो निराकारो निरीहो निरुपद्रवः ।
सपर्याप्रतिडामर्यो मंत्रडामरस्थापकः ।।४३।।
सत्त्व-सत्त्वगुणोपेत सत्त्ववित्सत्त्ववित्प्रियः ।
सदाशिवोह्युग्ररूपश्च पक्षविक्षिप्तभूभृत् ।।४४।।
धनदो धननाथश्च धनधान्यप्रदायकः ।
"ओं नमो रुद्राय रौद्राय महोग्राय च मीढुषे" ।।४५।।
नाद-ज्ञानरतो नित्यो नादांत-पद-दायकः ।
फलरूपः फलातीतः फल-अक्षर-लक्षणः ।।४६।।
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं सर्वभूतान्यो भूतिहा भूतिभूषणः ।
रुद्राक्षमालाभरणो रुद्राक्षप्रियवत्सलः ।।४७।।

रुद्राक्षवक्षो रुद्राक्षरूपो रुद्राक्षभक्षकः।
फलदः फलदाता च फलकर्ता फलप्रियः ॥४८॥
फलाश्रयः फलातीतः फलमूर्तिर्निरंजनः।
बलानंदो बलग्रामो बलीशो बलनायकः ॥४९॥
ओं खें खां घ्रां ह्लां वीरभद्रः सम्राट्-दक्ष-मखांतकः।
भविष्यज्ञो भयत्राता भयकर्ता भयारिहा ॥५०॥
विघ्नेश्वरो विघ्नहर्ता गुरुर्देवशिखामणिः।
भावनारूपध्यानस्थो भावार्थफलदायकः ॥५१॥
ओं श्रां ह्लां कल्पित-कल्पस्थो कल्पना-पूरणालयः।
भुजंग-विलसत्कंठो भुजंगाभरणप्रियः ॥५२॥
ओं ह्लीं ह्लूं मोहनोत्कर्ता छन्द मानसतोषकः।
नानातीतः स्वयं वान्यो भक्तमानंदसंश्रयः ॥५३॥
नागेन्द्र-चर्म-वसनो नारसिंह-निपातनः।
रकारो अग्निबीजस्थो अपमृत्युविनाशनः ॥५४॥
ओं प्रें प्रें प्रें प्रें ह्लां दुष्टेष्टा मृत्युहा मृत्युपूजितः।
व्यक्तो व्यक्ततमो व्यक्तो रतिलावण्य-सुंदरः ॥५५॥
रतिनाथो रतिप्रीतो निधनेशो धनाधिपः।
रमाप्रियकरो रम्यो लिंगो लिंगात्मविग्रहः ॥५६॥
ओं क्ष्रों क्ष्रों क्ष्रों क्ष्रों ग्रहाकारो रत्नविक्रयविग्रहः।
ग्रहकृद् ग्रहभृद् ग्राही गृहाद् गृहविलक्षणः ॥५७॥
"ओं नमः पक्षिराजाय दावाग्निरूपरूपकाय
घोरपातकनाशाय [१]सूर्यलसु—प्रभुः" ? ॥५८॥
पवनः पावको वामो महाकालो महापहः।
वर्धमानो वृद्धिरूपो विश्वभक्तिप्रियोत्तमः ॥५९॥
ओं ह्लूं ह्लूं सर्वगः सर्वः सर्वजित्सर्वनायकः।
जगदेकप्रभुः स्वामी जगद्वंद्यो जगन्मयः ॥६०॥
सर्वान्तरः सर्वव्यापी सर्वकर्मप्रवर्तकः।
जगदानंददो जन्म-जरा-मरण-वर्जितः ॥६१॥

---

१. शलभ-शाल्वाय हुं फट्।"

सर्वार्थसाधकः साध्य-सिद्धिः साधक-साधकः ।
खट्वांगी नीतिमान्सत्यो देवतात्मात्मसंभवः ॥६२॥
हविर्भोक्ता हविः प्रीतो हव्यवाहनहव्यकृत् ।
कपालमालाभरणः कपाली विष्णुवल्लभः ॥६३॥
ओं ह्रीं [1](प्रवेश रोगाय) स्थूलास्थूलविशारदः ।
कलाधीशस्त्रिकालज्ञो दुष्टावग्रहकारकः ॥६४॥
ओं हुं हुं हुं हुं नटवरो महानाट्यविशारदः ।
क्षमाकरः क्षमानाथः क्षमापूरितलोचनः ॥६५॥
वृषांको वृषभाधीशः क्षमासाधनसाधकः ।
क्षमार्चितनप्रीतस्थो वृषात्मा वृषभध्वजः ॥६६॥
ओं क्रों क्रों क्रों क्रों महाकायो महावक्षो महाभुजः ।
मूलाधारनिवासश्च गणेशः सिद्धिदायकः ॥६७॥
महास्कंधो महाग्रीवो महद्वक्त्रो महच्छिरः ।
महदोष्ठो [2]महदार्यो महादंष्ट्रो महाहनुः ॥६८॥
सुंदरभ्रूः सुनयनः षट्चक्रो वर्णलक्षणः ।
मणिपूरो महाविष्णुः सुललाटः सुकंधरः ॥६९॥
सत्यवाक्यो धर्मवेत्ता प्रजासृज्जन-कारणः ।
स्वाधिष्ठाने रुद्ररूपः सत्यज्ञः सत्यविक्रमः ॥७०॥
ओं ग्लों ग्लों ग्लों ग्लों महादेव द्रव्य-शक्ति-समाहितः ।
कृतज्ञः कृतकृत्यात्मा कृतकृत्यः कृतागमः ॥७१॥
ओं हं हं हं हं गुरुरूपो हंस-मंत्रार्थ मंत्रकः ।
व्रतकृद् व्रतविच्छ्रेष्ठो व्रतविद्वान्महाव्रती ॥७२॥
सहस्रारे-सहस्राक्षः व्रताधारो वृतेश्वरः ।
वृतप्रीतो वृताकारो वृतनिर्वाणदर्शकः ॥७३॥
"ओं ह्रीं ह्रूं क्लीं श्रीं क्लीं ह्रीं फट् स्वाहा" ।
अतिरागी वीतरागः कैलासोऽनाहतध्वनिः ।
मायापूरकयंत्रस्थो रोगहेतुर्विरागवित् ॥७४॥
रागघ्नो रागशमनो लंबकाश्यभिषिञ्चनः ।
सहस्रदलगर्भस्थः चंद्रिकाद्रवसंयुतः ॥७५॥

१· प्रें वं शं शरण्यः २. महदास्यो

अंतनिष्ठो महाबुद्धिःप्रदाता नीतिवित्प्रियः।
नीतिकृन्नीतिविन्नीतिरंतर्याग-स्वयंसुखीन् ॥७६॥
विनीतवत्सलो नीतिस्वरूपो नीतिसंश्रयः।
स्वभावो यंत्रसंचारस्तन्तुरूपोऽमलच्छविः ॥७७॥
क्षेत्रकर्मप्रवीणश्च क्षेत्रकीर्तनवर्धनः।
क्रोधजित्क्रोधनः क्रोधीजनवित् क्रोधरूपधृक् ॥७८॥
विश्वरूपो विश्वकर्ता चैतन्यो यंत्रमालिकः।
मुनिध्येयो मुनित्राता शिवधर्मधुरंधरः ॥७९॥
धर्मज्ञो धर्मसंबंधो ध्वांतघ्नो ध्वांतसंशयः।
इच्छा-ज्ञान-क्रियातीत-प्रभावः पार्वतीपतिः ॥८०॥
हं हं हं हं लतारूपः कल्पनावांछितप्रदः।
कल्पवृक्षः कल्पनस्थः पुण्यश्लोकप्रयोजकः ॥८१॥
प्रदीप-निर्मल-प्रौढः परमः परमागमः।
ओं ज्रं ज्रं ज्रं सर्वसंक्षोभः सर्वसंहारकारकः ॥८२॥
क्रोधदः क्रोधहा क्रोधी जनहा क्रोधकारणः।
गुणवान् गुणविच्छ्रेष्ठो वीर्यविद्वीर्यसंश्रयः ॥८३॥
गुणाधारो गुणाकारः सत्त्व-कल्याणदेशिकः।
सत्वरः सत्त्वविद्भावः सत्य-विज्ञान-लोचनः ॥८४॥
"ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं क्लीं श्रीं ब्लूं प्रों [1]ओं ह्रीं क्रों हुं फट् स्वाहा" ॥
वीर्याकारो वीर्यकरच्छिन्नमूलो महाजयः।
अविच्छिन्न-प्रभावश्री वीर्यहा वीर्यवर्धकः ॥८५॥
कालवित्कालकृत्कालो बलप्रमथनो बली।
छिन्नपापश्छिन्नपाशो विच्छिन्नभययातनः ॥८६॥
मनोन्मनो मनोरूपो विच्छिन्नभयनाशनः।
विच्छिन्नसंगसंकल्पो बलप्रमथनो बलः ॥८७॥
विद्याप्रदाता विद्येशः शुद्धबोधः सदोदितः।
शुद्धबोधो विशुद्धात्मा विद्यामात्रैकसंश्रयः ॥८८॥
शुद्धसत्त्वो विशुद्धांतविद्यावेद्यो विशारदः।
गुणाधारो गुणाकारः सत्त्वकल्याणदेशिकाः ॥८९॥

---

१. श्रां

सत्वरः सत्वसद्भावः सत्वविज्ञानलोचनः ।
वीर्यवान्वीर्यविच्छ्रेष्ठः सत्वविद्यावबोधकः ॥९०॥
अविनाशो निराभासः विशुद्धज्ञानगोचरः ।
"ओं ह्रीं श्रीं ऐं सौः शिवं कुरु कुरु स्वाहा ।
संसार-यंत्र-वाहाय महायंत्रप्रवर्तिने ॥९१॥
नमः श्री-व्योम-सूर्याय मूर्ति वैचित्र्यहेतवे" ।
जगज्जीवो जगत्प्राणो जगदात्मा जगद्‌गुरुः ॥९२॥
आनंदरूप-नित्यस्थः प्रकाशानंदरूपकः ।
योग-ज्ञान-महाराजो योगज्ञान-महाशिवः ॥९३॥
अखंडानंददाता च पूर्णानंद-स्वरूपवान् ।
"वरदायाविकाराय सर्वकारणहेतवे ॥९४॥
कपालिने करालाय पतये पुण्यकीर्तये ।
अघोरायाग्निनेत्राय दंडिने घोररूपिणे ॥९५॥
भिषग्गण्याय चंडाय अकुलीशाय शंभवे ।
ह्रुं क्षुं रूं क्लीं सिद्धाय नमः" ।
[1]घंडारवः सिद्धगंडो गजघंटा-ध्वनिप्रियः ॥९६॥
गगनाख्यो गजावासो गरलांशो गणेश्वरः ।
सर्वपक्षि-मृगाकारः सर्वपक्षिमृगाधिपः ॥९७॥
चित्रो विचित्रसंकल्पो विचित्रो विशदोदयः ।
निर्भवो भवनाशश्च निर्विकल्पो विकल्पकृत् ॥९८॥
कक्षाविसलकः कर्त्ता कोविदः काश्मशासनः ।
[2](शुद्धबोधो विशुद्धात्मा विद्यामात्रैकसंश्रयः ॥९९॥
शुद्धसत्वो विशुद्धांत-विद्या-वैद्यो विशारदः ।)
प्रलयानलकृद्धव्यः प्रलयानलशासनः ॥१००॥
त्रियंबकोऽरिषड्वर्गनाशको धनदः प्रियः ।
अक्षोभ्यः क्षोभरहितः क्षोभदः क्षोभनाशकः ॥१०१॥
"ओं प्रां प्रीं प्रूं प्रैं प्रौं प्रः मणिमंत्रौषधादीनां शक्तिरूपाय शंभवे
अप्रमेयाय देवाय वषट् स्वाहा स्वधात्मने" ॥१०२॥

---

१. घण्टारवः २. श्लोक-पाद पुनरुक्ति ८८-८९

द्यौर्मूर्धा-दशदिग्बाहुश्चन्द्रसूर्याग्निलोचनः ।
पातालांघ्रिरिलाकुक्षिः खंमुखो गगनोदरः ॥१०३॥
कलानादः कलाबिंदुः कलाज्योतिः सनातनः ।
अलौकिकः कलोदारः कैवल्यपददायकः ॥१०४॥
कौल्यः कुलेशः कुलजः कविः कर्पूरभास्वरः ।
कामेश्वरः कृपासिंधुः कुशलः कुलभूषणः ॥१०५॥
कौपीनवसनः कांतः केवलः कल्पपादपः ।
कुन्देन्दु-शंखधवलो भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥१०६॥
भस्माभरणहृष्टात्मा तुष्टः पुष्टोऽरिषूदनः ।
स्थाणुर्दिगंबरो भर्गो भगनेत्रभिदुज्ज्वलः ॥१०७॥
त्रिकाग्निकालः कालाग्निरद्वितीयो महायशाः ।
सामप्रियः सामकर्ता सामगः सामगप्रियः ॥१०८॥
धीरो दांतो महाधीरो धैर्यदो धैर्यवर्धकः ।
लावण्यराशिः सर्वज्ञः सुबुद्धिर्बुद्धिमद्वरः ॥१०९॥
तारणाश्रयरूपस्थस्तारणाश्रयदायकः ।
तारकस्तारकस्वामी तारणस्तारणप्रियः ॥११०
एकतारो द्वितारश्च तृतीयो मंत्र-आश्रयः ।
एकरूपश्चैकनाथो बहुरूपः स्वरूपवान् ॥१११॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशस्त्रिगुणातीतमूर्तिमान् ।
बालस्तारुण्यरूपस्थो वृद्धरूपप्रदर्शकः ॥११२॥
अवस्थात्रय-भूतस्थो अवस्था-त्रयवर्जितः ।
वाच्य-वाचक-भावार्थो वाक्यार्थप्रियमानसः ॥११३॥
ओऽसौ वाक्यप्रमाणस्थो महावाक्यार्थबोधकः ।
परमाणु प्रमाणस्थः कोटिब्रह्माण्डनायकः ॥११४॥
"ओं हं हं हं हं ह्रीं वामदेवाय नमः"
कक्षवित्पलकः कर्ता कोविदः कामशासनः ।
कपर्दी केसरी कालः कल्पनारहिताकृतिः ॥११५॥
खं खेलः खेचरः ख्यातः खन्यवादी खमुद्गतः ।
खांबरः खंडपरशुः खचक्षुः खड्गलोचनः ॥११६॥

अखंडब्रह्म खंडश्रीरखंडज्योतिरव्ययः ।
षट्चक्रखेलनः स्रष्टा षट्ज्योति-षट्गिरार्चितः ॥११७॥
गरिष्टो गोपतिर्गोप्ता गंभीरो ब्रह्मगोलकः ।
गोवर्धनगतिर्गोविद् गवातीतो गुणाकरः ॥११८॥
गंगाधरोऽङ्गसंगम्यो गैंकारो गट्करागमः ।
कर्पूरगौरो गौरीशो गौरी-गुरु-गुहाशयः ॥११९॥
धूर्जटिः पिंगलजटो जटामंडलमण्डितः ।
मनोजवो जीवहेतुरंधकासुरसूदनः ॥१२०॥
लोकबन्धुः कलाधारः पाण्डुरः प्रमथाधिपः ।
अव्यक्तलक्षणो योगी योगीशो योगिपुंगवः ॥१२१॥
भूतावासो जनावासः सुरावासः सुमंगलः ।
भववैद्यो योगिवैद्यो योगीसिंहहृदासनः ॥१२२॥
युगावासो युगाधीशो युगकृद्युगवन्दितः ।
किरीटलेटिबालेन्दु मणिकंकणभूषितः ॥१२३॥
रत्नांगरागो रत्नेशो रत्नरंजितपादुकः ।
नवरत्नगुणोपेत किरीटो रत्नकञ्चुकः ॥१२४॥
नानाविधानेकरत्नलसत्कुण्डलमंडितः ।
दिव्यरत्नगणोत्कीर्ण कंठाभरणभूषितः ॥१२५॥
नवफालामणिर्नासापुटभ्राजित-मौक्तिकः ।
रत्नांगुलीयविलसत्करशाखा-नखप्रभः ॥१२६॥
रत्नभ्राजद्धेमसूत्र-लसत्कटितटः पटुः ।
वामांगभागविलसत्पार्वती-वीक्षणः-प्रियः ॥१२७॥
लीलाविलंबितवपुर्भक्तमानसमंदिरः ।
मंद-मंदार-पुष्पौघ-लसद्वायुनिषेवितः ॥१२८॥
कस्तूरी विलसत्फालोदिव्यवेषविराजितः ।
दिव्यदेहप्रभाकूट-संदीपित-दिगंतरः ॥१२९॥
देवासुरगुरुस्तव्यो देवासुरनमस्कृतः ।
हंसराजः प्रभाकूट-पुण्डरीकनिभेक्षणः ॥१३०॥

सर्वाशाहग्गुणोमयः सर्व-लोकेष्ट-भूषणः ।
सर्वेष्टदाता सर्वेष्टस्फुरन्मंगलविग्रहः ॥१३१॥
अविद्यालेशरहितो नानाविद्यैकसंश्रयः ।
मूर्तिभावत्कृपापूरो भक्तेष्टफलपूरकः ॥१३२॥
संपूर्णकामः सौभाग्यनिधिः सौभाग्यदायकः ।
हितैषी हितकृत्सौम्यः परार्थैकप्रयोजकः ॥१३३॥
शरणागत दीनार्तपरित्राणपरायणः ।
विष्वंचिता वषट्कारो भ्राजिष्णुर्भोजनंहविः ॥१३४॥
भोक्ता भोजयिता जेता जितारिर्जितमानसः ।
अक्षरः कारणो रिद्धः शमदः शारदाप्लवः ॥१३५॥
आज्ञापकश्च गंभीरः कविर्दुस्वप्ननाशनः ।
पंचब्रह्मसमुत्पत्तिः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः ॥१३६॥
व्योमकेशो भीमवेषो गौरीपतिरनामयः ।
भवाब्धितरणोपायोभगवान्भक्तवत्सलः ॥१३७॥
वरो वरिष्ठ-तेजिष्ठः प्रियाप्रियवधः सुधीः ।
यंताऽयविष्ठः क्षोदिष्टो यविष्ठो यमशासनः १३८॥
हिरण्यगर्भो हेमांगो हेमरूपो हिरण्यदः ।
ब्रह्मज्योतिरनावेक्ष्यश्चामुण्डाजनको रवि ॥२३९॥
मोक्षार्थीजनकःसेव्यो मोक्षदो मोक्षनायकः ।
महाश्मशान-निलयो वेदाश्वाभूरथस्थिरः ॥१४०॥
मृगव्याधो धर्मधामप्रच्छन्नस्फटिकःप्रभः ।
सर्वज्ञः परमात्मा च ब्रह्मानंदाश्रयो विभुः ॥१४१॥
शरभेशो महादेवः परब्रह्मसदाशिवः ।
स्वराविकृतिकर्तार स्वरातीत स्वयंविभुः ॥१४२॥
स्वर्गतः स्वर्गतिर्दाता नियंता नियताश्रयः ।
भूमिरूपो भूमिकर्ता भूधरो भूधराश्रयः ॥१४३॥
भूतनाथो भूतकर्ता भूतसंहारकारकः ।
भविष्यज्ञो भवत्राता भवदो भवहारकः ॥१४४॥

वरदो वरदाता च वरप्रीतो वरप्रदः ।
कूटस्थः कूटरूपश्च त्रिकूटो मंत्रविग्रहः ॥१४५॥
मंत्रार्थो मंत्रगम्यश्च मंत्रेशो मंत्रभागकः ।
सिद्धिमंत्रः सिद्धिदाता जपसिद्धिः स्वभावकः ॥१४६॥
नामातिगो नामरूपो नामरूपगुणाश्रयः ।
गुणकर्ता गुणत्राता गुणातीता गुणारिहा ॥१४७॥
गुणग्रामो गुणाधीशः गुणनिर्गुणकारकः ।
अकार-मातृकारूपो अकारातीतभावनः ॥१४८॥
परमैश्वर्यदाता च परमप्रीतिदायकः ।
परमः परमानंदः परानंदः परात्परः ॥१४९॥
वैकुण्ठपीठमध्यस्थो वैकुण्ठो विष्णुविग्रहः ।
कैलाशवासी कैलाशः शिवरूपः शिवप्रदः ॥१५०॥
जटाजूटो भूषितांगो भस्म-धूसरभूषणः ।
दिग्वाससो दिग्विभागो दिगंतरनिवासकः ॥१५१॥
ध्यानकर्ता ध्यानमूर्तिर्धारणाधारणप्रियः ।
जीवन्मुक्तिपुरीनाथो द्वादशांतस्थितप्रभुः ॥१५२॥
तत्त्वस्थस्तत्त्वरूपस्थस्तत्त्वातीतोऽति-तत्त्वतः ।
तत्त्वासाम्यस्तत्त्वगम्यस्तत्त्वार्थसर्वदर्शकः ॥१५३॥
तत्त्वासनस्तत्त्वमार्गस्तत्त्वांतस्तत्त्वविग्रहः ।
दर्शनादतिगो दृश्यो दृश्यातीतोऽतिदर्शकः ॥१५४॥
दर्शनो दर्शनातीतो भावनाकाररूपकृत् ।
मणिपर्वतसंस्थानो मणिभूषणभूषितः ॥१५५॥
मणिप्रीतो मणिश्रेष्ठो मणिस्थो मणिरूपकः ।
चिंतामणिगृहांतस्थः सर्वचिंताविवर्जितः ॥१५६॥
चिंताक्रांतो भक्तचिंत्यो चिंतनाकार-चिंतकः ।
अचिंत्यश्चिन्त्यरूपश्च निश्चिन्त्यो निश्चयात्मकः ॥१५७॥
निश्चयो निश्चयाधीशो निश्चयात्मकदर्शकः ।
त्रिविक्रमस्त्रिकालज्ञस्त्रिमूर्तिस्त्रिपुरान्तकः ॥१५८॥

ब्रह्मचारी व्रतप्रीतो गृहस्थो गृहवासकः।
परंधाम परंब्रह्म परमात्मा परात्परः ॥१५९॥
सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वसाक्षी विलक्षणः।
मणिद्वीपो द्वीपनाथो द्वीपांतो द्वीपलक्षणः ॥१६०॥
सप्तसागरकर्ता च सप्तसागरनायकः।
महीधरो महीभर्ता महीपालो मनस्विनः ॥१६१॥
महीव्याप्तो व्यक्तरूपः सुव्यक्तो व्यक्तभावनः।
सुवेषाढ्यः सुखप्रीतः सुगमः सुगमाश्रयः ॥१६२॥
तापत्रयाग्निसन्तप्त समाह्लादन-चन्द्रमाः।
तारणस्तापसाराध्यस्तनुमध्यस्तमोमहः ॥१६२॥
पररूपः परध्येयः परदैवतदैवतः।
ब्रह्मपूज्यो जगत्पूज्यो भक्तपूज्यो वरप्रदः ॥१६४॥
अद्वैतो द्वैतचित्तश्च द्वैतोऽद्वैतविवर्जितः।
अभेद्यः सर्वभेद्यश्चभिद्यभेदकवेधकः ॥१६५॥
लाक्षारसः सुवर्णाभः प्लवंगमप्रियोत्तमः।
शत्रुसंहारकर्ता च अवतारपरो हरः ॥१६६॥
संविदेशः संविदात्मा संविज्ज्ञानप्रदायकः।
संवित्कर्ता च भक्तश्च संविदानंदरूपवान् ॥१६७॥
संज्ञायातीत संहार्या सर्वसंशयहारकः।
निःसंशयो मनोध्येयः संशयात्मातिदूरगः ॥१६८॥
शैवमंत्र शिवप्रीत दीक्षा शैवस्वभावकः।
भूपतिः क्ष्माकृतो भूपो भूप-भूपत्वदायकः ॥१६९॥
सर्वधर्मसमायुक्तः सर्वधर्मविवर्धकः।
सर्वशास्त्रः सर्ववेदा सर्ववेता सतृप्तिमान् ॥१७०॥
भक्तभावावतारश्च भुक्ति-मुक्ति-फलप्रदः।
भक्त-सिद्धार्थ-सिद्धिश्च सिद्धि-बुद्धि-प्रदायकः ॥१७१॥
वाराणसी-वासदाता वाराणसीवरप्रदः।
वाराणसीनाथरूपो गंगामस्तकधारकः ॥१७२॥

पर्वताश्रयकर्ता च लिंग-पर्वत-त्र्यंबकः ।
लिंग-देहो लिंगपतिर्लिङ्गपूज्योऽतिदुर्लभः ॥१७३॥
रुद्रप्रियो रुद्रसेव्य उग्ररुप विराड्कृत् ।
मालारुद्राक्षभूषांगो जपरुद्राक्षतोषकः ॥१७४॥
सत्यसत्यः सत्यदाता सत्यकर्ता सदाश्रयः ।
सत्यसाक्षी सत्यलक्ष्मी लक्ष्म्यातीतमनोहरः ॥१७५॥
जनको जगताधीशो जनिता जननिश्चयः ।
सृष्टिस्थितः सृष्टिरूपी सृष्टिरुपस्थितिप्रदः ॥१७६॥
संहाररूपः कालाग्निः कालसंहाररूपकः ।
सप्तपाताल-पादस्थो महदाकाश-शीर्षवान् ॥१७७॥
अमृतो अमृताकारो अमृतामृतरूपकः ।
अमृताकारचित्तिस्थ अमृतोद्भवकारणः ॥१७८॥
अमृताहारनित्यस्थस्त्वमृतोद्भवरूपिणः ।
अमृतांशोऽमृताधीशोऽमृतप्रीतिविवर्धनः ॥१७९॥
अनिर्देश्यो अनिर्वाच्यो अनंगो अंग-आश्रयः ।
श्रेयदः श्रेयरूपश्च श्रेयातीतफलोत्तमः ॥१८०॥
सारः संसारसाक्षिश्च सारासारविचक्षणः ।
धारणातीतभावस्थो धारणान्वयगोचरः ॥१८१॥
गोचरो गोचरातीतो अतीवप्रियगोचरः ।
प्रिय-प्रिय तथा स्वार्थी स्वार्थः अर्थफलप्रदः ॥१८२॥
अर्थार्थसाक्षी लक्षांशो लक्ष्यलक्षणविग्रहः ।
जगदीशो जगत्त्राता जगन्मयोजगद्गुरुः ॥१८३॥
गुरुमूर्तिः स्वयंवेद्यो वेद्यवेदकरूपकः ।
रूपातीतो रूपकर्ता सर्वरूपार्थदायकः ॥१८४॥
अर्थदस्त्वर्थमान्यश्च अर्थार्थी अर्थदायकः ।
विभवो वैभवः श्रेष्ठः सर्ववैभवदायकः ॥१८५॥
चतुःषष्टि-कला-सूत्र चतुःषष्टिकलामयः ।
पुराणश्रवणाकारः पुराणपुरुषोत्तमः ॥१८६॥

पुरातन-पुराख्यातः पूर्वजः पूर्वपूर्वकः ।
मंत्रतंत्रार्थसर्वज्ञः सर्वतंत्र प्रकाशकः ॥१८७॥
तन्त्रवेता तंत्रकर्ता तंत्रांतरनिवासकः ।
तंत्रगम्यस्तंत्रमान्यस्तंत्रयंत्रफलप्रदः ॥१८८॥
सर्वतंत्रार्थतत्त्वज्ञस्तंत्रराजः स्वतंत्रकः ।
ब्रह्मांडकोटिकर्ता च ब्रह्मांडोदरपूरकः ॥१८९॥
ब्रह्मांडदेशदाता च ब्रह्मज्ञान परायणः ।
स्वयंभूः शम्भुरूपश्च हंसविग्रह निस्पृहः ॥१९०॥
श्वास-निःश्वास-उच्छ्वासः-सर्वसंशयहारकः ।
सोऽहंरूपः स्वभावश्च सोऽहंरूपप्रदर्शकः ॥१९०॥
सोऽहमस्मीति नित्यस्थः सोऽहं-हंसः-स्वरूपवान् ।
हंसोहंसः-स्वरुपश्च हंसविग्रह-निस्पृहः ।
श्वास-निश्वास-उच्छ्वासः-पक्षिराजो निरंजनः ॥१९२॥
अष्टाधिकसहस्रं तु नाम साहस्रमुत्तमम् ।
नित्यं संकीर्तनासक्तः कीर्तयेत्पुण्यवासरे ॥१९३॥
संक्रांतौ विषुवे चैव पौर्णमास्यां विशेषतः ।
अमावास्यां रविवारे त्रिःसप्तवारपाठकः ॥१९४॥
स्वप्ने दर्शनमाप्नोति कार्याकार्येऽपि दृश्यते ।
रविवारे दशावृत्या रोगनाशो भविष्यति ॥१९५॥
सर्वदा सर्वकामार्थी जपेदेतत्तु सर्वदा ।
यस्य स्मरण मात्रेण वैरिणां-कुलनाशनम् ॥१९६॥
भोग-मोक्षप्रदं श्रेष्ठं भुक्ति-मुक्ति-फलप्रदम् ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वापस्मारनाशनम् ॥१९७॥
राजचौरारि-मृत्यूनां-नाशनं जयवर्धनम् ।
मारणे सप्तरात्रं तु दक्षिणाभिमुखो जपेत् ॥१९८॥
उदङ्मुखः सहस्रं तु रक्षणाय जपेन्निशि ।
पठतां शृण्वतां चैव सर्वदुःखविनाशकृत् ॥१९९॥
धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यं पुत्रवर्धनम् ।
योगसिद्धिप्रदं सम्यक् शिवं ज्ञानप्रकाशितम् ॥२००॥

शिवलोकैकसोपानं वांछितार्थैकसाधनम् ।
विष-ग्रह-क्षयकरं पुत्रपौत्राभिवर्धनम्: ।२०१।।
सदा दुःस्वप्नशमनं सर्वोत्पातनिवारणम् ।
यावन्न दृश्यते देवि शरभो भयनाशकः ।।२०२।।
तावन्न दृश्यते जाप्यं वृहदारण्यको भवेत् ।
सहस्रनाम नाम्न्यस्मिन्नैकैकोच्चारणात्पृथक् ।।२०३।।
स्नातो भवति जाह्नव्यां दिव्यां दृष्टिः स्थिरो भुवि ।
सहस्रनाम सद्विद्यां शिवस्य परमात्मनः ।।२०४।।
यो निष्ठास्यति कल्पान्ते शिवकल्पो भविष्यति ।
हिताय सर्वलोकानां शरभेश्वर भाषितम् ।।२०५।।
स ब्रह्मा स हरिः सोऽर्कः स शक्रो वरुणो यमः ।
धनाध्यक्षः स भगवान् सचैकः सकलं जगत् ।।२०६।।
सुखाराध्यो महादेवस्तपसा येन तोषितः ।
सर्वदा सर्वकामार्थं जपेत्सिध्यति सर्वदा ।।२०७।।
धनार्थी धनमाप्नोति यशोर्थी यशमाप्नुयात् ।
निष्कामः कीर्तयेन्नित्यं ब्रह्मज्ञानमयो भवेत् ।।२०८।।
विल्वैर्वा तुलसीपुष्पैश्चंपकैर्वकुलादिभिः ।
कल्हारैर्जातिकुसुमैरंबुजैर्वा तिलाक्षतैः ।।२०९।।
एभिर्नाम सहस्रैस्तु पूजयेद् भक्तिमान्नरः ।
कुलं तारयते तेषां कल्पे कोटिशतैरपि ।।२१०।।

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे श्री मच्छरभ-सहस्रनाम-स्तोत्रंनाम अशीतितमोऽध्यायः ।।८०।।

अथ एकाशीतितमोऽध्यायः

निग्रह-दारुण-सप्तकम्

अस्य श्री निग्रह-दारुण-सप्तक स्तोत्रस्य वासुदेवो ऋषिः स्रग्धरा छंदः श्री शरभेश्वरो देवता तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे सर्वशत्रुनाशने विनियोगः—

हरिः ओम्—

कोपोद्रेकातितिर्यक् पटल चरिचरत्तारवर्णप्रभूत-
ज्वालामालाग्रदग्धस्मरतनुशकलं त्वामहं सालुवेश ।
याचे त्वत्पादपद्मप्रणतिभिरनिशं वेष्टि मां यः क्रियाभि-
स्तस्य प्राणप्रयाणं परशिव भवतः शूलभिन्नस्य तूर्णम् ॥१॥
शम्भो त्वद्धस्तकुंत-क्षत-रिपुहृदयान्निःस्रवल्लोहितौघं
पीत्वा पीत्वाऽतिदर्पाद्दिशि दिशि विचरास्त्वद्गणाश्चण्डमुख्याः ।
गर्जन्तु क्षिप्रवेगं निखिलजयकराः खेललीलाः सलीलाः
संत्रस्ता ब्रह्मदेवाः शरभखगपते त्राहि नः सालुवेश ॥२॥
सर्वाद्यं सर्वनिष्ठं सकलभयकरं तत्त्वरूपं शरण्यम्
याचेऽहं त्वाममोघं परिकरमिहतेद्वेष्टये तस्य यो माम् ।
श्रीशंभो त्वत्कराब्जस्थित हल-कठिणाघातवक्षःस्थलस्य
प्राणाः प्रेतेशदूत ग्रहण-परिभव क्रोधपूर्वं प्रयान्तु ॥३॥
द्विष्मः क्षोण्यां वयं यं तवपदयुगलध्याननिर्दग्धपापाः
कृत्याकृत्यैर्विमुक्ता विहगकुलपते खेलया बद्धमूर्ते ।
तूर्णं त्वत्पाणिपद्मप्रधृतपरशुना तुंडखंडीकृतांगः
स द्वेषी यातु याम्यंपुरमतिकलुषः कालपाशाग्रबद्धः ॥४॥
भीम श्रीसालुवेश प्रणतभयहर प्राणिजिद्दुर्मदानां
या ते पंचास्य गर्व प्रशमनविहितः स्वेच्छया बद्धमूर्ते ।
त्वामेवाशु त्वङ्घ्र्यष्टक-नखविलुठद्ग्रीवजिह्वोदरस्य
प्राणोत्क्राम-प्रमाद-प्रफुटितहृदयस्यायुरव्याहतेश ॥५॥
श्रीशूलिन् ते भुजाग्रस्थितदृढमुसलावर्तवाताभिघातै-
र्याता-यातारियूथत्वरितविघटनो भूतरक्तच्छटार्द्राम् ।

तां दृष्ट्वाऽऽयो धनेज्यामखिलसुरगणाश्चाशु नंदंतु भूता
नाना वेतालपूगः पिवतु तदखिलं प्रीतचित्तः प्रमत्तः ॥६॥
त्वद् दोर्दण्डाग्रमुण्ड प्रकटित विनमच्चंडकोदंडमुक्तै-
बाणैर्दिव्यैरनेकैः शिथिलितवपुषः क्षीणकोलाहलस्य ।
तस्य प्राणावसानं शरभरिपुरिपोऽहंत्वदाज्ञा प्रभावै-
स्तूर्णं पश्यामि यो मां परिहसतिसभास्वादिमध्यांतहेतो ॥७॥
इति निशि प्रयतस्तु निराशनो यममुखः शिवभावमनुस्मरन् ।
दशदिन प्रतिवार-शतद्वयं जपतु निग्रह-दारुण-सप्तकम् ॥८॥

इति गुह्यं महावीर्यं परमं रिपुनाशनम् ।
भानुवासरमारभ्य मंगलांतं जपेत्सुधीः ॥६॥
आदावंते च मूलांते पल्लवेन सुसंपुटम् ।
प्रतिश्लोकं पठेद्भक्तया मण्डलाच्छत्रुनाशनम् ॥१०॥
शरभानुष्टुभारोग्यं संपुटेन जपाच्छिवे ।
सर्वरोगा विनश्यंति गौरीवल्लभसम्पुटात् ॥११॥
सालुवेश-पुटाच्चोरनाशनं च स्वरक्षणम् ।
स्वधान्यरक्षणार्थाय कालभैरव-संपुटम् ॥१२॥
पदार्थरक्षणार्थाय पक्षिराजेति-संपुटम् ।
सर्वज्ञ संपुटाद्देवि हृतवस्तुधनागमम् ॥१३॥
आकृष्टं रक्तचामुंड्या मोहिन्या मोहनं भवेत् ।
शास्तार संपुटाद्देवि पुत्रलाभो भवेद् ध्रुवम् ॥१४॥
नारसिंह्या ततोच्चाटे वीरभद्रेण वा शिवे ।
वडवानलमंत्रेण संपुटाद्वैरिनाशनम् ॥१५॥
चामुण्डी संपुटाद्देवि सर्वशत्रुविनाशनम् ।
निशायाँ विल्वमूले च स्थित्वा तत्र दिशामुखः ॥१६॥

ऋग्विधाने ॥

विश्वेत्ताते ऋचंमंत्रं देवकोष्टं विलिख्यतु । "विश्वेत्ताते स० बधवे" ।
चिंतामणिं सर्वसंधौ साध्यं शूलान्तरालके ॥१॥

मायावृतमिदं यंत्रं मरणावर्तभंजनम् ।
बद्धयो रोगमुक्तस्य सर्वरक्षाकराय वै ॥२॥
कुषु भकमृचा-तोयं दशवाराभिमंत्रितम् ।
पाययेदागलं सद्यो वृश्चिकाखुविषापहम् ॥३॥
शं न इन्द्राग्नी-सूक्तेन पचेत्तै लं स्पृशेत्तथा ।
तत्तत्तैलविधानोक्त फलं सद्यो लभेद् ध्रुवम् ॥४॥
लेह-पानक-खानानि रसपिष्टबटानि च ।
सूक्तेनानेन संस्पृष्टवा कुर्यात्तत्तत्फलाप्तये ॥५॥
भेषजे व्यवहारे च मंत्रवादेऽर्थवादके ।
संसृष्टमित्यृचं मंत्री विजयाय शतं जपेत् ॥६॥
स्वप्नः स्वप्नाधिकरण इत्याथर्वणसूक्तकम् ।
त्रिवारं यो जपेन्नित्यं तस्य नास्त्यहिजंभयम् ॥७॥
स्वकृत्यगोपनार्थं च परवर्त्मसुशांतये ।
कारयेच्छतमेकेन "य आस्त" इति ऋक् जपम् ॥८॥
आवहंतीति सूक्तेन शतवाराभिमंत्रितम् ।
अन्नं प्रसादयेन्मंत्री भवेदर्धाधिकं गुणम् ॥९॥
द्रव्यं स्पृशन्नन्नभांडं पचेन्मंत्री सदा जपन् ।
तस्मादादाय च कस्मै दत्वा शेषं पुनर्न्यसेत् ॥१०॥
एवं चरेत्क्रमेणैव पृथिव्युद्धृत्य मंत्रवित् ।
तत्काल वर्तमानानामन्नं पूर्णतरं भवेत् ॥११॥
जपेद्वर्णशतं सिद्धिर्योषायास्तस्य शोभने ।
सिद्धिस्तु नित्यभोक्तृणां तादृशी भांडदर्शनात् ॥१२॥
चतुर्भिः पंचभिः षड्भिः स्वाहा पंचभिरेव च ।
द्वाभ्यां चतुर्भिः सर्वैश्चावहंती होममुच्यते ॥१३॥
जपेदक्षरसाहस्रं नित्यहोमसमन्वितम् ।
स्मरणादन्नवृद्धिः स्यात्तस्य तद्राज्य-वंशयोः ॥१४॥
इति गुह्यं महाशास्त्रमभीष्टफलदायकम् ।
सतामनुग्रहतरमसतां निग्रहं परम् ॥१५॥

अमोघ परमंगुह्यं परमाकाशभैरवम् ।
तादृशं सिद्धिदं श्रेष्ठं कल्पं सत्समयोचितम् ॥१६॥
योगिनां योगदं तत्त्वं कर्मिणां कर्मसिद्धिदम् ।
तत्त्वसिद्धिप्रदं तत्त्ववादिनां लक्षधारिणाम् ॥१७॥
सत्यं सर्वमयानां वै सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
यः स्मरेत्परया भक्तया प्रजपेच्छृणुयात्पठेत् ॥१८॥
लिखेद्वा निवहेत्कल्पं सकृन्मासाच्छिवो भवेत् ।
शुश्रूषा वर्तते यस्य कल्पे त्वाकाशभैरवे ॥१६॥
तस्मै च धर्मसायुज्यं दत्तमेव सनातनम् ।
पुस्तकं वा स्मरेत्पश्येन्नित्यं यद्यज्जनोऽम्बिके ॥२०॥
भुक्त्वा यथेप्सितान्भोगान्भूयः शैवपदं व्रजेत् ।
आदि-क्षांतार्ण-मंत्र-प्रभव बहुकुलाकार शास्त्रोक्तमार्गम्
शर्वाग्न्यादित्यतत्त्व प्रसवलयकरं भैरवं ब्रह्मकल्पम् ।
रम्यं मैत्री समीक्ष्य स्वमतिविभवतो निर्णयं स्वात्मबोधम्
कर्णे शिष्यस्य कस्यापि च दृढमनसोऽनल्पबुद्धे रहस्यम् ॥२१॥

इति श्रीआकाशभैरवकल्पे प्रत्यक्षसिद्धिप्रदे उमामहेश्वरसम्वादे शरभ-सालुव-पक्षिराजकल्पाख्यं निग्रह-दारुणसप्तकं-नाम एकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

अथ परिशिष्टम्

शास्त्रान्तरे शरभ-मंत्राणि

शरभ मंत्रम्—(मेरुतन्त्रोक्तम्)

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नृसिंहाद्बलिनो मम ।
मंत्रं शरभ-संज्ञस्य द्रुतसिद्धिप्रदायकम् ॥१॥
"ओं खं खां खं फडुच्चार्य्य द्विःशत्रून्-ग्रससीति च ।
तथा हुं फट् सर्वास्त्र संहरणाय शरभेति (शरभाय) च ॥२॥
[1]शान्ताय पक्षिराजाय हुं फट् स्वाहा नमो मनुः ।
एकचत्वारिंशदर्णो वासुदेवो मुनिर्मतः ॥३॥
कालाग्निरुद्रः शरभो देवता परिकीर्तितः ।
छन्दस्तु जगती स्वाहा शक्तिर्बीजं स्वमुच्यते ॥४॥
वेदाङ्क दश सप्ताग सागरैरंगकल्पनम् ।
पुनः समस्त मन्त्रेण दिग्बन्धं तु समाचरेत् ॥५॥

ध्यानम्--

चन्द्रार्काग्नि त्रिनयनं काली दुर्गा द्विपक्षकम् ।
विद्युज्जिव्हं वज्रनखं बडवाग्न्युदरन्तथा ॥६॥
व्याधि-मृत्यु-रिपुघ्नं च चण्डवातातिवेगिनम् ।
हृद्भैरव-स्वरूपं च वैरिवृन्दनिषूदनम् ॥७॥
मृगेन्द्रत्वक्शरीरोऽस्य पक्षाभ्यां चञ्चुनारवः ।
अधोवक्त्रश्चतुश्पादा ऊर्ध्वदृष्टिश्चतुर्भुजः ॥८॥
कालान्त-दहन-प्रख्यो नीलजीमूत-निःस्वनः ।
अरिर्यद्दर्शनादेव विनष्ट-बल-विक्रमः ॥९॥
शटाख्य ग्रहरूपाय पक्ष-विक्षिप्त-भूभृते ।
अष्टपादाय रुद्राय नमः शलभमूर्त्तये ॥१०॥
एवं ध्यायेत् सहस्रं तु प्रजपेत् पायसं हुनेत् ।
प्रत्यहं मासषट्केन मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥११॥
तदा जेयस्तु सङ्ग्रामे भूत-प्रेत-पिशाचकाः ।
नश्यन्ति दर्शनादेव चाधयो व्याधयस्तथा ॥१२॥

इति श्री महामाया-महाकालानुमते मेरुतंत्रे शिवप्रणीते द्रुतसिद्धि प्रदायकोनाम शरभ-मंत्रम् ॥

मंत्रोद्धारो यथा :--ओं खं खां खं फट् शत्रून् ग्रससि ग्रससि हुं फट् सर्वास्त्र संहरणाय शरभाय शान्ताय पक्षिराजाय हुं फट् स्वाहा नमः ॥

१. शाल्वाय ।

शरभ-मन्त्रराज

(ग्रन्थान्तरे)

अमृतानन्दनाथाय कृष्णानन्द योगिने।
विमलानन्दनाथाय शिवाय गुरवे नमः ॥

ओं आं ह्रीं क्रों एहि एहि शरभ-शाल्वाय स्फुर् स्फुर् पक्षिराजाय प्रस्फुर् प्रस्फुर् शत्रुणां शोणितं पिव पिव ओं ऐं ग्लौं ग्लौं ग्लौं ओं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ओं ऐं ग्लौं ग्लौं ग्लौं ग्लौं ग्लौं आवेशय आवेशय आगच्छ आगच्छ स्थिरोभव स्थिरोभव रोगान्नाशय नाशय कृत्रिमान् खाहि खाहि चटकान् खादय खादय ओं ह्रीं क्षीं क्रौं (अमुकस्य) रोगान् सुशीघ्रेण छेदय छेदय खेदय खेदय खड्गेन छेदय छेदय आं पाशेन बन्धय बन्धय ह्रीं वं आरोग्यं कुरू कुरू रं खें शत्रुणां रक्तं पिव पिव शीघ्रं शीघ्रं कृत्रिमान् खादय खादय ओं ह्रीं क्रौं खें खां खं फट् प्राणग्रहासि प्राणग्रहासि हुं फट् सर्वशत्रुसंहारणाय शरभ-शाल्वाय पक्षिराजाय हुं फट् स्वाहा—ओं नमो भगवते अष्टपादाय सहस्रबाहवे द्विशीर्षाय द्विनेत्राय द्विपक्षाय रुद्ररूपाय रौद्रमृगविहङ्ग-वेषधारिणे योगनृसिंह-वेष-संहारणाय उद्दण्डखण्डनाय ज्वाला-नृसिंह हताय-शमनाय लक्ष्मी-नृसिंह-मथनकराय जगन्नृसिंह सुदर्शनाय अनेक विघ्नरूपछेदनाय अखिल-देवता-वन्दनाय निखिलदेवता परिपालनाय क्षयरोगादि सकल-रोग-निवारणाय ह्रों ह्रीं महाचित्ररथादि गन्धर्व प्रतिष्ठिताय अन्तरिक्षग्रह आकाशग्रह वसुन्धराग्रह क्षिप्रग्रह मंत्रग्रह यक्षग्रह कामिनीग्रह मोहिनीग्रहोच्चाटनाय सकल-ब्रह्मराक्षस-वेताल कूष्माण्डादि महाप्रबलग्रहोच्चाटनाय सकलदुष्टग्रहनिवारणाय महा-वीरभद्राय परमंत्र-परयंत्र-परतंत्रादिकानां मूलछेदनाय शिष्यपरिपालनाय महापशुरूपिणे शरभ-शाल्वाय पक्षिराजाय हुं फट् स्वाहा ॥

इति श्री कालभैरवकृत शरभमंत्रराज।

अथ श्री शरभमालामन्त्रम्
(मेरुतन्त्रोक्तम्)

श्रीशिव उवाच ।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मालामन्त्रं सुसिद्धिदम् ।
तारो नमो भगवते ङेन्तं शलभ शाल्व च ।।१।।
सर्व भूतोच्चाटनाय ग्रह-राक्षसचोच्चरेत् ।
निवारणाय ज्वालेति ङेन्तं माला स्वरूप च ।।२।।
दक्षनिष्काशनायेति साक्षादिति पदं वदेत् ।
कालरुद्र-स्वरूपाष्टमूर्त्तये च तथा चरेत् ।।३।।
कृशानुरेतसे चेति महेति पदमुच्चरेत् ।
क्रूर भूतोच्चाटनायेत्यप्रतिशयनाय च ।।४।।
शत्रूंश्च नाशय द्वन्द्वं वदेच्छत्रुपशूंस्ततः ।
गृह्ण-युग्मं खादययुग्मं तारं हुं च वसुप्रियाम् ।।५।।
अष्टोत्तरशतार्णोऽयमष्टोत्तरशतं जपेत् ।
प्रत्हं मासषट्केन सिद्धः स्यात्तत्फलं शृणुः ।।६।।
पात्रे पूतं जलं स्थाप्य सप्तवाराभिमन्त्रितम् ।
पानार्थं यत्प्रसादेन दातव्यं लापयेत्तथा ।।७।।
प्रयान्ति सर्वभूतानि ज्वराश्चातुर्थिकादयः ।
सप्ताहात्तत्प्रयोगेण नात्र कार्य्या विचारणा ।।८।।

मन्त्रोद्धारः—ओं नमो भगवते शलभाय शाल्वाय सर्वभूतोच्चाटनाय ग्रह-राक्षस-निवारणाय ज्वालामाला-स्वरूपाय दक्ष-निष्काशनाय साक्षात्-कालरूद्रस्वरूपायाष्टमूर्त्तये कृशानुरेतसे महाक्रूर-भूतोच्चाटनाय प्रतिशयनाय शत्रून्नाशय नाशय शत्रुपशून् गृह्ण गृह्ण खादय खादय ओं हुं फट् ।।

इति श्री महामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते शरभ मालामंत्रम् ।।

तंत्रान्तरे—१. ओं नमो भगवते प्रलय कालाग्निरुद्राय दक्षाध्वर-ध्वंसकाय महाशरभाय मम शत्रुच्छेदनं कुरु स्वाहा—

२. ओं खें खां खं फट् प्राणग्रहासि प्राणग्रहासि हुंफट्, सर्वशत्रुसंहारकारकाय शरभ-साल्वाय पक्षिराजाय हुं फट् स्वाहा ।

अथ काम्य प्रयोगानि लिख्यन्ते

ठकारं पूर्वमालिख्य तद्बाह्ये वर्तुलं लिखेत् ।
तद्बाह्ये चतुरस्रं च तद्बाह्येऽष्टदलं तथा ॥१॥
तद्बाह्ये षोडशदलं तद्बाह्ये वृतमालिखेत् ।
तद्बाह्ये पञ्च कोणं च ठकारे साध्य नाम च ॥२॥
वर्तुले मूल मालिख्य स्वरान् षोडश पार्वती ।
वृत्तेचाभिमतं सार्द्धं वाणस्य पंचकोणके ॥३॥
एवमालिख्य यंत्रं तु तालपत्रे प्रयत्नतः ।
स्नुहिक्षीरं जले क्षिप्त्वा यंत्रं तत्रैव निक्षिपेत् ॥४॥
चुल्लोपरि चिरं स्थाप्य क्वाथै सर्वत्र शत्रवः ।
व्यवहिताः पलायन्ते प्रसादात्सालुवस्य च ॥५॥
साधके सर्व सिद्धि स्याद्रिपुर्देशान्तरं व्रजेत् ।
सालुवं पक्षिराजानं यो ध्यायेल्लोकपूजितम् ॥६॥
शत्रुणां सर्व संघातानोत्पद्यन्ते कदाचन ।
चन्दनं च सकर्पूरं कस्तूरी कुङ्कुमान्वितम् ॥७॥
वामावर्तं लिखेन्मंत्रं शरभं चिन्तयेन्नरः ।
ललाटे तिलकं कृत्वा त्रैलोक्यं मोहयेत् क्षणात् ॥८॥
देवांश्चापि वशं कुर्यात् किं पुनर्मानवादयः ।
गोरोचनं च गोक्षीरं गोघृतं गोमयं तथा ॥९॥
शन्यर्काङ्गारवारे तु मूलनैव तु होमयेत् ।
देवासुर मनुश्याणां स्त्रीणां वशकृद् भवेत् ॥१०॥
अजामाहिषकं चैव नवनीतं तथाऽगरुः ।
मूलमुच्चार्यत्वाद्यन्ते साध्यनाम पुरस्सरम्
असाध्यमपि वशं कुर्यात्पक्षिराजप्रभावतः ॥११॥
अजामानुषाकानां च रुधिरं प्रेतवाससा ।

संवेष्ट्य पुत्तलीं चैव साध्यनाम-विगर्भितम् ।
शत्रुप्राणान् प्रतिष्ठाप्य प्रेतकेशैश्च वेष्टयेत् ॥१२
शरभेनाभिमंत्रियित्वा निखनेत् प्रेतभूमिषु ।
निखनेद्वा रिपोर्द्वारे सद्यः शत्रोर्मृतिर्भवेत् ॥१३॥
सालुवं पक्षिराजानं यो ध्यायेच्च दिने दिने ।
जपेद् दशसहस्रन्तु शतमष्टोत्तरं तु वा ॥१४॥
कृष्णाष्टमी समारभ्य यावत् कृष्णचतुर्दशी ।
मासांतसमये प्राप्ते वैरिपक्षक्षयो भवेत् ।
कारस्करं तु भल्लातं तैलेनाष्टशतं हुनेत् ॥१५॥
मासान्ते शत्रवस्तस्य पलायन्ते न संशयः ।
शमी-दर्भादि-पयसा चाष्टोत्तरशतं हुनेत् ॥१६॥
दिनत्रयं महेशानि सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।
विभीतकतरोरष्ट-प्रादेश-परिमाणकम् ॥१७॥
काष्ठमादाय यत्नेन सालुवं च स्मरन्निशि ।
यन्नाम्ना कटुतैलाक्तं शतमष्टोत्तरं हुनेत् ॥१८॥
मासान्ते मृत्युमाप्नोति यदि त्राता शिवः स्वयम् ।
अपामार्गस्य समिधा पायसं सघृतं हुनेत् ॥१९॥
रात्रौ भर्ग्यं स्मरन्[1] खाख्यं नश्यन्ति ते पदातिनः ।
पञ्चस्नुहि समिद्भिर्वा होमयेत् सर्षपैस्तिलैः ॥२०॥
महानिशार्द्धे साहस्रं शरभमंत्रेण संयुतम् ।
रात्र्यां यन्नाम्ना जुहुयात् पञ्चाहे स प्रणश्यति ॥२१॥
सगोत्रः सपरिवारो बन्धुमित्रगणैः सह ।
सालुवं पक्षिराजं च पूजयेत् साधकोत्तमः ॥२२॥
साष्टविंशति संख्याकान् ब्राह्मणान् भोजयेत्सुधीः ।
शुक्लप्रतिपदारभ्य पौर्णमायां तु नित्यशः ॥२३॥
यो जपेदष्टसाहस्रं मुच्यते सर्वपातकैः ।
शरभं शालुवं ध्यात्वा एतद्विधिवदाचरेत् ॥२४॥
पुत्तलीं च विधायाथ कुलालचक्रमृण्मयीम् ।
वायुं सम्यग्विधानेन कृत्वा स्थाणुं समाहितः ॥२५॥

---

१. आकाशभैरवमित्यर्थ ।

स्नुहिक्षीरेण संप्लुष्य स्पृष्टस्तदयुतं जपेत् ।
उन्मत्तमूले निखनेदपस्मारी भवेद् रिपुः ॥२६॥
सालुवं शिवरूपं च ध्यात्वा सम्यक् समाहितः ।
निम्बमूलेन कृत्वा तु पुत्तलीं च यथाविधिम् ॥२७॥
पुत्तल्यां वायुमारोप्य स्पृष्टवाताऽयुतं जपेत् ।
श्मशाने निखनेद्देवी पुत्तलीं शत्रुचालने ॥२८॥
उन्मत्तमूले पुत्तल्यां वायुमारोप्य साधकः ।
रिपुनामांकितं शारभं-मंत्रं सहस्रं जपेत् ॥२६॥
शन्यार-रवि-रात्र्यां च निक्षिपेत्तां चतुष्पथे ।
उच्चाटनं भवेद्देवि त्रयोर्मासांतरे खलु ॥३०॥
शन्यर्काङ्गारवारे तु जपेदयुतसंख्यया ।
त्रिदिनान्ते रिपून् बद्ध्वा चालयेदाशु साधकः ॥३१॥
दूर्वाङ्कुरैर्घृताक्तैश्च गोमयैश्च विशेषतः ।
तिल-लाजास्सर्षपाश्च मिश्रीकृत्य हुनेत्तदा ॥३२॥
त्रिदिनान्ते शत्रुसंघाः पलायन्ते न संशयः ।
पिष्टेन पुत्तलीं कृत्वा मूलेनैव तु पूजयेत् ॥३३॥
मांसयुक्तं तु नैवेद्यं तांबूलं तु निवेदयेत् ।
लाक्षारसेन संयुक्तं बिम्बस्य च शिरोगले ॥३४॥
साध्यनाम च संयुक्तं लिखित्वा चैव पुत्तलीम् ।
सदा पचेत्तदा वन्हौ समिद्भिर्पिचुमन्दकैः ॥३५॥
गणनायकमंत्रेण होमं कृत्वा विधानतः ।
जपादयुतमात्रेण पलायन्ते सर्वशत्रवः ॥३६॥
अर्कमूलं समादाय पुत्तलीं च यथाविधि ।
शत्रोः प्राणस्य पवनं विदधीत यथोदितम् ॥३७॥
तस्याश्च हृदिदेशे च माया बीजं समालिखेत् ।
तस्या शिरसि चालिख्य वह्निबीजं सबिन्दुकम् ॥३८॥
पादयोश्च तथाऽऽलिख्य पृथ्वीबीजं च भैरवम् ।
उभयोः स्कन्धयोश्चैव वायुः बीजं च भार्गवम् ॥३९॥
भार्गवं वदने पृष्ठे श्री बीजं भुवनेश्वरीम् ।
पूजां च विधिवत्कृत्वा नैवेद्यं तु निवेदयेत् ॥४०॥

निखनादर्कमूले च शत्रोर्पलायनं खलु ।
ततः शत्रुशरीरे च पीडनं स्फोटकैर्ज्वरैः ॥४१॥
सप्ताहाच्च यमस्थाने रिपुः गच्छेन्न संशयः ।
श्मशानमृत्तिकया वा पुत्तलीं कारयेद् बुधः ॥४२॥
श्मशानाङ्गारमादाय उन्मत्तरससंयुतम् ।
पुत्तली-हृदि खेंकारं पार्श्वे चिन्तामणिं लिखेत् ॥४३॥
मस्तके कामराजं च हंस-बीजं च मूर्धनि ।
स्नुहिक्षीराभिषेकं च विधिवत् प्राणपूर्वकम् ॥४४॥
स्नुहिवृक्षस्याधोभागे खनेत् प्रादेशमात्रकम् ।
शुक्ल-प्रतिपदारभ्य त्वष्टम्यन्तं जपेत् सुधीः ॥४५॥
यो द्विजः सततं ध्यायेत् पलायन्ते तस्य शत्रवः ।
खादिरं पुत्तलीं कृत्वा पवनं च यथाविधि ॥४६॥
तत्स्पृष्ट्वा चायुतं मंत्रं यो जपेन्निशि साधकः ।
राज-चौर-भयान्मुक्तः सर्वत्र स्याद्धि पूजितः ॥४७॥
पुत्तलीं खादिरमूले निक्षिपेद् यस्य नामतः ।
पुत्र-मित्र-कलत्रादींस्त्यक्त्वा देशान्तरं व्रजेत् ॥४८॥
पराजिताः पलायन्ते शत्रवो नैव संशयः ।
शालुवं पक्षिराजानं शरभं शिवरूपिणम् ॥४९॥
राजवृक्षस्य पुत्तल्यां भूर्बीजं स्मरवह्निना ।
वाग्भवं वायु बीजं च श्री बीजं भुवनेश्वरी ॥५०॥
प्रादक्षिण्येन वेष्टव्यं पुत्तल्योपरि संलिखन् ।
मूलेन राजवृक्षस्य समिद्धोमो विधीयते ॥५१॥
अष्टोत्तरसहस्रं च शतमष्टोत्तरं च वै ।
हुनेच्च विधिवन्मंत्रं चतुष्पथे विधानतः ॥५२॥
त्रिदिनान्ते च विद्वेषं शत्रूणां च परस्परम् ।
रिपवः संक्षयं यान्ति पलायन्ते न संशयः ॥५३॥

इति श्री आकाशभैरवे समुपलब्धातिरिक्तपत्रेषु शरभमंत्रप्रयोगविधिः ॥

अथ आकाशभैरवस्थ-वैदिक-मंत्राः

ओ३म् गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः
सीद सादनम् ॥ (ऋक्) २।६।२९

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत ॥ (ऋक्) ६।२।१९

एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम् ।
न राधसा मर्धिषन्नः ॥ (ऋक्) ६।५।३८

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु ॥१॥
इंद्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ॥२॥
इंद्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥३॥ (ऋक्) ६।६।३१

तरत्स मंदी धावति धारा सुतस्यांधसः ।
तरत्स मंदी धावति ॥१॥
उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः ।
तरत्स मंदी धावति ॥२॥
ध्वस्रयोः पुरुषंत्योरा सहस्राणि दद्महे ।
तरत्स मंदी धावति ॥३॥
आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे ।
तरत्स मंदी धावति ॥४॥ (ऋक्) ७।१।१५

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया
(ऋक्) ॥ ८।३।६

अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ (ऋक्) ८।६।२७

अहमस्मि सहमानाथ त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै ॥ (ऋक्) ८।८।३

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हंतारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥१॥

अहमस्मि सपत्नहेन्द्र इवारिष्टो अक्षतः ।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ॥२॥
अत्रैव वोऽपि नह्याम्युभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पते नि षेधेमान्यथा मदधरं वदान् ॥३॥
अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना ।
आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ॥४॥
योगक्षेमं व आदायाहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम् ।
अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूका इवोदकान्मंडूका उदकादिव ॥५॥
(ऋक्) ८।८।२४ ।

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवंति सत्या समिथामितद्रौ ॥
(ऋक्) ७।४।४

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपंति घर्मम् ॥
आ नो भर प्रमगंदस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः ॥
(ऋक्) ३।३।२१

बलं धेहि तनुषु नो बलमिन्द्रानलुत्सुनः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥१॥
अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पंदने शिंशपायाम् ।
अक्ष वीलो वीलित वीलयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥२॥

अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥३॥
(ऋक्) ३।३।२२ ॥

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वांतमूर्णु हि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥४॥
(ऋक्) ८।३।४

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रंधयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ (ऋक्) १।४।८

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥१॥
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥२॥
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥३॥
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥४॥
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवंत्या अधि ॥५॥
(ऋक्) ४।४।२०

अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥ (ऋक्) ३।३।२२

इंद्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्टयधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥१॥
परशुं चिद्धि तपति शिम्बलं चिद्धि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषंती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२॥
न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयंति पशुमन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयंति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयंति ॥३॥

इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वंत्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥४॥
(ऋक्) ३।३।२३

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृलातीदृशे ॥१॥

क्षेत्रस्य पते मधुमंतमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृलयंतु ॥२॥
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वंतरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यंतो अन्वेनं चरेम ॥३॥
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लांगलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यंतां शुनमष्ट्रामुदिंगय ॥४॥
शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिंचतम् ॥५॥

अर्वाची सुभगे भव सीते वंदामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥६॥
इंद्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७॥
शुनं नः फाला वि कृषंतु भूमिं शुनं कीनाशा अभियंतु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥
(ऋक्) ३।८।९

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥
(ऋक्) २।५।१७

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्त्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥
(ऋक्) ३।१।२७

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियंतो व्यस्मत्पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
(ऋक्) ५।६।१०

इंद्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥
(ऋक्) ८।४।३

यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥
(ऋक्) २।७।१०

विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निंद्र सुन्वते ।
पारावतं यत्पुरुसंभृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबंधवे ॥
(ऋक्) ६।७।४

कुषुंभकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् । (ऋक्) २।५।१६

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयंताम् ॥
(ऋक्) ८।३।१६।

य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ (ऋक्) ५।४।२२
आवहंती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥
(ऋक्) १।८।३

आवहंत्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधयंती सुविताय देव्यु१ षा ईयते सुयुजा रथेन ॥
(ऋक्) ३।५।१४

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिंधवः
स्रोत्याभिः ॥ (ऋक्) ३।२।१३

स्वप्नः स्वप्नाधिकरणे सर्वं नि ष्वापया जनम् ।
आ सूर्यमन्यान् स्वापय[1] व्युषं जागृयादहम् ॥१॥
अजगरो नाम सर्पः सर्पिरविषो महान् ।
तस्मिन् हि सर्पः सुधितस्तेन त्वा स्वापयामसि ॥२॥
सर्पः सर्पो अजगरः सर्पिरविषो महान् ।
तस्य सर्पात्सिंधवस्तस्य गाधमशीमहि ॥३॥
कालिको नाम सर्पो नवनागसहस्रबलः ।
यमुनह्रदे ह सो जातो ३ यो नारायणवाहनः ॥४॥
यदि कालिकदूतस्य यदि काः कालिकाद्भयम् ।
जन्मभूमिमतिक्रांतो निर्विषो याति कालिकः ॥५॥
आ याहींद्र पथिभिरीलितेभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व ।
तृप्तां जुहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामिव ॥६॥
यशस्करं बलवंतं प्रभुत्वं तमेव राजाधिपतिर्बभूव ।
संकीर्णनागाश्वपतिर्नराणां सुमंगल्यं सततं दीर्घमायुः ॥७॥
कर्कोटको नाम सर्पो यो दृष्टिविष उच्यते ।
तस्य सर्पस्य सर्पत्वं तस्मै सर्प नमोऽस्तु ते ॥८॥
(ऋक्) खिल सूक्तम् (परिशिष्टे)

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥१॥
अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥२॥
अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वंतः ।
अयं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥
(ऋक्) ८।८।४१

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥१॥

---
१. स्वापयाव्यु ।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा ॥२॥
हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥३॥
(ऋक्) ८।८।४३

परिशिष्टं—नेजमेष परा पत सुपुत्रः पुनरा पत ।
अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमाधेहि यः पुमान् ॥१॥
यथेयं पृथिवी मह्यु्त्ताना गर्भमा दधे ।
एवं तं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतवे ॥२॥
विष्णोः श्रैष्ठ्येन रुपेणास्यां नार्यां गवीन्याम् ।
पुमांसं पुत्रमाधेहि दशमे मासि सूतवे ॥३॥
(ऋक्) खिल सूक्तम्

पवस्व सोम मंदयन्निंद्राय मधुमत्तमः ॥१॥
असृग्रन् देववीतये वाजयंतो रथा इव ॥२॥
ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥३॥
ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥४॥

एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥५॥ (ऋक्) ७।२।१६।

आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रोग्रेव रुचा नृपतीव तुर्यै ।
इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ॥
(ऋक्) ८।६।१

इति श्रीआकाशभैरव महातन्त्रे वैदिक-मन्त्राः ॥

॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

अथ गायत्री-विधिः

(तन्त्रान्तरे)

अथो वक्ष्यामि गायत्रीं तत्त्वरूपां त्रयीमयीम् ।
यया प्रकाश्यते ब्रह्म-सच्चिदानन्द-लक्षणम् ॥१॥
प्रणवाद्या व्याहृतयः [1]सप्त स्युस्तत्पदादिका ।
चतुर्विंशत्यक्षरात्मा गायत्री शिरसाऽन्विता ॥२॥
सर्ववेदोद्धृतःसारो मन्त्रोऽयं समुदाहृतः ।
प्राणायामान् पुरा कृत्वा गायत्रीं सन्ध्ययोर्जपेत् ॥३॥

प्राणायामविधिः ॥

सप्तव्याहृति संयुक्तां गायत्रीं शिरसाऽन्विताम् ।
त्रिरुच्चरन् धिया प्राणान् धारयेद्यतमानसः ॥४॥
प्राणायामोऽयमाख्यातः समस्त-दुरितापहः ॥५॥

ऋषिः छन्ददेवतादयः ॥

(क) ओङ्कारस्य प्रजापति ऋषिः गायत्रीछन्दः श्री परमात्मा देवता

(ख) सप्तव्याहृतीनां जमदग्नि-भरद्वाज-भृगु-गौतम-काश्यप-विश्वामित्र-वसिष्ठाः ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्-बृहती-पंक्तिः-त्रिष्टुब्-जगत्यः छंदांसि, सप्तार्चिरनिलः सूर्यो वाक्पतिर्वरुणो वृषभो विश्वेदेवाः देवता :—

(ग) गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छंदः सविता देवता :—

(घ) आपो ज्योतीति शिरसाऽस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्री छंदः श्री परमात्मा देवता ।

---

१. ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यम् ।

२. ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

३. ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वः सोऽहमोम् (स्वरोम्) ॥

४. ओं भूर्भुवः स्वः ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

अथ जपमंत्रः ॥

व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं दीक्षितो जपेत् ।
चतुर्विंशतिलक्षाणि पुरश्चरणमुच्यते ॥६॥
क्षीरौदनं तिलान्दूर्वा-सिद्धौदन-समिद्वरान् ।
पृथग्द्रव्यं सहस्रं तु जुहुयात् मंत्रसिद्धये ॥७॥
तर्पणादि ततः कृत्वा गुरुं संतोष्य यत्नतः ।
प्रयोगानाचरेद्विद्वांस्तदनुज्ञा-पुरस्सरम् ॥८॥
तत्त्वसंख्या सहस्राणि मंत्री प्रजुहुयात्तिलैः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुस्स विन्दति ॥९॥

गायत्र्याः तुर्यपादः ॥

जपेन्मुमुक्षुर्गायत्रीं तुर्यपादेन संयुताम् ।
परो रजसे सावदोऽमिति तुर्यः प्रकीर्तितः ॥१०॥

तुर्यपादस्य ऋष्यादयः ॥

विमलोऽस्य ऋषिश्छंदो गायत्रं देवता प्रभुः ॥११॥

"ओं भूर्भुवः स्वः ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्-परो रजसे सावदो३म्—"

नातः परतरो मंत्रो नातः परतरं तपः ।
तृणायन्ते महाविद्यादयः सर्वा यदग्रतः ॥१२॥

अथ तेजोमयं सदाशिवोरूपं भावयन् आत्मानं ओं भू र्भुवः स्वः पूर्वकं मातृका-वर्ण-षडङ्गादिन्यासान्विधाय मूलाधारादाब्रह्मबिलं विलसन्ती बिसतन्तुतनीयसीं विद्युत्पुञ्जपिंजरां विवस्वदयुतभास्वत्प्रकाशां परश्शतसुधा मयूख-शीतल-तेजो दण्डरूपां परचिति भावयन्, मूलाधारात्-स्वाधिष्ठानात् नाभिगत, मणिपूरक-सरोज-कर्णिकया वा ओङ्कारं समुत्थाय, वक्ष्यमाण दिव्यरूपात्मिकां परंदेवतां ध्यायन्-गुरुरुपदिष्टमार्गेण मानस-यौगिक-योग-वाचक-योगमानसिक-वाङ् मानसिक यौगिकविधिना वा सकलवेदसाररूपां तुर्यपादसहितां चतुर्विंशतिवर्णात्मिकां प्रणवसहितव्याहृतित्रययुतां गायत्रीं जपेदिति विधिः ।

ध्यानम् ।।

"मुक्ता-विद्रुम-हेम-नील-धवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिंदुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम् ।
सावित्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणम्
शङ्खं चक्रमथाऽरविंदयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ।।१३।।
आयुषे साज्यहविषा केवलेनाऽथ सर्पिषा ।
दूर्वात्रिकैस्तिलैर्मन्त्री जुहुयात् त्रिसहस्रकम् ।।१४।।
अरुणाब्जैस्त्रिमध्वक्तैर्जुहुयादयुतं ततः ।
महालक्ष्मीर्भवेत्तस्य षण्मासान्नाऽत्र संशयः ।।१५।।
ब्रह्मश्रिये प्रजुहुयात् प्रसूनैर्ब्रह्मवृक्षजैः ।
बहुना किमिहोक्तेन यथावत् साधुसाधिता ।।१६।।
द्विजन्मिनामियं विद्या सिद्धा कामदुघा मता ।।१७।।

इति गायत्रीविधिः
(शारदातिलकात्)

अथ सावित्री-विधिः

(आग्नेयास्त्रम्)

श्रीशिव उवाच ॥

सर्वार्थसाधकं वक्ष्ये सङ्ग्रामविजयप्रदम् ।
(सर्वार्ति-रोग-शत्रूणां नाशनं च सुखप्रदम्) ॥१॥

"ओ३म् जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिंधुं दुरितात्यग्निः" ॥२॥
(ऋक्)

मारीचःकाश्यपः प्रोक्तो मुनिरस्य महामनोः ।
त्रिष्टुप् छंदो देवताऽत्र जातवेदोऽग्निरीरितः ॥३॥
नवभिः सप्तभिः षड्भिः सप्तभिः पुनरष्टभिः ।
सप्तभिर्मूलमंत्रार्णैः षडङ्गविधिरीरितः ॥४॥
अङ्गुष्ठ-गुल्फ जंघासु-जानुनोरूरुयुग्मके ।
कट्यन्धु नाभिषु हृदि स्तनयो पार्श्वयोर्द्वयोः ॥५॥
पृष्ठतः स्कंधयोर्मध्ये बाहुमूलोपबाहुषु ।
प्रकूर्पर-प्रकोष्ठेषु मणिबंधतलेषु च ॥६॥
मुख-नासाक्षि-कर्णेषु-मस्त-मस्तिष्क-मूर्धसु ।
क्रमेण विन्यसेद्वर्णान्मंत्री मंत्रसमुद्भवान् ॥७॥
शिखा-ललाट-नयन-कर्णोष्ठ-रसनास्वथ ।
सकण्ठ-बाहु-हृत्कुक्षि-कटिगुह्योरू-जानुषु ॥८॥
जङ्घयोः पादयोर्न्यस्येदथ विश्वेश्वरीं स्मरेत् ॥९॥

ध्यानम् ॥

उद्यद्विद्युत्करालाकुलहरिगल संस्थाऽरिशंखासिखेट-
ष्विश्वासाख्य त्रिशूलानरिगणभयदां तर्जनीञ्चाऽऽदधाना ।
चर्मास्युद्घूर्णदोर्भिः प्रहरण-निपुणाभिर्वृता कन्यकाभि-
र्द्यात्काशानवीष्टांस्त्रिनयनलसिता चापि कात्यायनी वः ॥१०॥

दीक्षा प्रवर्त्यते पूर्वं यथावद्देशिकोत्तमैः ।
ततोऽस्त्रक्लृप्तिः सम्प्रोक्ता स्यात्प्रयोगविधिस्ततः ॥११॥
दीक्षकाख्याक्षराण्यादौ शक्त्यावेष्टच ततो बहिः ।
यंत्रं षड्गुणितं कृत्वा दुर्वर्णलसितास्त्रकम् ॥१२॥
बहिरष्टदलं पद्मं प्रोक्त-लक्षण-लक्षितम् ।
अत्र पीठे यजेन्मंत्री नवशक्ति-सह-शिवाम् ॥१३॥
जयां च विजयां भद्रां रुद्रां कालीं च पूर्वतः ।
सुमुखीं दुर्मुखीं चन्द्रमुखीं सिंहमुखीं तथा ॥१४॥
मध्ये दुर्गां यजेत्पश्चादासनं सिंहमंत्रतः ।
तारमुक्त्वा वज्रनखदंष्ट्राय च महाततः ॥१५॥
सिंहाय हुं फट् हृच्चेति[1] मंत्रः सप्तदशाक्षरः ।
मूर्ति मूलेन सङ्कल्प्य तस्यामावाह्य पूजयेत् ॥१६॥
केशरेषु षडङ्गानि पूर्वतोऽष्टदले पुनः ।
जातवेदः सप्तजिह्वो द्वितीयो हव्यवाहनः ॥१७॥
ततोऽश्वोदरजं वैश्वानरं कौमारतेजसम् ।
विश्वमुखं देवमुखं पीठे कोष्ठचतुष्टये ॥१८॥
धरात्मानं जलात्मानं वह्न्यात्मानं निरात्मकम् ।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शांतिश्च गौणकाः ॥१९॥
पूषा-वाण्यौ ततो वीथी शचीतोयात्मिका तथा ।
नित्या दयावती चैव अष्टमी कारिणी मता ॥२०॥
तथैव नवमी नामा प्रोक्ता चैव तिरस्क्रिया ।
[2]देवमाता च दमनप्रिया पश्चान्निरूप्यते ॥२१॥
समाराध्य नंदिनी च परा रिपुविमर्दिनी ।
पद्माख्या दण्डिनी तिग्मा दुर्गा गायत्र्यतः परम् ॥२२॥
निरवद्या विशालाक्षी सौम्या सार्यं निरूप्यते ।
स्वरोद्वाहा नादिनी च वेदना वह्निगर्भिणी ॥२३॥

---

१. मन्त्रोद्धार—ओं वज्र नखदंष्ट्राय महासिंहाय हुं फट् नमः ।
२. वेदमाता ।

सिंहवासा च धूम्रा च दुर्विषंहारिरंसुका ।
तापहरा त्यक्तदोषा निःसपत्नेति तद्बहिः ॥२४॥
लोकपालांस्तदास्त्राणि पूजयेच्च यथाविधि ।
एवं शिष्यमभिषिच्य कुम्भादीन् गुरुराहरेत् ॥२५॥
ईदृशं यंत्रमारुह्य जपेच्छिष्यः सुयन्त्रितः ।
मंत्रं वर्णसहस्राणि सिद्धयर्थं गुरुसन्निधौ ॥२६॥
सर्वं जापेषु चाग्नेय्या गायत्र्या द्विगुणो जपः ।
कर्तव्यो वाञ्छितावाप्त्यै रक्षायै कार्यसिद्धये ॥२७॥
वेद-वेदाब्धि-संख्याकं तिलसिद्धार्थ-चित्रजैः ।
मूलैश्च समिधाभिश्च वटोदुम्बर-पैप्पलैः ॥२८॥
अर्क-प्लक्षोद्भवैश्चापि घृतेन हविषान्नकैः ।
सर्वैर्घृताक्तैर्जुहुयात्तिलैश्चान्ते घृताहुतीः ॥२९॥
ततस्सन्तर्प्य सतिलैः कृत्वा चात्माभिषेचनम् ।
समाराध्य धरादेवीं तोषयेद् गुरुमात्मनः ॥३०॥
इच्छञ्जपादिभिः सिद्धे मंत्रेऽस्मिन् साधकोत्तमः ।
आग्नेयास्त्राधिकारी स्यात्तद्विधानमितीर्य्यते ॥३१॥
आग्नेयास्त्रमिति प्रोक्तं विलोमप्रथितो मनुः ।
पूर्वोक्ता एव मुन्याद्याः षडङ्गानि विलोमतः ॥३२॥
ग्नि त्थ तारि दु धुं सिं हृदयाय नमः ।
व वे ना श्वा विणिर्गा दु-शिरसे स्वाहा ॥३३॥
ति द ष रि प नः स-शिखायै वषट् ।
दः वे ति हा द नि-कवचाय हुम् ॥३४॥
तो य ती रा म म सो-नेत्रत्रयाय वौषट् ।
म वा न सु से द वे त जा अस्त्राय फट् ॥३५॥
पूर्वोक्त संख्यकैर्वर्णैर्वर्णन्यासस्तथैव च ।
तथैव च पदन्यासो जपः पूजा च पूर्ववत् ॥३६॥
पञ्चगव्य-सुपक्वेन चरुणा तस्य सिद्धये ।
चतुस्साहस्रं च शतं चत्वारिंशच्चतुष्टयम् ॥३७॥

होमयेदर्चनं प्राग्वज्जपश्च प्रतिलोमतः ।
क्रूरकर्मणि कुर्वीत प्रतिलोमविधानतः ॥३८॥
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म्मं कर्त्तव्यमनुलोमतः ॥३९॥
ग्न्याद्यः पञ्चाक्षरः पादो ज्ञेयो ज्ञानेन्द्रियात्मकः ।
धुमाद्यः पञ्चवर्णो द्वितीयः कर्म्मेन्द्रियात्मकः ॥४०॥
श्वाद्यस्तृतीयः पञ्चार्णः सर्वभूतमयः स्मृतः ।
त्याद्यः सप्ताक्षरः पादश्चतुर्थो धातुरूपकः ॥४१॥
दः पूर्वः पञ्चमः पाद ऊर्मिरूपः षडक्षरः ।
तोवर्णादिः षडर्णोऽन्यः षट् कौशिकमयो मतः ॥४२॥
सोपूर्वः पञ्चवर्णोऽन्यः शब्दादिमय ईरितः ।
से वर्णाद्योऽष्टमो ज्ञेयः पञ्चार्णो वचनादिकः ॥४३॥
एवं तत्त्व समायोगात्परिक्लृप्तिरुदीरिता ।
तत्तत्पादाक्षरोत्पन्नास्ताराद्या वह्निदेवताः ॥४४॥
प्रधानमूर्तिप्रतिमाः स्व-स्वकर्मेरितप्रभा ।
प्रज्वलत्केशवदना भीमदंष्ट्रा भयापहाः ॥४५॥
देवता इन्द्रियोत्पन्ना ऊर्ध्वदृष्टय ईरिताः ।
देवता भूतपादोत्थास्तिर्यग्नेत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥४६॥
धातुरूपाक्षरोत्पन्ना उभयात्मदृशोमताः ।
ऊर्म्मिजा ऊर्ध्ववदनाः कोशोत्थास्तिर्यगाननाः ॥४७॥
अर्थसंख्या समुत्पन्ना देवता द्विदिगाननाः ।
एताः सर्वाः स्मृता क्लीवा इन्द्रियार्थो भवाः स्त्रियः ॥४८॥
याभिर्मन्त्री दहेच्छत्रो राष्ट्रं सगिरिकाननम् ।
अस्त्रं मनुष्यनक्षत्रे प्रारभेत विचक्षणः ॥४९॥
आसुरेषु प्रयुञ्जीयात् देवतासु शुभं हरेत् ।
उपक्रमेत नन्दासु रिक्तास्वस्त्रं विसर्जयेत् ॥५०॥
भद्रास्वाहरणं कुर्याज्जपाहे कार्य्यमुत्तमम् ।
उपक्रमो भौमवारे शनिवारे विसर्जयेत् ॥५१॥

प्रतिसंहरणं वारे गुरो शुक्रस्य वा भवेत्।
स्थिरेषु राशिष्वारंभश्चरेषु स्याद्विसर्जनम् ॥५२॥
अस्त्रसंहरणं कुर्यादुभयेषु विचक्षणः।
कृष्णपक्षे चरेदस्त्रं विसृजेच्छशिना पुनः ॥५३॥
शुक्लपक्षे क्रमादस्त्रं पुनरात्मनि संहरेत्।
भानुना मोक्षसंहारौ कुर्यात्पक्षद्वये सुधीः ॥५४॥
मारणं—पश्चिमाभि मुखो भूत्वा सर्वकर्माणि साधयेत्।
नक्षत्रवृक्षशकलान्साध्याख्यान्कर्म्म संयुतान् ॥५५॥
राजी तैलेनसंलिप्तान् पृथक् सप्तसहस्रकम्।
जुहुयात्संयतो भूत्वा रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ॥५६॥
ज्वरकरणं—सप्तरात्रं प्रजुहुयात्सिद्धार्थस्नेहसंयुतैः।
आर्द्र वस्त्रो विष्टिकाले मरीचैर्मनुनाऽमुना ॥५७॥
निगृह्यते ज्वरेणाऽरिः प्रलयाग्निसमेन सः।
पुनः ज्वरकरणं—ताल पत्रे समालिख्य शत्रुनाम यथाविधि ॥५८॥
आग्नेयास्त्रेण संवेष्ट्य कुण्डमध्ये निखन्यते।
मरिचैश्च हुनेत्क्रुद्धो ज्वराक्रान्तः सजायते ॥५९॥
वशीकरणम्—तदादाय क्षिपेत्तोये शीतले स वशो भवेत्।
मारणे पुत्तलि विधि—सामुद्रे सलिले हिङ्गु-विष-जीरकलोलिते ॥६०॥
क्वथिते पुत्तलिं साध्यनक्षत्रतरुनिर्मिताम्।
अधोवक्त्रां विनिक्षिप्य यष्ट्या विषतरूत्थया ॥६१॥
तच्छिरस्ताड़नं कुर्याज्जपन्मंत्रं विलोमतः।
सप्ताहान्मरणं याति शत्रुर्ज्वरविमोहितः ॥६२॥
शत्रोरुच्चाटनम्—आदित्यरथनागेन्द्रग्रस्तांघ्रि तद्विषाहतम्।
नग्नं तैलेन लिप्ताङ्गं दग्धं भानुमरीचिभिः ॥६३॥
अधोमुखं निजरिपुं ध्यात्वा क्वथित देशिकः।
बिभ्राणां गर्जनीं शूलं ध्यात्वा दुर्गां भयङ्करीम् ॥६४॥
महिषीघृतसंसिक्तैः पल्लवैर्विषवृक्षजैः।
हुत्वा रिपोर्महासेनामुच्चाटयति मन्त्रवित् ॥६५॥

रिपुसेना उच्चाटनम्—ध्यात्वा देवीं पुरा-प्रोक्तां चरुभिर्मरिचान्वितैः ।
अजारुधिरसंसिक्तैर्जुहुयाद् दिवसत्रयम् ॥६६॥
रिपोरुच्चाटनं कुर्यात् सेनाया नाऽत्र संशयः ।

शत्रुमोहनम्—अग्निशूलकरां दुर्गां ज्वलन्तीं प्रलयाग्निवत् ॥६७॥
ध्यात्वा सर्षपतैलाढ्यैर्बीजैर्धत्तूरसम्भवैः ।
हुत्वा विमोहयेच्छत्रून्मरीचैर्वा ससर्षपैः ॥६८॥

शत्रुमारणम्—कालाञ्जननिभां दुर्गां शूलखड्गकरां स्मरन् ।
नक्षत्रवृक्षसम्भूतै व्रणवृक्षजसंज्ञकैः ॥६९॥
समिद्वरैः प्रजुहुयाद्धन्यान्मासेन वैरिणम् ।

शत्रोरुच्चाटनम्—सिंहारूढां-प्रधावन्तीं-धावमानं रिपुं प्रति ॥७०॥
शरान्कार्मुकनिर्मुक्तान्वह्नि-ज्वालामुखाकुलान् ।
मुञ्चन्तीं संस्मरन्दुर्गां तर्पयेदुष्णवारिणा ॥७१॥
भानुबिम्बं समालोक्य शत्रोरुच्चाटनं भवेत् ।

(अतिदुर्गादयः पञ्च वक्ष्ये षट्कर्मसाधने) ॥७२॥

१. अतिदुर्गा—ओं अति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ।
जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहातिवेदः ।
स नः पर्षत् स्वाहा ॥७३॥

२. गाणि दुर्गा—ओं गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्याग्निः ।
जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुः स्वाहा ॥७४॥

३. विश्वा दुर्गा—ओं विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः जातवेदसे ।
सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः पर्षदति
दुर्गाणि स्वाहा ॥७५॥

४. सिन्धु दुर्गा—ओं सिन्धुं दुरितात्यग्निः । जातवेदसे सुनवाम
सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव स्वाहा ॥७६॥

५. अग्नि दुर्गा—ओं अग्निः जातवेदसे सुनुवाम
सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्ति
स्वाहा ॥७७॥

[1]अतिदुर्गामयोमुष्टिगदाहस्तां विचिन्तयेत् ।
विद्युद्दामसमानाभां महिषीघृतसंयुतैः ॥७८॥
[2]पुलाकैर्जुहुयान्निम्ब-विभीतक-समिद्वरैः ।
कोद्रवैरथशत्रोश्च सेनाया स्तंभनं भवेत् ॥७९॥
[3]आत्तपाशाङ्कुशां रक्तां गाणि-दुर्गामनु स्मरेत् ।
लोणैः समधुरैः साध्यवृक्षकाष्ठैधितेऽनले ॥८०॥
जुहुयान्निशि सप्ताहान्मन्त्रविद्वशयेन्नृपान् ।
(लभते वांच्छितानर्थान् साम्राज्यं च न संशयः) ॥८१॥
पाशाङ्कुशधरां रक्तां विश्वदुर्गां विचिन्तयेत् ।
फलिनीकुसुमैः फुल्लैश्चन्दनाम्भःसमुक्षितैः ॥८२॥
जुहुयान्निशि यो मंत्री तस्य विश्वं वशं भवेत् ।
शरच्चन्द्रनिभां देवीं विगलत्परसामृताम् ॥८३॥
पाशाङ्कुशधरां ध्यायन् सिन्धुदुर्गां समिद्वरैः ।
वैतसैर्मधुरासिक्तैर्जुहुयात् (वृत्ति) वृष्टिसिद्धये ॥८४॥
कपालं त्रिशिखं पाशमङ्कुशं बिभ्रतीं करैः ।
जवाकुसुमसङ्काशामग्निदुर्गां विचिन्तयन् ॥८५॥
हुत्वा लवणपुत्तल्या मधुरत्रययुक्तया ।
आकर्षेद्वांच्छितान् साध्यान्मंत्रविन्नाऽत्रसंशयः ॥८६॥
अङ्गणे स्थण्डिलं कृत्वा सुगन्धिकुसुमादिभिः ।
देवीमभ्यर्च्य नित्यं प्रागुक्तेनैव वर्त्मना ॥८७॥
आहरेद्रात्रिषु बलिं चरुणा सर्वसिद्धिदम् ।
कृत्या-रोग-भय-द्रोह-भूतादीन्नाऽत्रसंशयः ॥८८॥
यथावदग्निमाराध्य गंधैः पुष्पैर्मनोरमैः ।
स्थित्वा तस्याग्रतो मंत्री जपेन्मंत्रमनन्यधीः ॥८९॥

---

१. ममोर्धष्टि, २. पुरोक्तैः, ३. इषु जालांकुशाढ्यां च ।

जपोऽयं सर्वसिद्धयै स्यान्नाऽत्र कार्या विचारणा।
लवणैर्मधुरासिक्तैर्जुहुयात्पश्चिमामुखः ॥९०॥
मंत्रार्णसंख्यया मंत्री रिपुमात्मवशं नयेत्।
शालीन् प्रक्षाल्य संशोष्य शुद्धान् कुर्वीत तण्डुलान् ॥९१॥
जपित्वा पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने।
चरुं पचेज्जपन्मंत्रमवतार्य पुनः सुधीः ॥९२॥
अर्चयित्वा विशदधीर्देवीमग्नौ यथा पुरा।
जुहुयाच्चरुणाऽनेन साज्येनाष्टसहस्रकम् ॥९३॥
पात्रे सम्पातनं कुर्वन् साध्यं तत् प्राशयेत् सुधीः।
शेषं तं निखनेद् वारिसम्पातं प्राङ्गणान्तरे ॥९४॥
कृत्या-रोगा विनश्यन्ति सहभूतग्रहामयैः।
परैरुत्पादिता कृत्या पुनस्तानेव भक्षयेत् ॥९५॥
व्रीहिभिर्हविषाक्षीरैः पयोवृक्षसमिद्वरैः।
आज्यैर्मधुत्रयोपेतैरेतैर्दशशतं पृथक् ॥९६॥
जुहुयात्सम्पदां भूमिः साधको भवति ध्रुवम्।
भास्करे मेषराशिस्थे मंत्रज्ञोऽनुगुणे दिने ॥९७॥
नद्यां सागरगामिन्यां सततं पुश्कलांभसि।
उद्धृत्यादाय सिक्ताः संशोष्य परिशोधयेत् ॥९८॥
न्यस्य ताः पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने।
भर्ज्येन्मनुना सिद्धयै दर्व्या ब्रह्मरुहोत्थया ॥९९॥
सिंहमेषधनुस्थेऽर्के कृष्णपक्षेऽष्टमी तिथौ।
विशाखाकृतिकामूलहस्तोत्तरमघास्वथ ॥१००॥
रोहिण्यां श्रवणे वारौ मन्दवाक्पतिदैवतौ।
विहायाऽन्येषु कुर्वीत सिक्तास्थापनं सुधीः ॥१०१॥
गृहग्रामादिराष्ट्राणां रक्षार्थं सिक्ताः शुभाः।
प्रस्थाढकघटोन्माना मध्यादिष्ववटेष्विमाः ॥१०२॥
नवसु प्रक्षिपेज्जप्तास्तेषु सम्पूजयेत् क्रमात्।
मध्यादि देवीशस्त्राणि कपालान्तानि देशिकः ॥१०३॥

चक्रं शङ्खमसिं खेटं बाणञ्चापं त्रिशूलकम् ।
कपालं स्वस्वमंत्रेण सम्पूज्याऽन्ते बलिं हरेत् ॥१०४॥
नक्षत्र-ग्रह-राशीनां लोकेशानां बलिं हरेत् ।
विहिता यत्र रक्षेयं वर्धन्ते तत्र सम्पदः ॥१०५॥
क्षुद्रग्रहमहारोगसौरभूतसरीसृपाः ।
अमुना विलयं यान्ति विधिना नाऽत्र संशयः ॥१०६॥
सिकतानां विशुद्धानां कुडवांश्चापि षोडश ।
पञ्चगव्ययुते पात्रे ब्रह्मवृक्षेण निर्मिते ॥१०७॥
निक्षिपेद्विधिना यत्र स्थापयेत्तत्र सम्पदः ।
दिने दिने प्रवर्धन्ते कालवृष्ट्यादिभिः सह ॥१०८॥
महोत्पाता विनश्यन्ति कृत्याद्रोहमहाग्रहाः ।
चरुगव्याश्मनां कुर्यात् स्थापनं विधिनामुना ॥१०९॥
गोमूत्रं प्रस्थमात्रं स्याद् गोमयाम्भस्तदर्धकम् ।
आज्यात्सप्तगुणं क्षीरं गोमूत्रात्त्रिगुणं दधि ॥११०॥
गोमूत्रेण समं सर्पिः सर्वं वा सममुच्यते ।
गावः स्युः कपिलाश्वेतसितधूम्रारुणप्रभाः ॥१११॥
अभावे च सिताः सर्वाः सर्वं वा कपिलोद्भवम् ।
एकोनपञ्चाशत्कोष्ठे फलके ब्रह्मशाखिनः ॥११२॥
विहाय कोणकोष्ठानि मध्यकोष्ठे लिखेच्च ह्लीम् ।
तदूर्ध्वकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्येन संलिखेत् ॥११३॥
देवीं तत्र समावाह्य पूजयेदुपचारकैः ।
कृत्वा होमं तु सम्पातं निखनेत्तद्यथापुरा ॥११४॥
दद्याद्बलिं यथा पूर्वं तस्य पूर्वोदितं फलम् ।
नवकोष्ठान्वितं लेख्यं चतुरस्रं सुशोभनम् ॥११५॥
साध्यनामान्वितां मायां मध्यकोष्ठे तु संलिखेत् ।
तदधःकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्येन संलिखेत् ॥११६॥
मूलमंत्रस्य पूर्वोक्तानष्टौ पादांश्च तद्बहिः ।
वृत्तद्वयान्तराले तु मातृकार्णैः प्रवेष्टयेत् ॥११७॥
तद्बहिश्चतुरस्रं स्याद्धारणायंत्रमद्भुतम् ।
सर्वभूतभयहरं श्रीकीर्त्यायुःप्रदं शुभम् ॥११८॥
आग्नेयास्त्रस्य ज्ञानानि विसर्गादान कर्मणी ।
यः पुमान् गुरुणाशिष्टस्तस्याधीनं जगत्त्रयम् ॥११९॥

इति सावित्री विधिः (तंत्रान्तरात्)

अथ सरस्वती विधिः

(त्र्यम्बक-मन्त्र-विधिः)

अथ त्रैयम्बकं मंत्रमभिधास्याम्यनुष्टुभम् ।
यं भजन्तं नरं कालः स्वयं वीक्षितुमक्षमः ॥१॥

अथ प्रयोगः ॥

आदौ स्वस्तिवाचनम् विष्णुस्मरणं च,

प्रतिज्ञा—अद्य तत्सद्ब्रह्मेत्यादि० अमुकगोत्रः अमुक शर्मा-वर्मा-गुप्तोऽहं मम आत्मनः जन्मलग्नादि द्वारा दुष्टस्थानस्थित ग्रहजन्याशेषोपसर्गापमृत्यु-पीड़ा-निवृतिपूर्वक आयुरारोग्य-सुख-सौभाग्य-धन-धान्य-स्त्री पुत्र-सम्पत्प्रवृद्धि-कुलानन्द दीर्घजीवित्वकामनया श्रीमतो मृत्युञ्जय देवस्य पूजनं, तदङ्गतया निर्विघ्नतार्थे श्री गणपत्यादिनां पूजनं च करिष्ये ॥

ततो गणेशादीन्सम्पूज्य कलशस्थापनं कृत्वा देवस्य पूजनं कुर्यात् । आदौ मातृकान्यासं कृत्वा पश्चान्मंत्रन्यासं—यथा

त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिरनुष्टुब्छंदस्त्र्यम्बको देवता मम (अमुकस्य वा) अपमृत्यु-प्रशमन-दीर्घजीवित्व-धन-धान्य-पुत्रादि प्राप्तये जपे विनियोगः ॥

अथ ऋष्यादि न्यासं कृत्वा—

ओं त्र्यम्बकं—अंगुष्ठाभ्यां नमः, ओं यजामहे—तर्जनीभ्यां नमः, ओं सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्—मध्यमाभ्यां नमः, ओं उर्वारुकमिव बन्धनात्—अनामिकाभ्यां नमः, ओं मृत्योर्मुक्षीय—कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ओं मामृतात्—करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥

—एवं हृदयादिषु न्यस्य

ओं त्र्यं नमः—पूर्व मुखे, ओं बं नमः—पश्चिम मुखे ।
ओं कं नमः—दक्षिण मुखे, ओं यं नमः—उत्तर मुखे ।
ओं जां नमः—वक्षसि, ओं मं नमः—गले ।

ओं हें नमः—ऊर्ध्व मुखे, ओं सुं नमः—नाभौ ।
ओं गं नमः—हृदि, ओं धिं नमः—पृष्ठे ।
ओं पुं नमः—कुक्षौ, ओं ष्टि नमः—लिंगे ।
ओं वं नमः—गुदे, ओं द्धं नमः—दक्षिणोरुमूले ।
ओं नं नमः—वामोरुमूले, ओं उं नमः—दक्षोरुपान्ते ।
ओं र्वां नमः—वामोरुपान्ते, ओं रुं नमः—दक्षजानुनि ।
ओं कं नमः—वामजानुनि, ओं मि नमः—दक्षगुल्फे ।
ओं वं नमः—वामगुल्फे, ओं बं नमः—दक्षस्तने ।
ओं धं नमः—वामस्तने, ओं नात् नमः—दक्षपार्श्वे ।
ओं मृं नमः—वामपार्श्वे, ओं त्यों नमः दक्षपादे ।
ओं मुं नमः—वामपादे, ओं क्षीं नमः—दक्षहस्ते ।
ओं यं नमः—वामहस्ते, ओं मां नमः—दक्षिण नासार्या
ओं मृं नमः—वामनासायाम्, ओं तात् नमः—शीर्षे ।।

ओं त्र्यम्बकं नमः—शिरसि, ओं यजामहे नमः—भ्रूयुगले ।
ओं सुगन्धिं नमः—अक्षिद्वये, ओं पुष्टि नमः—वक्त्रे ।
ओं वर्धनं नमः—गण्डयुगले, ओं उर्वारुक नमः—हृदये ।
ओं मिव नमः—जठरे, ओं बंधनात् नमः—गुह्ये ।
ओं मृत्योः नमः—ऊरुद्वये, ओं मुक्षीय नमः—जानुद्वये ।
ओं मामृतात् नमः—पादयोः ।।इति।।

अथ ध्यानम् :—

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम् ।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृत घटं कैलाशकान्तं शिवम्
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे ।।

—एवं ध्यात्वा

स्वकीय यजमानस्य वा मध्यमांगुलि समदीर्घं चतुरस्रं षडष्टास्र भू गृहां कुंकुम कस्तूरी चन्दनैर्यन्त्रतनुं ताम्र, रौप्य, स्वर्ण भाजनोपरि सम्पाद्य तत्र पञ्चाक्षरोदितेपीठे वृषभध्वजं पूजयेत् ।।तत्रैव देवमावाह्य, पुष्पां-

जलि निक्षिप्य, पाद्यादि षोडशोपचारैः सम्पूज्य—आवरण पूजनंच कुर्यात् ।

अथ षट्कोणेषु हृदयादि षडङ्गं सम्पूज्येत्—प्रथमावरणं ।।

अथाष्टदलेषु—ओं अर्कमूर्तये नमः, ओं सोममूर्तये नमः, ओं पृथिवी मूर्तये नमः, ओं जलमूर्तये नमः, ओं अग्निमूर्तये नमः, ओं वायुमूर्तये नमः, ओं आकाशमूर्तये नमः, ओं यजमानमूर्तये नमः ।।इति द्वितीयावरणम् ।।

अथ मध्ये—ओं रमायै नमः, ओं राकायै नमः, ओं प्रभायै नमः, ओं ज्योत्स्नायै नमः, ओं पूर्णायै नमः, ओं [1]उमायै नमः, ओं [2]पूषायै नमः, ओं [3]स्वधायै नमः—।।इति तृतीया वरणमृ ।।

ओं विश्वायै नमः, ओं विद्यायै नमः, ओं सितायै नमः, ओं [4]शुद्धायै नमः, ओं सारायै नमः, ओं संध्यायै नमः, ओं शिवायै नमः, ओं निशायै नमः—।।इति चतुर्थावरणम् ।।

ओं आर्यायै नमः, ओं प्रज्ञायै नमः, ओं प्रभायै नमः, ओं मेधायै नमः, ओं शांत्यै नमः, ओं [5]काल्यै नमः, ओं धृत्यै नमः, ओं मत्यै नमः ।।

।।इति पञ्चमावरणम् ।।

ओं [6]उमायै नमः, ओं मायायै नमः, ओं [7]अवन्त्यै नमः, ओं पद्मायै नमः, ओं शान्तायै नमः, ओं मेधायै नमः ओं जयायै नमः, ओं अमलायै नमः ।

।।इति षष्ठावरणम्।।

एवं सम्पूज्य चतुरस्रे इन्द्रादि लोकपालान् यथा पूर्वादितः—

ओं इन्द्राय वज्रहस्ताय नमः, ओं अग्नये शक्तिहस्ताय नमः, ओं यमाय दण्डहस्ताय नमः, ओं निर्ऋतये खड्गहस्ताय नमः, ओं वरुणाय पाश हस्ताय नमः, ओं वायवे ध्वजहस्ताय नमः, ओं सोमाय गदाहस्ताय नमः, ओं ईशानाय शूलहस्ताय नमः, ऊर्ध्वे—ओं ब्रह्मणे पद्महस्ताय नमः, अधः-ओं अनन्ताय चक्रहस्ताय नमः ।।इति सप्तमावरणम्।।

एवं कृते प्रयोगार्हो जायतेऽयं महामनुः ।
जपेन्मंत्रमिमं लक्षमेवं ध्यायन् जितेन्द्रियः ।।२।।
जुहुयाद्दशभिर्द्रव्यैरयुतं घृतसम्प्लुतैः ।
विल्वं पलाशं खदिरं वटं च तिल सर्षपौ ।।३।।

१—उषायै, २—पूरण्यै, ३—सुधायै, ४—प्रह्वायै ५—कान्त्यै
६—धरायै, ७—पावन्यै । (तन्त्रान्तरे पाठभेदः)

दौग्धं दुग्धं दधि पुनर्दूर्वान्तानि विदुर्बुधाः ।
अयुतं जुहुयाद्बिल्वसमिद्भिः सम्पदे सुधीः ॥४॥
जुहुयाद् ब्रह्मवृक्षस्य समिद्भिर्ब्रह्मतेजसे ।
खादिरैरयुतं हुत्वा कान्तिपुष्टिमवाप्नुयात् ॥५॥
वटवृक्षस्य समिधो जुहुयादयुतावधि ।
धन-धान्य-समृद्धः स्यादचिरेणैव साधकः ॥६॥
तिलैस्तत् संख्यया हुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
सिद्धार्थैरयुतं हुत्वा शत्रून्विजयते नृपः ॥७॥
अनेनैव विधानेन नश्येत् मृत्युरकालजः ।
पायसेन कृतो होमो रक्षाश्रीकीर्तिकान्तिदः ॥८॥
पशुदुग्धेन सिद्धान्नं हुत्वा कृत्यां विनाशयेत् ।
अयमेवमतो होमः शान्तिश्रीसम्पदावहः ॥९॥
दधिहोमेन सम्वादं कुर्याद्विद्वेषिणोर्मिथः ।
प्रत्यहं जुहुयान्मंत्री दूर्वामष्टोत्तरं शतम् ॥१०॥
आमयान्निखिलान् जित्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
जुहुयाज्जन्मदिवसे पायसान्नैर्घृतान्वितैः ॥११॥
इच्छन्ननिन्दितां लक्ष्मीमारोग्यमतुलं यशः ।
गव्यदुग्धघृताक्ताभिर्दूर्वाभिर्जुहुयाद्वशी ॥१२॥
सविंशतिशतं सम्यक् स्वजन्मदिवसे सुधीः ।
आमयैः सकलैर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं खलु ॥१३॥
काश्मरीसमिधस्तिस्रः पयोऽन्नं त्रिशतं पृथक् ।
जुहुयाद्ब्राह्मणानन्ते भोजयेन्मधुरान्वितम् ॥१४॥
प्रीणयेद्धनधान्याद्यै रात्मनो गुरुमादरात् ।
अनामयमवाप्नोति दीर्घमायुः श्रिया सह ॥१५॥
सघृतेन पयोऽन्नेन हुत्वा पर्वणि पर्वणि ।
राज्यश्रियमवाप्नोति षण्मासान्नाऽत्र संशयः ॥१६॥
लाजैर्विशुद्धैर्जुहुयात् कन्याप्त्यै सा वराप्त्यै ।
क्षीरद्रुमसमिद्धोमाद् ब्राह्मणादीन्वशं नयेत् ॥१७॥
स्नात्वा सहस्रं प्रजपेदादित्याभिमुखो मनुम् ।
आधिव्याधिविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१८॥
अनेन मनुना सर्वं साधयेदिष्टमात्मनः ॥१९॥

इति त्र्यम्बक विधिः

अथ प्रसंगान्महामृत्युंजय महामंत्रः

(मंत्र महोदधौ) .

महामृत्युंजयं वक्ष्ये दुरितापन्निवारणम् ।
यं प्राप्य भार्गवः शम्भोर्मृतान्दैत्यानजीवयत् ॥१॥
तारः खं व्यापिनी चन्द्रयुक्तारश्चतुराननः ।
अर्घीश बिन्दुसंयुक्तो हंसः सर्गी च भूर्भुवः ॥२॥
सकारो बालसर्गाढ्यस्त्र्यम्बकं वैदिकं मनुः ।
भूर्भुवः स्वर्भुजङ्गेशस्तारी जूं सर्गवान् भृगुः ॥३॥
आकाशो मुनि बिन्द्वाढ्यः प्रणवान्तो मनूत्तमः ।
महामृत्युंजयाख्योऽयं पञ्चाशद्वर्ण निर्मितः ॥४॥

मंत्रो यथा :—

ओं हौं ओं जूंसः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्, भूर्भुवः स्वरों जूंसः हौं ओं ॥

अस्य श्री महामृत्युँजयमंत्रस्य वामदेव-कहोल वसिष्ठा ऋषयः पंक्तिगायत्र्यनुष्टभश्छंदांसि सदाशिव महामृत्युंजय रुद्रोदेवता ह्रीं शक्ति श्रीं बीजम् मम सर्वाभीष्टसिद्धयर्थे जपे विनियोगः

मूर्ध्नि वक्त्रे हृदि लिङ्गे पदोर्मुन्यादिकान्नयसेत् ॥५॥

अथ षडङ्गानि :—

ओं हौं ओं जूंसः भूर्भुवः स्वः-त्र्यम्बकं ओं नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा—हृदि ।

ओं हौं यजामहे ओं अमृतमूर्तये मां जीवय—शिरसि ।

ओं हौं सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्—ओं चन्द्रशिरसे जटिने स्वह—शिखायां।

ओं हौं उर्वारुक मिव बन्धनात् ओं त्रिपुरान्तकाय हां हीं—कवचम्।

ओं हौं मृत्योर्मुक्षीय ओं नमः त्रिलोचनाय ऋग्यजुः साम मन्त्राय-नेत्रत्रये।

ओं हौं मामृतात् ओं नमो भगवते रुद्राय अग्निरूपाय ज्वल ज्वल मां रक्ष रक्ष ओं अघोरास्त्राय—अस्त्राय फट्॥

एवं—द्वात्रिंशत्त्र्यम्बकान् वर्णान् नमोऽतान् विन्दुसंयुतान्।
तारादि नववर्णाद्यानंगेश्वेषु प्रविन्यसेत्॥६॥
मूलेन व्यापकं कृत्वा ततो ध्यायेत्त्रिलोचनम्॥७॥

अथ ध्यानम्—

हस्ताम्भोज युगस्थ कुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिंचंतं करयोर्युगेन दधतं स्वांके सकुंभौ करौ।
अक्षस्रङ् मृगहस्तमंबुजगतं मूर्द्धस्थचंद्रस्रवत्,
पीयूषोन्नतनुं भजे सगिरिजा मृत्युंजयं त्र्यम्बकम्॥८॥

शेषं सर्वं त्र्यम्बक मंत्रविधिवत्

इति महामृत्युंजय मंत्र-विधिः

अथ शताक्षरा गायत्री मन्त्र विधिः
(शारदा-तिलके)

गायत्री त्रिष्टुबनुष्टुब्वर्णैः प्रोक्तः शताक्षरः ।
पूर्वोक्ता एव मुनयाद्याः परं तेजोऽस्य देवता ॥१॥

ओं अस्य शताक्षरा महामंत्रस्य प्रजापतिर्जमदग्निर्भरद्वाजोभृगुर्विश्वामित्राः ऋषयः, गायत्री-त्रिष्टुबनुष्टपाख्य-त्रिपादात्मको गायत्रीछंदः, परंतेजो देवता तत्प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥

मंत्रो यथा :—

(ओं भूर्भुवः स्वः) ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ (परो रजसे सावदो३म्) जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स न पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टि वर्द्धनम् । उर्वारुक मिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥

अथ मूलमंत्रेण त्रिर्व्यापकं कृत्वा षडङ्गमन्त्रैः हृदयादिषु न्यसेत्—

यथा —

ओं भूर्भुवः स्वः ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य —हृदयाय नमः

„ ओं धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् —शिरसे स्वाहा

„ ओ३म् जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो
नि दहातिवेदः —शिखायै वषट्

„ ओ३म् स न पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिंधुं
दुरितात्यग्नि ॥ —कवचाय हुम्

„ ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्
—नेत्रत्रयाय वौषट्

„ ओ३म् उर्वारुक मिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्
—अस्त्राय फट्

एवं वर्णन्यासादिकं सर्वं कुर्यात् पूर्वोक्त वर्त्मना ॥

अथ ध्यानम् ।।

सत्यं मानविवर्जितं श्रुतिगिरामाद्यं जगत्कारणं
व्याप्तं स्थावरजङ्गमं मुनिवरैर्ध्यातं निरुद्धेन्द्रियैः ।।
अर्काग्नीन्दुमयं शताक्षरवपुस्तारात्मकं संततं
नित्यानंदगुणालयं गुणपरं वंदामहे तन्महः ।।२।।

लक्षमानं जपेदेनमयुतं पायसान्धसा ।
जुहुयात् घृतसिक्तेन मंत्रविद्विजितेन्द्रियः ।।३।।
सौरे पीठे यजेत्सम्यक् वक्ष्यमाणविधानतः ।
आद्यामावृत्तिमभ्यर्चेत् षडङ्गैर्देशिकोत्तमः ।।४।।
गायत्रीशक्तिभिस्तिस्रः पूजयेदावृतीः क्रमात् ।
आवृत्तिः पञ्चमी प्रोक्ता त्रिष्टुबुद्भूतशक्तिभिः ।।५।।
अनुष्टुप्शक्तिभिः प्रोक्तमावृतीनां चतुष्टयम् ।
इंद्राद्यैर्दशमी प्रोक्ता वज्राद्यैस्तत्परा मता ।।६।।
एवं सिद्धे मनौ मंत्री भवेद्भास्करसन्निभः ।
सुधालतोद्भवं खण्डैर्जुहुयात्क्षीरसंयुतैः ।।७।।
दीर्घमायुरवाप्नोति निराधिर्व्याधिवर्जितः ।
दूर्वाभिर्घृतसिक्ताभिस्तदेव फलमाप्नुयात् ।।८।।
मधुरत्रयसंसिक्तैर्जुहुयादरुणाम्बुजैः ।
महालक्ष्मीमवाप्नोति षड्भिर्मासैर्विधानवित् ।।९।।
रक्तोत्पलैस्त्रिमध्वक्तैर्जुहुयात्सर्वसम्पदे ।
श्रीप्रसूनैः प्रजुहुयाद्रमाया वसतिर्भवेत् ।।१०।।
सहस्रं जुहुयान्नित्यं मासमेकं तिलैः शुभैः ।
भानुसंख्यान् द्विजान्नित्यं भोजयेन्मधुरान्वितैः ।।११।।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वरोगविवर्जितः ।
कृत्याद्रोह ग्रहद्रोहान् जित्वा दीर्घं स जीवति ।।१२।।
प्रातःस्नानरतो मंत्री जपेन्नित्यं शतं शतम् ।
भानुमालोकयन् सम्यक् स जीवेच्छरदां शतम् ।।१३।।
तारव्याहृतिसंरुद्धं जपेन्मंत्रं शताक्षरम् ।
नित्यमष्टोत्तरशतं निःश्रेयस फलाप्तये ।।१४।।
गायत्र्याद्यं जपेन्मंत्रं सर्वपापविमुक्तये ।
सर्वशत्रुविनाशाय त्रिष्टुबाद्यमिमं जपेत् ।।१५।।
अनुष्ठुबाद्यं प्रजपेदायुरारोग्यसिद्धये ।
शताक्षरो मनुः प्रोक्तः समस्तपुरुषार्थदः ।।१६।।

इति शताक्षरा विधिः ।।

शुद्धि पत्राणि

पृष्ठ	श्लोक पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	६	सर्वमयेम्गिके	सर्वमयेऽम्बिके
२	१६	हेमं	हैमं
,,	२०	यथाविधिः	यथाविधि
,,	२१	यजेद्वे नायकं	यजेद्वै नायकं
३	५	यथाविधिः	यथाविधि
,,	१२	वसुमंति	वसुमतीं
४	१३	अङ्ग देवी	अङ्गदेवी
,,	१५	महीकोणद्वं द्वेन	महीकोणद्वन्द्वेन
,,	१५	स्थिताः	स्थितः
,,	१६	तदर्घ्यं	तदर्घ्यं
,,	२१	यथाविधिः	यथाविधि
५	१	सर्वलोकैक रक्षार्थ	सर्वलोकैकरक्षार्थं
५	४	तार्तीय रुपस्य	तार्तीयरूपस्य
,,	५	आदि देवोऽस्य	आदिदेवस्य
,,	६	मांच मायांच	मां च मायां च
,,	८	सहस्रबाहु	सहस्रबाह
,,	९	सर्वाग संयुतम्	सर्वांग संयुतम्
,,	११	सिध्यै	सिद्ध्यै
६	१४	चतुर्विशेन	चतुर्विंशेन
७	५	व्याहृतीयुताम्	व्याहृतियुताम
७	७	आपोवेति	आपो वेति
,,	८	मेगंगे	मे गङ्गे
,,	९	संनिधिकुरु	संनिधिं कुरु
,,	१०	देवमावाह्यलिंगके	देवमावाह्य लिङ्गके
,,	११	पुरुषएवेदं	पुरुष एवेदं
,,	११	उदैदर्घ्यं	उदैदर्घ्यं
,,	१२	मधुपर्क	मधुपर्कं
८	१६	चन्मामनसोधूपं	चन्द्रमामनसो धूपं
८	२१	सर्व	सर्वं

पृष्ठ	श्लोक पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	२२	ध्यात्वाततो	ध्यात्वा ततो
,,	२५	सिध्यर्थं	सिद्ध्यर्थं
९	१	नाना सिद्धिप्रदं	नानासिद्धिप्रदं
,,	,,	नाना कार्यं	नानाकार्यं
,,	७	यथाविधिः	यथाविधि
,,	९	वाक् सिद्धिं	वाक्सिद्धिं
,,	,,	षष्ठया कर्षण	षष्ट्याऽकर्षण
१०	१२	यंत्र रुपेण	यंत्ररूपेण
,,	,,	मंत्ररुपेण	मंत्ररूपेण
,,	१३	क्षिप्र सिद्धि	क्षिप्रसिद्धि
,,	१४	मंत्र रुपकं	मंत्ररूपकं
,,	१५	आवाह्यनेन	आवाह्यानेन
,,	१७	नवर्ति	नवति
,,	१९	विन्दुं	बिन्दुं
११	२८	महामाया त्वमंविके	महामायात्वमम्बिके
,,	२९	बिंदुंमतः	बिंदुमतः
,,	३१	बिदुंकम्	बिंदुकम्
,,	३३	विन्दुद्वयं	बिन्दुद्वयम्
१२	३ ×८	सिध्यर्थे	सिद्ध्यर्थे
,,	,, ×१२	प्रियाय-प्रणत०	प्रियाय प्रणत०
,,	,, ×१७	विछेदनाय	विच्छेदनाय
,,	,, ×१९	सिद्धय २	साधय २
,,	,, ×२३	जनान्छिन्धि	जनाञ्छिन्धि
,,	,, ×२८	ग्रहण	गृहाण
१४	२	रक्तांबर	रक्तांबरं
,,	२	लसद्ग्रीव	लसद्ग्रीवं
,,	३	मुकुट	मुकुटं
,,	७	तथाध्यानं	तथा ध्यानं
,,	९	राजचौरारि नारीणाम्	राजचौरारिनारीणाम्
१४	१०	गणादिना	गणादिनाम्
,,	११	दास भूता	दासभूता
,,	१२	दास भूता	दासभूता
१५	२	समप्रमं	समप्रभम्

पृष्ठ	श्लोक पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५	४	योषितोखिल०	योषितोऽखिल०
,,	६	द्रावयाद्रावयेति	द्रावय द्रावयेति
,,	७	स्मर पारवशा:	स्मरपारवशा:
,,	७	वह्ले	वह्ले
१६	३	व्याल यज्ञो०	व्यालयज्ञो०
,,	४	हस्ताग्रै स्ताडयंतं	हस्ताग्रैस्ताडयंतं
,,	५	यथाविधि:	यथाविधि
,,	८	प्रभावेन	प्रभावेण
,,	९	महद्युद्ध	महद्युद्धं
१७	५	परिपरिन्थ कुलं	परिपन्थिकुलं
,,	८	चांम्बिके	चाम्बिके
२०	९	दृढ़व्रत:	दृढव्रत:
,,	१०	पिष्टं नागं	पिष्टान्नांगं
,,	१०	तिलांल्लाजा	तिलांल्लाजान्
,,	११	च गरुन्धोम	चागरुन्मद्धोम
,,	११ ×७	लिपियत्	लिपियुक्
२१	३	शावदग्नांशं	शावन्यभ्रांशं
,,	,,	यंत क्रमादादौ०	यं तत्क्रमादादौ
,,	,,	मंत्रस्योच्चाटये	मंत्रस्योच्चारणे
,,	४	त्रिशूलेषुनाम्	त्रिशूलेषूनाम्
,,	९	कालाम्	कानाम्
,,	१०	तोषणं	स्तोभनं
२२	१४	मूल मूलोर्ध्व	मूलं मूलोर्ध्वं
,,	१५	मूर्तय:	मूर्त्तय:
,,	१८	कृत्वा	कृत्वा
,,	२३	वहिर्मायिया	बहिर्मायिया
२३	२६ ×७	ठाद्वहि०	ठाद्बहि०
,,	२६ ×८	चक्रतमेत्	चक्रमेतत्
,,	२६ ×१०	०मतुलंसत्पुत्र०	०मतुलं सत्पुत्र०
२४	४	श्रेष्टं	श्रेष्ठं
,,	११	अंगुष्टौ	अंगुष्ठौ
२५	१५	ऊरु	ऊरू
२६	३४	मुनीश्वरैश्चयमिभि:	मुनीश्वरैश्च यमिभि:
२७	३९	सर्ववक्त्रोक्तमोत्तमम्	सर्ववक्त्रोक्तमुत्तमम्
२८	४	तत्वत:	तत्त्वत:

पृष्ठ	श्लोक पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८	८	स्वगुरुपदिष्टम्	स्वगुपरूदिष्टम्
२९	१५	वक्तव्यंकृते	वक्तव्यं कृते
,,	१७	न पसार्यं	न प्रसार्यं
,,	१८	वदेदप्युपांशुसः	वदेदप्यपांशु सः
,,	२२	जपंसवर्थि०	जपं सर्वार्थ०
,,	२६	कृपां भो निधिनाथं	कृपाम्भोनिधिर्नाथं
३१	२	मंत्राणामपियत्सारं	मंत्राणामपि यत्सारं
,,	५	राज-चोरादि	राजचौरादि
३२	१२	आधारेच	आधारे च
,,	१९	दशांशंतर्पणं	दशांशं तर्पणं
३३	२९	वेष्टयोदि् बन्दु०	वेष्टयेद्बिन्दु०
३४	४	भीमाय	भीष्माय
३५	१७	० शांतमूर्ते	शांतमूर्त्ते
३६	३२	सर्प-चोराग्नि०	सर्प-चौराग्नि०
,,	×२८	मंत्रंनाम	मंत्रो नाम
३७	×२५	लक्ष्मीप्रदम्	लक्ष्मीप्रदम् ॥१॥
३८	३	ग्रहण	ग्रहगण
३९	६	तन्नोरुद्रः	तन्नो रुद्रः
,,	२२	पुरतोरिपूणां	पुरतो रिपूणां
४०	२४	सहारि	संहारि
,,	२६	सर्वत्रविजयी	सर्वत्र विजयी
,,	२७	पूर्वाग्निल	पूर्वाग्निनिल
४१	३	हतुं	हन्तुं
४१	६	कचाचन	कदाचन
४२	१५	क्रियाविधानं	क्रियाविधानं
४३	१०	शान्ताङ्ग-जशाखिपुष्पैः	शान्ताङ्कुर शाखि-पुष्पैः
४३	११	पयसाघृतौघं	पयसाघृतौघं
५४	१६	रिपूमलातेन	रिपुमलातेन
,,	१८	पुरोऽयमाख्य०	पुरं यमाख्य०
४५	५	साध्यमृक्षीर सिक्त	साध्य मृत्क्षीर-सिक्त
,,	६	साध्यत्त्व	साध्यस्य
४५	७	साध्यामृत्वं	साध्याम्बरे
४६	७	आखु सूनुम्	आशुसूतम्

पृष्ठ	श्लोक पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६	८	ताल-क्ष्मां-रुट समूलां	तालं क्ष्मारुहां समूलां
५०	९	दत्वा	दत्त्वा
,,	११	पुत्तलीकां	पुत्तलिकाँ
,,	१२	यथाविधिः	यथाविधि
५१	१५	वलिं	बलिं
,,	२१	दत्वोत्तरे	दत्त्वोत्तरे
,,	२५	दलाद्वहि०	दलाद्बहि०
५२	२८	सेवकैवाद्य०	सेवकैर्वाद्य०
५३	९	वाग्यतः	वाग्युतः
५६	५०	निम्नांग	निमग्न
५६	५३	व्यतीत काले	विपत्ति काले
५६	५३	शाय निवृत्तये	शीर्विनिवृत्तये
५७	६१	प्रथगृतु०	पृथगृतु०
,,	६१	कोष्टे	कोष्ठे
५७	६१	जप्त्वा स्मृत्वा	जप्त्वा च स्मृत्वा
,,	×२४	चतुर्विशो०	चतुर्विंशो०
५८	३	सिध्यर्थे	सिद्ध्यर्थे
५८	४	रथाधिरुढाम्	रथाधिरूढाम्
,,	१०	यथाविधिः	यथाविधि
५९	१२	यथाविधिः	यथाविधि
६०	५	दृढ़-व्रतः	दृढ़व्रतः
६१	१५	ज्येष्टां	ज्येष्ठां
६४	२७	स्फटिकं	स्फाटिकं
,,	३९	श्रेष्टं मशेष	श्रेष्ठमशेष
,,	४१	क्रर	क्रूरं
६५	५१	देवतान्या	देवताया
६९	३	शाकांकं	शाकाङ्गं
६९	११	निर्गुण्डैका दलाब्जयोः	निर्गुण्डयर्कदलाब्जयोः
६७	५	कृत्त्वा	कृत्वा
६८	४	गुह्योद	गुह्योष्ठ
६९	३	निबृतये	निवृत्तये
,,	६ ×१३	॥६॥	॥५॥
७०	१४	नोत्पलांकन	नौरुत्पलांक

पृष्ठ	श्लोक पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७०	१६	शृग	शृंगं
७०	१९	पैशाचहिकसारेण	पैशाचीहिमसारेण
७०	१९	हरिभारं	हरितालं
७१	३०	धुरीग	धूलिका
७१	३२	काशेऽस्य	कार्श्यस्य
,,	३६	मत्स्य	मक्ष
,,	३६	विघ्नसूत	विघ्नसूतां
,,	,,	अस्र बिन्दुना	आस्यबिन्दुना
,,	३७	कपरेह्वि	मपरेऽह्वि
७३	७	सिध्यर्थे	सिद्ध्यर्थे
७५	३०	तद्वहि	तद्बहि
७८	४	सत्वं	सत्त्वं
७८	१२	कृत्त्वा	कृत्वा
८०	×४	यधाविधि	यथाविधि
८०	×६	ककुप् छध्द:	ककुब्छन्द:
८४	×६	बं वटुक भैरवी	वं वटुक भैरवी
,,	×१७	बं वटुकाय	वं वटुकाय
८५	१५	मघ्ये	मध्ये
८६	२३	दक्षिणां दिशि	दक्षिण दिशि
८६	३३	ग्रहेनथे	गृहे ह्यथ
८७	१	हस्त-पद्म:	हस्तपद्मै:
७७	७	ब्रह्मण्याद्याष्ट०	ब्रह्माण्याद्यष्ट०
८८	१३	निविध्याग्नि	निवेद्याग्रे
८९	४	सूर्यं चन्द्राग्नि०	सूर्यचन्द्राग्नि
८९	४	खेटां	खेटं
९०	×६	सात्विक	सात्त्विक०
९५	१६	तथा तथा	तथा क्षयो
९७	८	नियवत्कल्प्य	नियत: कल्प्य
९७	८	तत्वत:	तत्त्वत:
,,	८	पूर्वोक्त्तं	पूोक्तं
,,	११	लाज	लाजं
,,	१२	विन्यस्य	विन्यस्य
,,	१२	भुव न्यसेत्	भुवि न्यसेत्
,,	१५	दत्वा	दत्त्वा

पृष्ठ	श्लोक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९७	१६		दत्वा	दत्त्वा
,,	१८		संपृक्तानये युक्ते—	संवृक्तान्नयेयुस्ते—
,,	१८		—क्षपां शनैः	—क्षपात्यये
९८	२१	×१	मनवेक्ता	मनुवृक्ताः
९८	२१	×२	सरिवरि	सरिवर
९८	२१	×२	सिध्यै	सिद्ध्यै
९८	२४		कुकुटस्य पलं	कुक्कुटस्य पलं
९९	२		सिध्यर्थे	सिद्ध्यर्थे
९९	४		निभमूर्ध्व	निभमूर्ध्व
९९	५		बन्दे	वन्दे
९९	८		संघ्यां	संध्यां
,,	९		गत्त्वा	गत्वा
१००		×२६	गृह्ण	ग्रहण
१००		×२७	शिवोर्हामति भावयेत	शिवोऽहमिति भावयेत्
१०१	३		नसंशयः	न संशयः
१०१	४		मघ्ये	मध्ये
१०१	७		तरसादापयेत्	तरसा दापयेत्
१०१	९		पीड़ितोऽनेन	पीडितोऽनेन
१०१	१२		सर्वा सिद्धिः	सर्वसिद्धिः
१०२	१		वच्मिते	वच्मि ते
,,	२		जयेकृते	जये कृते
,,	३		बड़वानलः	वड़वानलं
,,	४		वीजमाहुतिः	बीजमाहुतिः
,,	६		कोष्टेषु	कोष्ठेषु
,,	८		शत्रू वसून्	शत्रुवसून्
१०३	१६		सिध्यर्थे	सिद्ध्यर्थे
,,	१७		स तार व्वाहृति०	सतारव्याहृति०
,,	१८		वाणाग्रे	बाणाग्रे
,,	१८		मरीचकोणैः	मरीचिकोणैः
,,	१८		दुष्टाना ममोघं	दुष्टानाममोघं
१०४	७		बडवानल०	वडवानल०
१०५	३		वृहती	बृहती
,,	३		वीजानि	बीजानि

पृष्ठ	श्लोक पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०५	×१३	एरावत	ऐरावत
,,	×२६	विद्याऽधिपतये	विद्याऽधिपतये
१०६	७	प्लावनानिच	प्लावनानि च
१०७	३	वीज	बीज
,,	५	कपालाढय	कपालाढ्यं
,,	६	व्रणोद्भत	व्रणोद्भूत
,,	६	वृहत्स्कन्धं	बृहत्स्कन्धं
१०८	१२	व्यधि०	व्याधि०
१०९	२	उष्णिक् छन्द:	उष्णिग्छन्द:
१०९	२	जीवान्तकोयम:	जीवान्तको यम:
१०९	६	पंचशतान्मृति:	पंचशतान्मृति:
११०	३	वृहती	बृहती
११०	४	वीजं	बीजं
११०	४	रक्षाकरोविभु:	रक्षाकरो विभु:
,,	५	सिध्यर्थे	सिद्ध्यर्थे
,,	१ ×१९	पृष्टत:	पृष्ठत:
,,	×२२	भ्रवो०	भ्रुवो०
१११	४	ताल्वेरोष्ठयो०	ताल्वोरोष्ठयो:
,,	५	मृप्युंजयोदन्तान्	मृत्युंजयो दन्तान्
,,	७	धूर्जरि	धूर्जटि
,,	९	रुद्रोंऽगुष्टद्वये	रुद्रोंऽगुष्ठद्वये
,,	१३	पृष्टभागं	पृष्ठभागं
,,	१३	मोहनोजघनं	मोहनो जघनं
,,	१६	सर्वं सन्धीन्मे	सर्वसंधीन्मे
११२	१९	स्वाधिष्टान०	स्वाधिष्ठान०
,,	१९	मीणपूरं	मणिपूरं
,,	२५	नैऋति	नैऋंतिं
,,	२६	धनुर्वाण	धनुर्बाण
,,	२८	कौवेरकी०	कौबेरकी०
११४	५७	सूयंतु	सूयंतां
११५	६९	विध्नकर्तार:	विघ्नकर्तार:
११६	७६	गृहीतुं	ग्रहीतुं
११८	१०५	वक्ष्येऽहं	वक्ष्येऽहं

पृष्ठ	श्लोक पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२१	२९	तपांतनुं जोऽन्यो	स्तनयित्नुजोऽन्यो
१२२	३४	सभवेल्लब्ध	स भवेल्लब्ध
१२४	१०	वंधनेन	बंधनेन
१२५	३	वाणक्षु	बाणेक्षु
,,	३	तर्राण	तरणि
,,	६	षष्ठि	षष्टि
१२६	२	सिध्यर्थे	सिद्ध्यर्थे
१२७	२	सिध्यर्थे	सिद्ध्यर्थे
१२८	७	सर्व सिध्दयै	सर्वसिद्ध्यै
१३२	७	पकजै	पंकजै
१३४	९	मभ्ऱ्च्र्य	मम्यर्च्य
१३४	२	प्राणानायम्य	प्राणानायम्य
१३५	१३	ऋषि छन्दः	ऋषिश्छन्दः
१३७	४	पुष्प धूपं	पुष्पधुपं
१३८	२२	रूपब्रतस्थाय	रूपव्रतस्थाय
१३९	३	संक्षोमणार्थे	संक्षोभणार्थं
१४०	१	देवि	देवी
१४१	१२	ताडयंती	ताडयंतीं
१४२	४	दृढ़ चित्तो	दृढचित्तो
१४२	७	गुह्य	गुह्यं
१४३	२	प्रतिष्टाप्या	प्रतिष्ठाप्या०
१४४	३	वीजं	बीजं
१४५	१३	पिष्ट्वाऽथ सौम्यदँ	पिष्ट्वाऽयसौम्यकं
१४५	२०	मूर्छास्ति	मूर्च्छास्ति
१४६	२८	प्राप्तयेयुः	प्रापयेयुः
१४७	११	संसारवार्धि०	संसाराब्धि०
१५१	१	दुस्वप्न	दुःस्वप्न
१५४	१४	वाणौ	बाणौ
१५५	७	सिध्य	सिद्ध
१५५	१०	दाश्यन्ति	दास्यन्ति
,,	१०	मूलमंगामसा	मूलमंगांभसा
१५६	१४	भित्वा	भित्त्वा
१५८	१३	दत्वा	दत्त्वा

पृष्ठ	श्लोक पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५८	१३	योषिद्वाह्यांशुकगं	योषिद्बाह्यांशुकगं
,,	२४	चैत्ररथं	चैत्ररथ
१६२	१	त्रिष्टुप् छन्द:	त्रिष्टुब्छन्द:
१६२	६४	चतुषष्टि तमो०	चतुश्षष्टितमो०
१६४	८	द्वि प्रोक्तम्	द्वि: प्रोक्तम्
१६५	७	त्रिंशादुत्तर०	त्रिंशदुत्तर
१६८	१	भरवम्	भैरवम्
१७४	×१०	नमों	नमो
,,	×१०	सर्व लोकेश्वरी	सर्वलोकेश्वरी
१७५	१	प्रोक्तां	प्रोक्ता
,,	२	त्वत्तीय्यस्य	त्वदीयस्य
१७७	११	तत्वरूपं	तत्त्वरूपं
१७९	४	परमाद्भतं	परमाद्भुतं
१८०	११ ×१	श्रीशरभेश्वर उवाच	इति वाक्यं द्वितीय-पंक्त्यनन्तरं पठनीयम्
१८०	१२	सर्वसन्तोष०	सर्वसन्तोष
१८२	×३	अनुष्टुप् छन्द:	अनुष्टुब्छन्द:
१८३	२२	ततस्तुत्वा	तत: स्तुत्वा
१८५	,, ×४	अनुष्टुप् छन्द:	अनुष्टुब् छन्द:
१८७	२७	आ शुषेणो०	आशुषेणो०
१९०	७०	प्रजा सृज्जन	प्रजासृजन
१९१	८०	ध्वांतघ्नो	ध्वांतघ्नो
१९३	१०३	वाहु	बाहु
१९३	१०६	भस्मोद्धूलित	भस्मोद्धूलित
१९३	११४	ओऽसौ	ओऽस्त्रो
१९३	११५	पलक:	पालक:
१९४	११८	गरिस्टो	गरिष्ठो
,,	१३०	पुष्डरीक	पुण्डरीक
१९५	१३२	मूर्तिभावत्	मूर्तिभाव:
,,	१३६	कविर्दु स्वप्न०	कतिर्दु: स्वप्न०
,,	१३८	क्षोदिष्टो	क्षोदिष्ठो
१९८	१८५	श्रेप्ठ:	श्रेष्ठ:
१९९	१९२	स्वरुपश्च	स्वरूपश्च

पृष्ठ	श्लोक पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९९	१९३	सहस्रं तु	सहस्रन्तु
२००	२०१	वर्धनम्:	वर्धनम्
,,	२०३	वृहदार०	बृहदार०
,,	२०६	सचैक	स चैक:
२००	२०९	विल्वै०	बिल्वै०
,,	२०९	वकुलादि	बकुलादि
२०१	३	तत्वरूपं	तत्त्वरूपं
,,	३	मिहतेद्वेष्टये	मिह ते द्वेष्टये
,,	४	तर्व	तव
२०२	६	पिवंतु	पिबंतु
,,	७	हसतिसभा	हसति सभा
,,	१२	चोर	चौर
,,	१५	ततोच्चाटे	तथोच्चाटे
,,	१६	विल्व	बिल्व
२०२	१×२६	देव कोष्टं	देवकोष्ठं
२०३	६	नास्त्यहिजंभयं	नास्त्यहिजं भयं
२०४	१६	अमोघ	अमोघं
२०५	५	सप्ताग	सप्तांग
२०५	६	वड़बाग्न्युदर	वडवाग्न्युदर
२०५	१०	शटाख्य	शलाख्य
२०६	×६	पिव पिव	पिब पिब
,,	×१०	वन्धय	बन्धय
,,	×११	पिव पिव	पिब पिब
,,	×११	कुरू कुरू	कुरु कुरु
,,	×२४	मंत्रराज	मंत्रराज:
२०७	५	गृहणयुग्मं	ग्रहण युग्मं
,,	६	प्रत्हं	प्रत्यहं
,,	×२३	कालरूद्र	कालरुद्र
२०८	२	वृत	वृत्त
,,	३	वाण	बाण
,,	५	क्वथै	क्वाथै:
,,	६	सर्व सिद्धि	सर्वसिद्धि:
,,	७	शत्रुणां	शत्रूणां

पृष्ठ	श्लोक पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०८	७	संघातानोत्पद्यंते	संघाता नोत्पद्यंते
,,	१०	मनुश्याणां	मनुष्याणां
२०९	१३	नाभिमंत्रियत्वा	नाभिमंत्र्य वै
२१०	२७	यथा विधिम्	यथाविधि
२११	५१	प्रादक्षिण्येन	प्रदाक्षिण्येन
२१२	२	ममद्धि	मर्मद्धि
२१८	३ × १०	रुपेणास्यां	रूपेणास्यां
२२०	१०	सावदो इमिति	सावदो३मिति
२२२	३	त्रिष्टुप् छन्दो	त्रिष्टुब्छन्दो
४६	७	साध्यामृत्वं	साध्याम्बरे
२२६	५५	कर्म्म संयुतान्	कर्म्मसंयुतान्
२३२	× १२	नासार्या	नासायां
	× २६	मध्यमांगुलि समदीर्घ	मध्यमांगुलिसम दीर्घ
२३५	५ × २९	कान्नयसेत	कान्न्यसेत्
	× २२	पाण ये	पाणये
२३६	× १	स्वह	स्वाहा
२३७	× १३	षडङ्गमन्त्रः	षडङ्गमन्त्रैः
२३९	× ३२	पृ० ८ श्लोक २२	पृ० ८ श्लोक २१
२४२	× १२	पृ० ३३ श्लोक २०	पृ० ३३ श्लोक २९
	× ३१	(शुद्धिपंक्त्यां) पयसाघृतौघं	पयसाघृतौघं
	× ३४	,, साध्यमृतक्षीरसिक्त	साध्यांबरे क्षीरसिक्त
	× ३६	पृ० ४५ श्लोक ७	पृ० ४६ श्लोक ७
२४३	× ४	पृ० ५० श्लोक ११	पृ० ५० श्लोक १२
	× २८	पृ० ६६	पृ० ६९
	× २९	पृ० ६६	पृ० ६९
	× ३१	पृ० ६८	पृ० ६९
२४७	× २	(शुद्धिपंक्त्यां)स्तनयित्नुजोऽन्यो	तपान्तानुजोऽन्यो (वा)
२४८	× ३	,, चैत्ररथं	चित्ररथ, चित्रलता वा

अवशोधनीयम्—

दृष्टि दोषादवक्रियया वा एकोनत्रिंशतितमेऽध्याये पञ्चमश्लोकावसाने षष्ठ श्लोको मुद्रणे अवच्छिन्नः, तत्रैवं **संवेशनीयम्**—

"ग्राहकमलमाहृत्य वचा लसुन संयुतम् ।
पञ्चतैलेन तत्पक्त्वा लेपयेत् क्षुद्रमुक्तये ॥६॥

एवं **१८० पृष्ठे** "श्रीशरभेश्वर उवाच" इति वाक्यं द्वितीय पंक्त्यनन्तरं पठनीयम् ॥

२२५ पृष्ठे ४८-४९ श्लोकान्तराले, शारदातिलके सार्द्धैकश्लोकोऽधिको दृश्यते—

"अधस्तिर्यङ्मुखोपेता ईरिता वर्णदेवता ।
अभिमुख्यः स्मृताः सौम्ये पराङ्मुख्योऽन्यकर्मणि ॥
आभ्योऽसंख्याः समुत्पन्ना देवताज्वलितानना ॥"

एवमेव **२२६ पृष्ठे**, ५५-५६ श्लोकान्तराले एतत्पाठोऽधिकम्—

"तत्तन्मन्त्राक्षरोपेतान् मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया ।
जुहुयादेधिते वह्नौ मारयेद्रिपुमात्मनः ॥
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णचतुर्दशी ।
धत्तूरविषवृक्षाक्षभूरुहोत्थान् समिद्वरान् ॥"



यंत्र दशाङ्गानि

बीजं प्राणं च शक्ति च दृष्टि-वश्यादिकं तथा ।।
यंत्र मंत्रे च गायत्री प्राणस्थापनमेव च ।।
भूत दिक्पालबीजानि यंत्रस्यांगानि वै दश ।।
बीजं ह्रीं, प्राणं हं, शक्ति ह्रीं, दृष्टि इ ई उ ऊ,
ऋ ॠ स ह, वश्यादिकं साध्यनाम,
यंत्र गायत्री—
यंत्रराजाय विद्महे वरप्रदाय धीमहि, तन्नो यंत्रः प्रचोदयात् ।
मंत्र गायत्री—मंत्रराजाय विद्महे वरप्रदाय धीमहि,
तन्नोमंत्रः प्रचोदयात् ।।

प्राणप्रतिष्ठा—आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं ह्रौं हंसः,
भूतबीजं—लं वं रं यं हं, दिक्पाल बीजानि—लं रं हं षं वं यं सं शं,
अथवा—(लं रं टं क्षं वं यं सं हं ओं श्रीं)
शुभकर्मणि—श्रीगंधं-अगरु-गोरोचनं-कुंकुमं-जटामांसी-
कर्पूर-कस्तूरी-रक्तचंदनम् ।
क्रूरकर्मणि—अष्टविधं (गन्धं)-शुंठी-चित्रकमूलं-हिंगु-लसुनम्
लवंगं-मरीचि-पिप्पलं-गृहधूमम् ।

प्रकीर्ण श्लोकाः

पुष्यार्के मुनिवृक्षस्य मूलमुद्धृत्य वारिणा ।
संघृष्य मधुना सार्धमंजनं लोचनद्वये ।।
पश्यत्यसौ निधिं तेन भूतलस्थं न संशयः ।
ध्वज-मीन-समाकारः प्ररोहो दृश्यते वटे ।।
शतसाहस्रकं वित्तं तदधो लभते ध्रुवम् ।
बहूनां यत्र वृक्षाणामेकस्मिन्वै सदा खगाः ।।
वसंति सकलं कालं निधानं तत्र लक्षयेत् ।
जीर्णोद्यानतडागेषु शून्यग्रामवनेषु च ।
मातरो यत्र तिष्ठंति तत्र वित्तं न संशयः ।।
श्वेतापराजितामूलं ग्राह्यं चन्द्रग्रहे सति ।
बला-क्षौद्र समायुक्तां गुटिकां मूर्ध्नि धारयेत् ।।
वक्त्रे हस्ते च वा धार्य्या देवैरपि न दृश्यते ।।

THE TANTRIC VIEW OF LIFE

Herbert V. Guenther

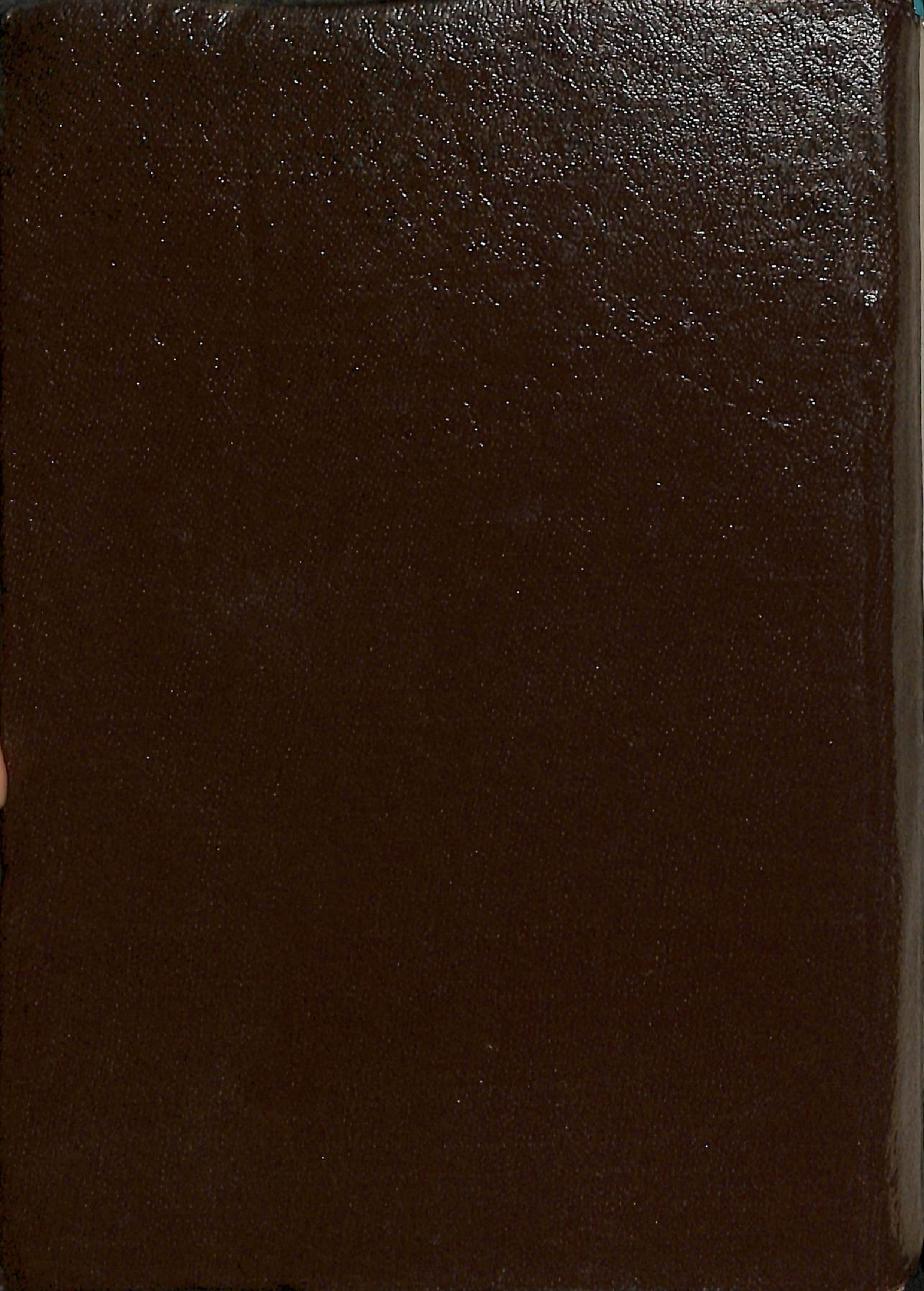
In this work the author offers a major contribution towards the understanding of Tantric Buddhism. The meaning of Tantra is clearly defined and the philosophy and practice of Tantra is presented in depth.

"What Tantra is telling us is that we have to face up to Being; to find meaning in life is to become Buddha-'enlightened', but what this meaning is cannot be said without falsifying it. The knowledge which Tantrism insists upon is the knowledge that makes all these kinds of knowledge possible."

Light is shed on human sexuality, its dilemma and validity. The human dilemma of regaining our sense of wholeness and spontaneity is given opportunity and is expressed through *Mudrās*—seals of significance that can be placed in one's living situation, emotional entanglements and urges to self-expression. These are given elucidation through original translations from important Tantric texts and commentaries from Tibetan. The book concludes with valuable discussion of the role of aesthetics and art and is illustrated with the plates of Tibetan and Indian sculpture.

$ 8.50

£ 3.75



THE TANTRIC VIEW OF LIFE

Herbert V. Guenther

In this work the author offers a major contribution towards the understanding of Tantric Buddhism. The meaning of Tantra is clearly defined and the philosophy and practice of Tantra is presented in depth.

"What Tantra is telling us is that we have to face up to Being; to find meaning in life is to become Buddha-'enlightened', but what this meaning is cannot be said without falsifying it. The knowledge which Tantrism insists upon is the knowledge that makes all these kinds of knowledge possible."

Light is shed on human sexuality, its dilemma and validity. The human dilemma of regaining our sense of wholeness and spontaneity is given opportunity and is expressed through *Mudrās*—seals of significance that can be placed in one's living situation, emotional entanglements and urges to self-expression. These are given elucidation through original translations from important Tantric texts and commentaries from Tibetan. The book concludes with valuable discussion of the role of aesthetics and art and is illustrated with the plates of Tibetan and Indian sculpture.

$ 8.50
£ 3.75